मुद्रा, विनिमय तथा बैंकिंग

(MONEY, EXCHANGE & BANKING)

[*For I. Com. & B. Com. Classes*]

लेखक—

आर० के० अग्रवाल, एम० ए०, एम० काम०,
अध्यक्ष वाणिज्य विभाग,
महाराणा भूपाल कालेज, उदयपुर

व

एस० सी० डाड़ा, एम० काम०,
प्रवक्ता, वाणिज्य विभाग,
महाराणा भूपाल कालेज, उदयपुर

तथा

एम० पी० सिंह, एम० ए०, एम० काम०
प्रवक्ता, डी० ए० वी० कालेज, कानपुर

प्रकाशक:—
किशोर पब्लिशिंग हाउस,
परेड, कानपुर

१९५३] [मूल्य ३॥)

प्रस्तावना

१४ अगस्त, १९४७ को देश स्वतन्त्र हुआ। स्वतंत्रता के साथ देश में अपनी भाषा और संस्कृति का प्रेम उमड़ पड़ा। हिन्दी राष्ट्रभाषा हो, राजकीय समस्त कार्य हिन्दी में हो और विश्वविद्यालयों की शिक्षा का माध्यम भी हिन्दी ही हो, इस प्रकार की मांग देश में गूंज उठी। इसके फलस्वरूप भारतीय विधान सभा को हिन्दी को राष्ट्रभाषा की मान्यता देनी पड़ी। राजकीय कार्यों में सर्वत्र हिन्दी का ही व्यवहार हो, इसके लिये १५ वर्ष की अवधि निश्चित कर दी गई। यह अवधि हिन्दी में राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, वाणिज्य शास्त्र तथा शासन से सम्बन्धित सभी आवश्यक विषयों पर सामग्री तैयार करने के लिये अत्यावश्यक समझी गई।

हमारे विश्वविद्यालय भी इस ओर गतिशील हैं और हिन्दी धीरे धीरे शिक्षा का माध्यम बनती चली जा रही है। किन्तु अभी तक देश में उक्त विषयों पर हिन्दी की मौलिक पुस्तकों का अभाव खटकता रहा है। जो भी पुस्तकें देखने में आती हैं, उनमें से अधिकांश अंग्रेजी पुस्तकों के अनुवाद मात्र हैं। इसी कमी की पूर्ति के उद्देश्य से हम अपना यह विनम्र प्रयास 'मुद्रा, विनिमय तथा बैंकिंग' की पुस्तक के रूप में आप के सम्मुख रख रहे हैं।

मुद्रा, विनिमय तथा बैंकिंग का ज्ञान आज के युग में आवश्यक बनता चला जा रहा है। विषय गूढ़ होने के साथ साथ बड़ा महत्वपूर्ण भी है। हमने प्रस्तुत पुस्तक में इसको अति सरल व सुबोध बनाने का पूरा पूरा प्रयत्न किया है।

कठिन व दुरुह शब्दों का मोह त्याग कर हमने बोल चाल के सुगम व प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है। स्थान स्थान पर पारिभाषिक शब्दों को समझाने के लिये कोष्ठक में अंग्रेजी शब्दों को भी लगा दिया है, जिससे विषय के समझने में कठिनाई न हो। प्रत्येक अध्याय के अन्त में विभिन्न परीक्षाओं के लिये सम्भावित प्रश्न भी जोड़ दिये गये हैं, जिससे विद्यार्थियों को परिक्षास्तर मालूम हो सके और परीक्षा सदन में प्रश्न समझना कठिन न हो।

वैसे तो यह पुस्तक विभिन्न विश्वविद्यालयों की इन्टर व बी० काम परीक्षाओं के पाठ्य-क्रम के अनुसार लिखी गई है, किन्तु किसी भी व्यक्ति के लिये, जो मुद्रा, विनिमय तथा बैंकिंग का सामान्य ज्ञान प्राप्त करना चाहता हो, यह बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी। हमको केवल आशा ही नहीं, बल्कि पूर्ण विश्वास है कि विद्यार्थी, शिक्षक तथा अन्य व्यक्ति इससे पूरा लाभ उठायेंगे। पुस्तक के उन सब के लिये उपयोगी सिद्ध होने पर ही लेखक अपने आप को धन्य मानेंगे। पुस्तक सम्बन्धी सुझाव सहर्ष स्वीकार किये जायेंगे और वे उनके लिये सदैव कृतज्ञ रहेंगे।

यहां हम उन सभी महानुभावों के आभारी हैं, जिनसे हम को समय समय पर प्रोत्साहन व मार्ग-दर्शन मिलता रहा है। अन्त में हम अपने प्रकाशक महोदय के भी आभारी हैं, जिन्होंने बड़े अल्प समय में ही पुस्तक को पाठकों के समक्ष लाने का कष्ट किया है।

लेखक—

१५—७—५३

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

बैंक तथा उनके कार्य

हमारे देश में बैंक सर्वप्रथम अंग्रेजों द्वारा स्थापित किए गये, थे, परन्तु इंग्लैंड भी बैंकों का मूल स्थान नहीं है। इंग्लैंड में इस संस्था को इटली के व्यापारी अपने साथ इटली से लाये थे। बैंक का वर्तमान रूप सदा से ही एकसा नहीं रहा है। सबसे पहले मनुष्यों ने स्वर्णकारों के पास अपना रुपया सुरक्षित रूप में रखना प्रारम्भ किया था। प्राचीन काल में यह स्वर्णकार बैंच पर बैठकर लेन देन करते थे। अतएव कुछ विद्वानों का मत है कि बैंक शब्द इटली के 'बेरचों' शब्द से बना है जिसका अर्थ बैंच है, और शनैः २ यही बैंच शब्द बैंक में परिवर्तित हो गया। दूसरे विद्वानों के मतानुसार बैंक एक जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ ढेर लगाना है। जिस समय इटली के व्यापारी इंग्लैंड में आये थे उस समय इटली में आस्ट्रियन भाषा का अधिक प्रचार होने के कारण लोग ढेर किये ऋण को, जो बैंक का एक प्राचीन रूप था, बैंक के नाम से पुकारते थे। यही सौदागर एक ओर तो जनता का धन अपने पास सुरक्षित रख लेते थे तथा दूसरी ओर आवश्यकता पड़ने पर उन्हें ऋण दे दिया करते थे। रुपया इन्हीं के पास जमा होने के कारण इनकी ऋण देने की मात्रा बहुत अधिक बढ़ गई थी, जिससे इनको बड़ा लाभ होता था।

प्रारम्भ में ये व्यापारी धन सुरक्षित रखने के लिये जमा कराने वाले से कुछ शुल्क लेते थे, परन्तु जब इन्हें इस व्यापार में अधिक लाभ होने लगा तो इन्होंने शुल्क लेना बन्द कर दिया तथा कुछ ही काल बाद यह रुपया जमा कराने वालों को ब्याज भी देने लगे। धीरे २ व्यापार का क्षेत्र विस्तृत हो गया। लिखित आदेश के आधार पर अपने ग्राहकों का रुपया भुगतान करने से चैक का आविष्कार हुआ और धीरे २ बैंकों के कार्यों का क्षेत्र रुपया जमा करने व ऋण देने तक ही सीमित न रह कर अति विस्तृत हो गया। बैंक और भी अनेक कार्य करने लगे जिन्हें हम वर्तमान काल में देखते हैं।

बैंक की परिभाषा—

बैंक एक प्रकार की दूकान को कहते हैं, जहां मुद्रा का क्रय-विक्रय होता है। एक दूकानदार विभिन्न प्रकार की वस्तुयें खरीदता तथा बेचता है परन्तु एक बैंकर अपने यहां केवल रुपये का ही क्रय-विक्रय करता है। वह एक ओर जनता का रुपया अपने यहां सुरक्षित रखने के लिए जमा करता है जिसे बैंक द्वारा रुपया खरीदना कहते हैं। दूसरी ओर जनता को आवश्यकता पड़ने पर रुपया उधार भी देता है, जिसे बैंक द्वारा रुपये का बेचना कहते हैं। अतएव बैंक एक ऐसी संस्था है जो मुद्रा के क्रय-विक्रय तथा उससे सम्बन्धित अन्य कार्य करती है। परन्तु वर्तमान काल में बैंक के कार्यों का क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि उसकी ठीक २ परिभाषा देना अत्यन्त कठिन है। ब्रिटिश पार्लियामेंट के मतानुसार कोई भी संस्था जो बैंक का कार्य करती है, बैंक कहलायेगी। सन् १९२६ के हिल्टन यंग कमीशन के अनुसार कोई भी व्यक्ति अथवा संस्था या ऐसी कम्पनी बैंक कहलायेगी जो अपने नाम के आगे 'बैंक' अथवा

'बैंकिंग' शब्द लगाती है तथा जनता का रुपया जमा करके चैक, ड्राफ्ट व अन्य आदेशों द्वारा उन्हें वापस देती है। सेयर्स (Sayers) ने बैंक की परिभाषा इस प्रकार की है— "बैंक एक ऐसी संस्था है जिसके द्वारा जनता के पारस्परिक ऋणों का भुगतान अति सरलतापूर्वक हो जाता है।" क्राउथर (Crowther) के शब्दों में बैंक एक ऐसी संस्था है जो अपने तथा अपने ग्राहकों के ऋणों को भुगताने का कार्य करती है।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि बैंक की परिभाषा करना अत्यन्त कठिन है। विभिन्न विद्वानों के बैंक की परिभाषा के विषय में विभिन्न विचार हैं। परन्तु साधारण तौर पर बैंक वह संस्था है जहां जनता का रुपया जमा किया जाता है, जो मांगने पर वापिस दिया जाता है, आवश्यकता के समय व्यापारियों को ऋण भी मिल सकता है तथा जहां हुण्डियों के भुनाने व धन सम्बन्धी अन्य प्रकार के कार्य होते हैं। वास्तव में बैंक धन तथा साख सम्बन्धी पुर्जों के लेन-देन का कार्य करता है। जनता का रुपया चालू खाते में जमा करके उसे चैक द्वारा अपने ग्राहकों के आदेशानुसार वापस करना बैंक का एक मुख्य कार्य है जो अन्य संस्थायें नहीं करती हैं।

बैंकों के कार्य (Functions)—

वर्तमान काल में बैंकों के अनेकों कार्य हैं। बैंक का सबसे मुख्य कार्य जनता का रुपया अपने यहां सुरक्षित रूप में जमा करना है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रत्येक युग में अपने बचाये हुए धन को सुरक्षित रखना एक समस्या रही है। प्राचीन काल से ही बैंक जनता का रुपया अपने यहां सुरक्षा-पूर्वक

जमा करते आए हैं। शांति व सुरक्षा के समुचित प्रबन्ध के कारण वर्तमान काल में यद्यपि बचाए हुए धन को सुरक्षित रखने की समस्या इतनी कठिन नहीं है परन्तु साधारण से अधिक सुरक्षा के लिए बैंक जनता का बहुत सा धन अपने यहां सुरक्षित रखते हैं। बैंक जनता का रुपया चार प्रकार के खातों में जमा करते हैं—मियादी खाता, चालू खाता, होम सेफ़ खाता और सेविंग्ज़ बैंक खाता। भिन्न २ मनुष्यों की भिन्न २ आवश्यकतायें होती हैं तथा प्रत्येक मनुष्य एक सा धन नहीं बचा सकता। जिन मनुष्यों की बचत अधिक होती है वे अधिक रुपया जमा कराते हैं व जिनकी कम बचत होती है वह कम। अतएव बैंक भिन्न २ प्रकार के खातों में जनता का रुपया जमा करके सर्व प्रकार के मनुष्यों को आकर्षित करता है। उनमें मितव्ययिता का प्रचार करता है। यदि बैंक न होते तो या तो मनुष्य अपनी समस्त आय व्यय कर देते या अपने घरों में गाड़ कर रखते। इससे बहुत से व्यक्ति जो व्यापार में कुशल हैं, धन की कमी के कारण अपने भाग्य को दिन रात कोसा करते।

बैंक अपने यहां निम्नलिखित दो प्रकार की सम्पत्ति धरोहर के रूप में जमा करते हैं:—

(१) मुद्रा तथा

(२) सम्पत्ति तथा अन्य साख सम्बन्धी पुर्जे।

जब कोई ग्राहक बैंक में सिक्के, नोट, चैक व बैंक ड्राफ्ट इत्यादि जमा कराता है तो इसे मुद्रा धरोहर कहते हैं। बैंक में मुद्रा के अतिरिक्त लोग अपनी बहुमूल्य सम्पत्ति, हीरे, जवाहिरात, आभूषण तथा अन्य मूल्यवान कागज़-पत्र भी जमा करा सकते हैं। बैंक अपने ग्राहकों के साख-सम्बन्धी पुर्जे

जैसे बिल, प्रामिसरी नोट आदि भी ले लेते हैं तथा नियत समय पर उनको भुनाकर अपने ग्राहक के खाते में जमा कर देते हैं। प्राचीन काल में बैंक रुपया जमा करने वाले से कुछ शुल्क लिया करते थे। परन्तु अब बैंकों ने भी रुपया ऋण पर देना प्रारम्भ कर दिया तो उन्हें इससे बहुत लाभ हुआ तथा धीरे २ बैंक अपने ग्राहकों से शुल्क लेने की अपेक्षा उन्हें व्याज़ देने लगे। मुद्रा के अतिरिक्त अपने यहां जमा अन्य सम्पत्ति का बैंक मुद्रा की भांति कोई उपयोग नहीं कर सकते। अतएव सम्पत्ति जमा कराने वाले से बैंक कुछ शुल्क अवश्य लेते हैं।

बैंक का दूसरा प्रमुख कार्य जनता को आवश्यकता के समय रुपया उधार देना है। बैंक जनता का रुपया छोटी मात्रा में थोड़े समय के लिये जमा करता है तथा उसको बड़ी मात्रा में उन व्यापारियों को जिनको उसकी आवश्यकता है, उधार देता है। बैंक जनता का रुपया लेकर जनता में ही लगा देता है बैंक जनता द्वारा प्राप्त किए हुए धन का मुख्यतः निम्न प्रकार से उपयोग करता है।

१—ऋण देकर (Loans & Advances) —

व्यापार में प्रायः धन की आवश्यकता पड़ती ही रहती है। इस धन को व्यापारी बैंक से सरलता पूर्वक प्राप्त कर सकते हैं। बैंक जनता द्वारा प्राप्त किये हुए समस्त धन को ऋण पर देते हैं तथा उस पर व्याज लेकर लाभ कमाते हैं। यह ऋण दो प्रकार के होते हैं—सुरक्षित ऋण तथा असुरक्षित ऋण। सुरक्षित ऋण वे ऋण होते हैं जिनको लेते समय लेने वाला कुछ सम्पत्ति अथवा माल व जेवर या मकान आदि रहन रख देता है। रुपया न मिलने पर बैंक रहन रक्खी हुई सम्पत्ति को बेच कर रुपया ले लेता है। इस प्रकार के ऋणों

पर असुरक्षित ऋणों की अपेक्षा कम दर से ब्याज लिया जाता है। असुरक्षित ऋण वे ऋण होते हैं जिनको बैंक बिना किसी धरोहर के ही व्यापारियों को देता है। इनके अतिरिक्त बैंक द्वारा दिए जाने वाले ऋण दो प्रकार के और होते हैं—समय वाले ऋण जो साधारणतः एक माह अथवा कुछ उससे अधिक के लिये दिये जाते हैं तथा मांगने पर तुरन्त मिलने वाले ऋण। दूसरी प्रकार के ऋण भी दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जिनको बैंक केवल अपनी बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति के समय ही मांगता है। इस प्रकार के ऋणों पर बहुत कम ब्याज मिलता है। इसका भुगतान अधिकतर ऋण लेने वाले की इच्छा पर निर्भर रहता है। दूसरे वे जो प्रायः दलालों को दिये जाते हैं और जिनको बैंक किसी भी समय माँग सकता है तथा माँगने पर २४ घण्टे के भीतर इनका भुगतान करना आवश्यक है। जब बैंक में ग्राहक के चालू खाते में रुपया समाप्त हो जाता है तब भी बैंक अपने ग्राहक को खाते से अधिक रुपया निकालने की सुविधा देता है।

२—बिल अथवा हुण्डी को मिति काटे पर लेकर—विनिमय साध्यपत्र जैसे बिल, हुण्डी आदि जिनका भुगतान एक निश्चित तिथि पर होता है व्यापार में बहुत अधिक प्रचलित हैं। इनके रखने वाले को प्रायः निश्चित तिथि से पूर्व ही रुपये की आवश्यकता पड़ जाती है। बैंक ऐसे पत्रों को रखने वाले से स्वयं ले लेते हैं तथा उन्हें मितिकाटा काटकर उसका भुगतान कर देते हैं। इस प्रकार व्यापारियों का आवश्यकता के समय काम चल जाता है तथा बैंक को अपने धन के उपयोग करने का एक अच्छा अवसर मिल जाता है क्योंकि यह साधारण तौर पर ऋण देने से अधिक सुरक्षित है। बिल में उसके भुगतान के

लिये सिकारने वाले के अतिरिक्त लिखने वाला व बेचान करने वाला भी उत्तरदायी होता है। अतएव बैंक अपने यहां जमा किया हुआ बहुत सा धन बिलों व अन्य विनिमय साध्य पुर्जों के भुनाने में उपयोग करते हैं।

३—*सरकारी ऋण में लगाकर*—सरकार को अपना कार्य करने के लिये बहुत से रुपये की आवश्यकता होती है। अतएव वह समय २ पर जनता से ऋण लेती रहती है। सरकार इस ऋण पर व्याज देती है तथा जनता का रुपया सरकार को ऋण पर दे देने से अधिक सुरक्षित हो जाता है। अतएव बैंक अपने पास जमा रुपये को सरकार को ऋण देकर लाभ उठाते हैं, साथ ही उनके कार्य में इस प्रकार सहायक सिद्ध होते हैं। सरकार एक निश्चित समय के लिये ऋण लेती है तथा उसके पश्चात् या तो ऋण का भुगतान किया जाता है अथवा उसको रद्द करके दूसरे ऋण-पत्र में बदल दिया जाता है।

बैंकों के विविध कार्यों में नोटों का चालू करना भी एक मुख्य तथा महत्वपूर्ण कार्य है। कुछ स्थानों पर नोटों के प्रचलन पर सरकार ने अपना एकाधिकार स्थापित कर रक्खा है, परन्तु प्रायः यह कार्य बैंक द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। कुछ काल पहले प्रत्येक बैंक नोट प्रकाशित करने का कार्य करता था परन्तु वर्तमान काल में प्रत्येक देश का सेन्ट्रल बैंक ही नोटों को चलाने का कार्य करता है। यह बैंक सरकारी नियंत्रण में रहता है।

अन्य कार्य—जनता का रुपया जमा करने व ऋण पर देने के अतिरिक्त बैंक जन साधारण को निम्नलिखित सुविधायें और प्रदान करता है।

१—बैंक ग्राहकों को ड्राफ्ट, साखपत्र, गश्ती नोट इत्यादि देता है जिससे उसका ग्राहक उसकी साख प्रतिष्ठा पर धन

दूर दूर के स्थानों पर अति सरलता पूर्वक भेज सकता है।

२—बैंक अपने ग्राहकों के बिलों को स्वीकार करके उनकी साख सम्बन्धी प्रतिष्ठा को बढ़ाता है तथा बिल को भुना कर उनका भुगतान कर देता है।

३—यह ग्राहकों की व्यापारिक तथा आर्थिक मान मर्यादा बढ़ाता है। जो मनुष्य बैंक में रुपया रखते हैं उनके विषय में बैंक अन्य मनुष्यों को उनकी आर्थिक तथा व्यापारिक दशा बताकर व्यापार में उनकी प्रतिष्ठा को स्थिर रखता है। जो व्यापारी उसके ग्राहकों से उधार माल खरीदना चाहते हैं, उनकी भी आर्थिक स्थिति का पूर्ण विवरण ग्राहक को पहुंचाता है।

४—यह अपने ग्राहकों की मूल्यवान् वस्तुओं को जैसे आर्थिक पत्र, आभूषण व अन्य सम्पत्ति को साधारण फीस लेकर सुरक्षित रखता है जिससे उसके ग्राहक पर से उनके खो जाने अथवा टूट फूट जाने का एक बहुत बड़ा भय उतर जाता है। वह अपनी वस्तुओं की ओर से निश्चिन्त हो जाता है।

५—बैंक व्यापारियों के चरित्र के आदर्श को उन्नत करके देश की कला कौशल तथा देशी व विदेशी व्यापार में अत्यन्त सहायता प्रदान करते हैं। गिलबर्ट के शब्दों में, "बैंक, परिश्रमी दूरदर्शी, निष्कपट तथा समय पर कार्य करने वाले व्यक्तियों को प्रोत्साहन देता है परन्तु अतिव्ययी, जुआरी, मिथ्यावादी तथा दुष्ट मनुष्यों को सदैव निरुत्साह करता है। बैंक सचाई को प्रोत्साहन देता है—उस सचाई को जिससे एक अति दुष्ट मनुष्य भी घृणा नहीं कर सकता। संसार में अनेकों ऐसे मनुष्य हैं जिन्होंने बैंक द्वारा मिथ्यावाद व दुष्टता का निवारण करके सचाई व सच्चरित्रता को ग्रहण कर लिया है।" वास्तव में बैंक

जनता में मितव्ययता, सच्चाई व दूरदर्शी होने का प्रचार करते हैं जिससे समाज व देश को उन्नति करने में बहुत सहायता मिलती है।

६—वैंक विभिन्न व्यापारिक केन्द्रों में विभिन्न प्रकार की मुद्राओं का उचित प्रबन्ध करता है। उदाहरणार्थ यदि देश के भीतर मुद्रा में व्यापार होता है तथा नोटों का चलन नहीं है तो वैंक व्यापारियों को नोटों के वदले में सिक्के देकर व्यापार को वढ़ाने का प्रयत्न करता है।

७—वैंक ऐसे स्थानों से जहां धन पर्याप्त मात्रा में है तथा वेकार पड़ा हुआ है, एकत्रित करके ऐसे स्थानों को भेजता है जहां उसकी आवश्यकता है तथा जहां वह व्यापार में वड़ा उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

८—वैंक विदेशों की वस्तुओं को देश में उपभोग के लिये मंगाने में सहायता देता है। माल भेजने वालों के विलों को स्वीकृत करके भुगतान कर देता है तथा माल ख़रीदने वालों को विदेशों में भुगतान करने में सहायता देता है। इस प्रकार वैंक केवल देशीय व्यापार में ही नहीं, वल्कि विदेशी व्यापार में भी सहायक सिद्ध होता है।

९—चालू खाते में जमा किये हुए रुपये के किसी भाग को किसी भी समय ग्राहक को माँगने का अधिकार देता है, ग्राहक को रुपया निकालते समय वैंक नहीं जाना पड़ता। चैक को भर कर हस्ताक्षर करके भेज देने से ही वह रुपया दे दिया जाता है।

१०—उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त वैंक अपने ग्राहकों के लिये प्रतिनिधि के रूप में भी अनेकों कार्य करता है जो अगले पृष्ठ पर दिये जाते हैं।

(क) जिस प्रकार ग्राहक दूसरों को चैक, बिल, हुण्डी आदि देते हैं उसी प्रकार उन्हें भी बहुत से व्यापारी इस प्रकार के पत्र भुगतान में दे देते हैं। इन पत्रों का भुगतान लेने के लिये ग्राहक को एक बैंक से दूसरे बैंक, एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकना पड़ता है। अपने ग्राहकों को इस असुविधा से बचाने के लिये बैंक उनकी ओर से हुण्डी, चैक व अन्य दूसरे कागजों का भुगतान लेता व देता है।

(ख) ग्राहकों का आदेश मिलने पर बैंक उनके बदले आयकर, बीमा-शुल्क, संस्थाओं का चन्दा, कम्पनी के अंशों का समय २ पर दी जाने वाली रकम आदि समय २ पर चुकाते रहते हैं।

(ग) ग्राहक की ओर से कम्पनियों से लाभांश प्राप्त करने तथा कम्पनी की ओर से ग्राहकों को लाभांश के भुगतान का कार्य भी बैंक करता है। ऋणपत्र व बौण्ड का ब्याज तथा बोनस बैंक कम्पनी व ग्राहकों की ओर से देते व लेते रहते हैं।

(घ) बैंक अपने ग्राहकों को कम्पनियों के ऋणपत्र, शेयर तथा सरकारी ऋणपत्र आदि के क्रय-विक्रय में सहायता करता है।

(ङ) बैंक अपने ग्राहकों व दूसरे बैंकों अथवा अन्य आर्थिक संस्थाओं के लिए देश तथा विदेश दोनों में ही पत्र व्यवहारी तथा प्रतिनिधि के समस्त कार्य करता है।

(च) बैंक समय २ पर अपने ग्राहकों के बदले उनका किराया, पेन्शन, बीमे की राशि आदि लेकर उनके खाते में जमा करता रहता है।

सभी बैंक उपर्युक्त समस्त कार्य करते हैं जो कि

मुख्यतः तीन भागों में बाँटे जा सकते हैं:—

१—मुख्य कार्य जिसमें जमा करने व ऋण देने के कार्य सम्मिलित हैं।

२—साधारण सेवा कार्य जिसमें उपर्युक्त नम्बर १ से लेकर ६ तक के कार्य सम्मिलित हैं।

३—प्रतिनिधित्व के कार्य जिस में बैंक के वे उपरोक्त समस्त कार्य सम्मिलित हैं जो वह अपने ग्राहक के प्रतिनिधि के रूप में सम्पन्न करता है।

बैंकों से लाभ—

किसी भी देश के व्यापार को बैंक से अनेकों लाभ पहुँचते हैं जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :—

१—बैंक जनता में मितव्ययिता का प्रचार करते हैं। उन्हें रुपया बचाने का प्रलोभन देने के लिये बैंक उनके द्वारा लिये हुये धन पर व्याज देता है। यदि मनुष्य बचे हुये धन को स्वयं अपने ही पास रखता है तो उसके खर्च हो जाने का भय रहता है। बैंक उसके धन को अपने यहां जमा करके उसके बेकार खर्चों को कम करता है तथा धन की सुरक्षा का भार अपने ऊपर लेकर जमा करने वालों को चिन्ता से मुक्त कर देता है। इस प्रकार बैंक जनता में मितव्ययिता का प्रचार करके उनके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं।

२—बैंक जमा की हुई राशि को व्यापारियों को ऋण पर भी देते हैं। देश में जो विभिन्न स्थानों पर छोटी २ मात्रा में धन पड़ा रहता है तथा जिसका पृथक २ व्यक्तियों के पास उचित उपयोग होना सम्भव नहीं है उसे एकत्रित करके बैंक

अधिक उपयोगी बना देता है। इस प्रकार बैंक उन व्यक्तियों से धन लेकर जो उसे उत्पादन कार्य में नहीं लगा सकते हैं ऐसे व्यक्तियों के सम्मुख उपस्थित करता है जो उसका उचित उपयोग कर सकते हैं। इस प्रकार बैंक रुपया जमा कराने वालों तथा ऋण लेने वालों के बीच मध्यवर्ती का कार्य करते हैं। उनके द्वारा व्यर्थ पड़ी हुई धन की छोटी २ राशियों को उत्पादन कार्य में लगा दिया जाता है। वर्तमान युग के औद्योगिक तथा व्यावसायिक विकास में बैंकों का एक बहुत बड़ा हाथ है। अमरीका, जर्मनी, इंग्लैंड, जापान तथा अन्य बड़े २ देशों ने बैंकों द्वारा धन की सुविधा होने के कारण ही अपने व्यापार शिक्षा, कला-कौशल व यातायात के साधनों में इतनी उन्नति कर ली है।

३—बैंक के ग्राहकों को रुपये का भुगतान करने में अनेकों सुविधायें प्राप्त होती रहती हैं। मुद्रा में भुगतान करने पर लेने व देने वालों को उसके गिनने व परखने में बहुत सा समय व्यर्थ नष्ट हो जाता है। परन्तु बैंक में चैक द्वारा भुगतान होने के कारण रुपया देने वाले को न तो गिनने में ही परिश्रम करना पड़ता है तथा न समय ही व्यर्थ नष्ट जाता है। इसके अतिरिक्त बैंक चैक द्वारा किये गये भुगतान के लिये स्वयं साक्षी भी होता है।

४—बैंक द्वारा केवल स्थानीय भुगतानों में ही सुविधा प्राप्त नहीं होती है बल्कि अन्य स्थानों को भी सुगमता-पूर्वक रुपया भेजा जा सकता है। बैंक से बैंक-ड्राफ्ट अथवा चैक लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान को अति सरलता पूर्वक व कम व्यय पर रुपया भेजा जा सकता है।

५—व्यापारियों को प्रायः बाहर आना जाना पड़ता है।

उनको अपने साथ बड़ी मात्रा में रुपया लेकर चलने में असुविधा होती है। यदि उनका खाता बैंक में है तो बैंक उस नगर में स्थित अपनी शाखा अथवा प्रतिनिधि को लिख देता है कि अमुक व्यापारी को अमुक धन दे देना और व्यापारी को उस नगर में रुपया मिल जाता है। इस प्रकार व्यापारी रुपया लादने की असुविधा व जोखम से बच जाता है।

६—बैंक अपने ग्राहकों की आर्थिक स्थिति की सूचना दूसरों को देकर उनको बड़ी सहायता पहुँचाते हैं। नये व्यापारियों की आर्थिक स्थिति को अति सरलता से बैंक द्वारा ज्ञात करके उन्हें माल उधार दिया जा सकता है। इस प्रकार बैंक विक्रेताओं के ग्राहकों की संख्या में वृद्धि कराने में सहायक होते हैं तथा माल खरीदने वालों को उधार माल दिलाने में।

७—बैंक अपने ग्राहकों के प्रतिनिधि के रूप में उनके अनेकों कार्य बिना कुछ शुल्क लिए अथवा बहुत कम शुल्क पर कर देते हैं।

८—प्रायः व्यापारियों को अधिक व्यस्त रहने के कारण अपना बीमा शुल्क, संस्था का चन्दा, आयकर व अनेक प्रकार के भुगतान करने में बड़ी असुविधा का सामना करना पड़ता है। भुगतान में देर हो जाने के कारण प्रायः व्यापारी को हानि उठानी पड़ती है परन्तु यह समस्त कार्य बैंकों द्वारा उचित समय में सम्पन्न हो जाने से व्यापारी को सुविधा मिल जाती है और हानि भी नहीं उठानी पड़ती।

९—बैंक द्वारा प्रचलित नोट तथा चैकों के कारण मुद्रा के प्रयोग में बहुत बचत हो जाती है। बैंक द्वारा दिये गये ऋण से देश की पूंजी की मात्रा बढ़ जाने के कारण उत्पादन तथा व्यापार में बहुत वृद्धि होती है।

बैंकों के प्रकार—

प्राचीन काल में प्रत्येक बैंक समस्त प्रकार के कार्य करता था। उनके कार्यों के अनुसार बैंकों के पृथक् २ प्रकार नहीं थे। परन्तु आज का युग विशिष्टीकरण का युग है। अतः पृथक् पृथक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये भिन्न २ प्रकार के बैंक खुल गये हैं। इस प्रकार विशेष कार्यों के अनुसार बैंक निम्न लिखित भागों में विभाजित किए जा सकते हैं :—

१—व्यापारिक बैंक (Joint Stock Banks)—इन बैंकों का कार्य देशी व्यापार को संगठित करना है। ये बैंक अपने चालू खाते में व्यापारियों का रुपया जमा करते हैं तथा अन्य मनुष्यों को उनकी आवश्यकतानुसार ऋण देते हैं। ये उत्पादन के बाद तैयार माल को कारखाने या उत्पादन केन्द्र से बाजार यानी उपभोक्ताओं तक पहुँचाने में आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं। ये देश के विभिन्न हिस्सों में व्यापारिक वस्तुओं तथा अन्य कृषि प्रधान वस्तुओं के सामयिक प्रचलन के लिये भी आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं। क्योंकि इनके पास जितनी भी जमायें होती हैं अल्पकाल के लिये ही होती हैं। अतः यह बैंक अधिक समय के लिये ऋण नहीं दे सकते। ये व्यापारियों की अल्पकालीन आवश्यकताओं को ही पूरी कर सकते हैं। ये न तो उद्योग की लागत के लिये स्थायी पूंजी ही दे सकते हैं और न व्यापार सम्बन्धी कारोबार के लिये सम्पूर्ण स्थायी पूंजी। इन बैंकों को अपनी निधियां सरल सम्पत्तियों और शीघ्र चुकता हो जाने वाले कर्जों में लगाना चाहिये ताकि आवश्यकता के समय वह आसानी से देश की प्रमाणिक मुद्रा या सिक्कों में बदले जा सकें।

२—केन्द्रीय बैंक (Central Banks)—प्रत्येक देश

में एक केन्द्रीय बैंक होता है जो अन्य बैंकों का सिरताज और पथ प्रदर्शक होता है। यह बैंक सरकार के नियंत्रण में काम करता है। इसका मुख्य उद्देश्य मुद्रा व विनिमय की स्थिरता के साथ २ मूल्यों की स्थिरता बनाये रखना है। इसलिये केन्द्रीय बैंक को नोटों के प्रकाशन करने तथा उनके नियमन करने के लिये स्वर्ण निधि रखने का अधिकार होता है। यह बैंक सरकार के लिये भी बैंकर का काम करता है और सरकार की ओर से रुपया लेने और देने का कार्य करता है। सरकार के लिये ऋण प्राप्त करने के लिये यह बैंक जनकर्ज पत्रों का भी प्रबन्ध करता है। यह देश के अन्य बैंकों के लिये भी बैंकर का कार्य करता है और संकटकाल में उनकी सहायता करता है। इसका उद्देश्य केवल लाभ प्राप्त करना ही नहीं है परन्तु सभी बैंकों की सहायता करते हुये देश के आर्थिक हितों को बढ़ाना है।

३—*विनिमय बैंक* (Exchange Banks)—ये बैंक अधिकतर विदेशी व्यापार में बहुत सहायक होते हैं। विदेशी व्यापार में प्रत्येक देश का अन्य देशों से रुपया लेने व उसके भुगतान करने का कार्य इन्हीं बैंकों द्वारा सम्पन्न होता है। विभिन्न देशों की मुद्रा में भिन्नता होती है तथा देशों के एक दूसरे से दूर होने के कारण धन की प्राप्ति व भुगतान दोनों में ही बड़ी कठिनाई पड़ती है। भुगतान करने के लिये एक देश की मुद्रा को दूसरे देश की मुद्रा में परिवर्तित करना पड़ता है। विनिमय बैंक विभिन्न देशों के बीच मध्यस्थ का कार्य करते हैं और विनिमय देशों की मुद्राओं का संग्रह करके उनके विनिमय का आयोजन करते हैं।

४—*औद्योगिक बैंक* (Industrial Banks)

बैंकों का कार्य औद्योगिक संस्थाओं को आर्थिक सहायता पहुँचाना है। संगठित उद्योग धन्धों में दो प्रकार की पूंजी की आवश्यकता होती है। (१) स्थायी पूंजी और (२) कार्यशील पूंजी। कार्यशील पूंजी की अल्पकालीन आर्थिक आवश्यकतायें व्यापारिक बैंकों द्वारा पूरी हो सकती हैं परन्तु स्थायी पूंजी के लिए जो जमीन खरीदने, मकान बनवाने, मशीन लगवाने इत्यादि के लिये आवश्यक है औद्योगिक बैंकों की आवश्यकता होती है। यह बैंक जनता का रुपया अधिक समय के लिये जमा करते हैं और इसीलिये दीर्घकालीन ऋण देने में समर्थ हैं। जापान में सन् १६०२ में इसी प्रकार का इण्डस्ट्रियल बैंक स्थापित हुआ था। जर्मनी में भी औद्योगिक बैंकों ने देश के औद्योगीकरण में सब से अधिक सहायता प्रदान की। भारत में भी सन् १६४८ में इण्डस्ट्रियल फाइनेन्स कॉरपोरेशन की इसी उद्देश्य से स्थापना हुई। इसका मुख्य कार्य उद्योग धन्धों में लगी हुई संस्थाओं को स्थायी पूंजी प्राप्त करने में सहायता करना है।

५—*कृषि सम्बन्धी अथवा भूमि बन्धक बैंक* (Agricultural and Land Mortgage Banks)—कृषि में भी कृषक को ऋण लेने की आवश्यकता पड़ती है। उनकी आर्थिक सहायता करने के लिये पृथक बैंक होते हैं। इनको भी दो प्रकार के ऋणों की आवश्यकता होती है। (१) एक तो वे जो लम्बी अवधि की आवश्यकतायें पूरी करें, और (२) दूसरे वे जो अल्पकालीन आवश्यकतायें पूरी करते हैं। लम्बी अवधि के ऋणों की आवश्यकता भूमि में स्थायी सुधार करने के लिये, अधिक भूमि खरीदने के लिये, कृषि के अच्छे तरीके और औजार प्रयोग में लाने के लिये होती है। अल्प-

कालीन ऋणों की आवश्यकता दिन प्रति दिन की जरूरतों को पूरा करने के लिये होती है। कृषकों के पास जो जमानत होती है उसके आधार पर व्यापारिक तथा अन्य बैंक उनकी सहायता नहीं कर सकते। अतः इस कार्य के लिये भूमि बन्धक बैंक और सहकारी बैंक स्थापित किये जाते हैं।

भूमि बन्धक बैंक (Land Mortgage Banks)

वे बैंक हैं जो कृषकों की दीर्घकालीन मांगें पूरी करते हैं। ये बैंक सुरक्षित ऋण ही देते हैं। किसानों के पास बन्धक रूप में रखने के लिये भूमि ही होती है। इसलिये किसान ऋण लेने के लिये अपनी भूमि को ही बन्धक रूप में इन बैंकों के पास रख देते हैं। ऐसे बैंक जो किसानों को भूमि बन्धक रूप में रख कर ऋण देते हैं भूमि बन्धक बैंक कहलाते हैं।

सहकारी बैंक (Co-operative Banks)

यह बैंक कृषकों के स्वयं के बैंक होते हैं और उन्हें अल्पकालीन ऋणों के प्राप्त करने में सहायक होते हैं। इनका प्रारम्भ पहले पहल जर्मनी में हुआ था। भारत में भी यह बैंक काफी तादाद में खुल गये हैं। इनके द्वारा वैयक्तिक जमानत एक बहुत बड़ी मात्रा में विकने योग्य जमानत में परिवर्तित हो जाती है। इसके अतिरिक्त इससे सदस्यों में स्वालम्बन और मितव्ययिता का भाव बढ़ता है और उन्हें स्वशासन की कला की शिक्षा भी प्राप्त होती है।

६—सेविंग्स (Savings Banks) ये बैंक ग़रीब तथा मध्यम वर्गीय मनुष्यों में जिनकी आय थोड़ी है मितव्ययिता का प्रचार करते हैं। ये बैंक इन लोगों की छोटी से छोटी रक़म भी जमा करते हैं और उस पर व्याज देते हैं। रुपया

निकालने में कुछ विशेष प्रतिबन्ध हैं जैसे रुपया हफ्ते में एक या दो बार ही निकाला जा सकता है। भारत में पोस्टल सेविंग्स बैंक अधिक लोकप्रिय हो चले हैं। व्यापारिक बैंक भी आज कल इस कार्य को करने लग गये हैं।

७—*निजी बैंक* (Private Banks) उपर्युक्त बैंकों के अतिरिक्त कुछ ऐसे निजी बैंक भी हैं जो व्यापार के साथ साथ बैंकिंग कार्य भी करते हैं। इनके काम करने के ढंग बहुत पुराने हैं। हमारे देश में इनकी संख्या आज भी बहुत है। कृषि के सारे धन्धे और देशान्तर्गत व्यापार के एक बहुत बड़े भाग को यही आर्थिक सहायता पहुँचाते हैं। ये हमारे आर्थिक संगठन के बहुत ही आवश्यक अंग हैं।

८—*अन्य प्रकार के बैंक* (Miscellaneous) लोगों की विशेष आवश्यकतायें पूरी करने के लिये आधुनिक काल में कुछ अन्य प्रकार के बैंक भी खुल गये हैं। इंग्लैंड और अमरीका में विनियोग करने वाले बैंक (Investment Banks) हैं जिनका काम पूंजी को अनेक प्रकार के प्रयोगों में विभाजित करना है। अमरीका में मजदूरों के अपने मजदूर बैंक हैं जिनमें वे अपनी बचत जमा करते हैं। कहीं २ विद्यार्थी बैंक (Students Banks) भी हैं जिनमें विद्यार्थी अपनी बचत जमा करते हैं। लन्दन के सौदागर, महाजन और वहां की स्वीकृत संस्थायें (Accepting Houses) भी अन्य प्रकार की ऐसी संस्थायें हैं जो एक विशेष प्रकार का कार्य करती हैं। लन्दन में ऐसी संस्थायें भी हैं जहां बिल समय से पूर्व भुनाये जा सकते हैं। ये कुछ अन्य प्रकार के बैंकों के उदाहरण हैं। भिन्न २ देशों में उनकी भिन्न २ प्रकार की आवश्यकतायें पूरी करने के लिये अगणित प्रकार की बैंकिंग संस्थायें हैं।

अभ्यास-प्रश्न

१—बैंक क्या हैं ? भारत में पाये जाने वाले भिन्न २ प्रकार के बैंकों के कार्यों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

२—बैंक शब्द की उत्पत्ति कब और किस प्रकार हुई यह बताते हुये बैंक की एक उपयुक्त परिभाषा लिखिये।

३—बैंक के कार्यों का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिये।

४—बैंक से हम को क्या २ हानि व लाभ हैं ? आधुनिक अर्थ-व्यवस्था में बैंकों का क्या महत्व है समझाइये।

दूसरा अध्याय

बैंक की कार्य-विधि

किसी भी बैंक की क्रिया अर्थात् कार्य-विधि के विषय में ज्ञान प्राप्त करनेके लिए हमें उसके चिट्ठे (Balance Sheet) का अध्ययन करना चाहिए, जिससे बैंक की आर्थिक स्थिति का पूरा ज्ञान हो जाय। बैंक के चिट्ठे के दो भाग होते हैं,—एक तो दायित्व (Liabilities) और दूसरा सम्पत्तियां (Assets)। दायित्व भाग से हमें यह पता चलता है कि बैंक किस तरह अपनी स्थायी और कार्यशील पूंजी प्राप्त करता है और सम्पत्ति भाग से यह पता चलता है कि बैंक अपनी पूंजी को किस प्रकार उपयोग में लाता है। नीचे अध्ययन के लिए एक कल्पित चिट्ठा दिया जाता है:—

बैंक चिट्ठा (Balance Sheet of a Bank)

दायित्व	सम्पत्तियां
१. पूंजी—	१. नक़द कोष
अधिकृत पूंजी—	२. केन्द्रीय बैंक के पास नक़दी
विक्रत हुई पूंजी—	३. याचनाय और सूचनाय मुद्रा (Money at call and short notice)
प्राप्त पूंजी—	४. खरीदे और भुनाये हुए बिल
२. कोष	
सुरक्षित कोष	
अन्य कोष	

दायित्व	सम्पत्तियाँ
३. जमा दायित्व—	५. विनियोग—
माँग जमा	सरकारी प्रतिभूतियां
सामयिक जमा	(ट्रेजरी बिल)
अन्य जमा	केन्द्रीय सरकार की ,,
	प्रान्तीय सरकार की ,,
४. अन्य दायित्व—	अन्य सार्वजनिक ,,
देय बिल	६. ऋण तथा अग्रिम
ब्रांच का दायित्व	७. बैंक भवन, फर्नीचर इत्यादि
अन्य बैंकों का दायित्व	८. लाभ हानि का हिसाब
५. लाभ हानि का हिसाब	९. स्वीकृत तथा बेचान के लिए
६. स्वीकृत तथा बेचान के लिए	ग्राहकों के दायित्व

दायित्व (Liabilities)

पूंजी (Capital) —अधिकृत पूंजी वह पूंजी होती है जो स्मृतिपत्र में दी रहती है। बैंक इससे अधिक पूंजी किसी भी दशा में प्राप्त नहीं कर सकता। बैंक जितनी पूंजी की उसे आवश्यकता है उससे अधिक पूंजी प्राप्त करने का अधिकार लेता है ताकि भविष्य में व्यापार के फैलाव के साथ २ पूंजी बढ़ाई जा सके। इस पूंजी को हिस्सों में विभाजित कर कुछ हिस्सों का जनता में विक्रय करते हैं और वह प्रचलित पूंजी कहलाती है। बिके हुए हिस्से बिकी हुई पूंजी के नाम से पुकारे जाते हैं। यदि हिस्सों का रुपया किश्तों में अदा किया जाता है तो पूंजी का वह भाग जो नक़द प्राप्त हो चुका है प्राप्त पूंजी कहलाता है। बिकी हुई पूंजी का वह हिस्सा जो मांगा नहीं गया है बिना मांगी हुई पूंजी कहलाता है और आवश्यकता

के समय माँगा जा सकता है। ठोस बैंकिंग नीति के अनुसार हर एक बैंकर को कुछ न कुछ बिना मांगी हुई पूंजी रखनी चाहिए। एक बैंक के पास एक न्यूनतम प्राप्त पूंजी का होना आवश्यक है। इसका बिकी हुई पूंजी तथा अधिकृत पूंजी से उचित अनुपात होना चाहिए जो देश और काल की परिस्थिति पर निर्भर है। भारतीय संयुक्त पूंजी वाले बैंकों को १९४९ के बैंकिंग विधान के अनुसार प्राप्त पूंजी बिकी हुई पूंजी का ५० प्रतिशत और बिकी हुई पूंजी अधिकृत पूंजी की ५० प्रतिशत होनी चाहिए। इस विधान के अनुसार कोई भी कमजोर बैंक अपर्याप्त प्राप्त पूंजी से व्यवसाय नहीं कर सकता।

सुरक्षित कोष (Reserve Fund)

प्रत्येक वर्ष बैंक हिस्सेदारों में लाभांश वितरण करने से पूर्व लाभ का कुछ प्रतिशत सुरक्षित कोष में डाल देता है। यह कोष बैंकों के लिये बहुत महत्वपूर्ण है और बैंक की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाता है। इसके द्वारा अज्ञात घटनाओं से होने वाली हानियों को आसानी से पूरा किया जा सकता है। इस कोष को अधिकतर आसानी से बिक जाने वाली प्रतिभूतियों में विनियोग कर देते हैं। प्राप्त पूंजी तथा सुरक्षित कोष मिलकर बैंक की कार्यशील पूंजी बन जाते हैं। भारतीय बैंकिंग कम्पनीज़ एक्ट १९४९ के अनुसार प्रत्येक भारतीय बैंक को लाभांश वितरण करने से पूर्व कुल लाभ का २० प्रतिशत सुरक्षित कोष में जमा करना पड़ता है जब तक कि वह प्राप्त पूंजी के बराबर न हो जाय।

इसके अतिरिक्त बहुत से बैंक लाभ संतुलित कोष, संदेह-पूर्ण ऋण कोष और गुप्त कोष भी रखते हैं। गुप्त कोष चिट्ठे

में न दिखाकर गुप्त रखे जाते हैं। बैंक जैसी संस्थाओं के लिए गुप्त कोष बहुत आवश्यक है। इनके द्वारा विशेष हानियों को बिना जनता को परिचित किये हुये ही पूरा किया जा सकता है जिससे जनता का बैंक में विश्वास बना रहता है।

जमा दायित्व

बैंक विभिन्न खातों में रुपया जमा करता है और उन पर व्याज देता है ये उसके [illegible] दायित्व होते हैं। माँग जमा बैंक को चैक [illegible] मांगने पर तुरन्त वापिस करनी पड़ती है। सामयिक जमा की वापसी एक निश्चित अवधि के बीतने पर की जाती है। अन्य जमा के अन्तर्गत न मांगी हुई जमा या न मांगे हुये लाभांश और व्याज आते हैं।

देय बिल (Bills Payable)

यह बिल बैंक अपनी शाखाओं और एजंटों के नाम लिखता है और उन व्यक्तियों के हाथ बेचता है जिन्हें कहीं रुपया भेजने की आवश्यकता होती है। इन बिलों का भुगतान उपस्थित किये जाने पर बैंक को ही करना पड़ेगा इसलिए यह बैंक का दायित्व है।

स्वीकृत तथा बेचान के लिये दायित्व (Acceptances & Endorsements)

बहुधा बैंक अपने ग्राहकों के बिलों पर स्वीकृति देता है तथा उनके बिलों का बेचान करता है। ऐसी स्वीकृति तथा बेचान बैंक के लिए दायित्व है क्योंकि बैंक को इनका भुगतान करना पड़ता है। परन्तु इन बिलों का रुपया बैंक ग्राहकों से प्राप्त कर लेता है इसलिए यह चिट्ठे की सम्पत्ति के भाग में भी दिखाये जाते हैं।

लाभ-हानि का हिसाब (P.& L. A/C)—

इसके अन्तर्गत गत वर्ष तथा नये वर्ष के लाभ आते हैं। यदि यह खाता हानि बतलाता है तो वह सम्पत्ति के भाग में रखा जाता है। बैंकों की आय के मुख्य साधन निम्नलिखित हैं:—

माँग पर वापिस होने वाले ऋणों पर का व्याज, बिलों की कटौती, ऋणों पर व्याज, साख-पत्रों की लागत पर व्याज, बिलों पर स्वीकृति देने का प्रतिफल, प्रासंगिक मूल्य, अन्य आढ़त के कार्यों की आय, धरोहरी, सर्वराहकार और साधक के कार्य का प्रतिफल, बहुमूल्य वस्तुओं को सुरक्षित रखने का प्रतिफल तथा धन भेजने और विनिमय व्यवसाय से आय।

इन सब लाभों में से बैंकर को सब खर्च काटने पड़ते हैं जो इस प्रकार हैं:—स्थायी तथा अन्य जमाओं पर व्याज, संचालकों और अन्य कर्मचारियों के वेतन आदि, बैंकरों के संघों आदि के सदस्य शुल्क, दफ्तर सम्बन्धी अन्य खर्चे, प्रतिनिधियों के खर्च, भवन तथा फर्नीचर आदि का ह्रास, अप्राप्य ऋण और कर्मचारियों द्वारा गबन, आय तथा अन्य कर।

इन खर्चों को कम करने के बाद जो बचता है बैंक का लाभ होता है जिसमें से कुछ प्रतिशत सुरक्षित व अन्य कोषों में जमा कर, शेष हिस्सेदारों में बांट दिया जाता है।

बैंक की सम्पत्तियां (Assets)

अब हमें यह जानना आवश्यक है कि बैंक किस प्रकार की सम्पत्ति में अपनी कार्यशील पूंजी का विनियोग करता है। अन्य संस्थाओं की भांति बैंक भी लाभ कमाने वाली संस्था है

परन्तु यह लाभ केवल हिस्सेदारों के लिये ही नहीं परन्तु जमाकर्ताओं के लिये भी जिन्हें सूद दिया जाता है, कमाया जाता है। वैंक की आय वैंक की सम्पत्तियों से होती है, और वैंक की सम्पत्ति जन साधारण की "वैंक के पास जमा रखनेकी इच्छा" पर निर्भर करती है। अतः वैंक का लाभ इस वात पर निर्भर करता है कि किस सीमा तक वैंक अपनी कार्यशील पूंजी को आयप्रद सम्पत्तियों में लगाता है। वैंक में जनताका विश्वास होना भी आवश्यक है और जनता के विश्वास के लिये वैंक को अपनी सम्पत्तियां अधिक से अधिक तरल रखनी चाहिए जिससे वह शीघ्रतापूर्वक और मूल्य में बिना ह्रास सहे नक़द में परिणित की जा सकें।

किसी भी वैंक को कार्यशील पूंजी के विनियोग करते समय तीन वातों का ध्यान रखना चाहिए:—सुरक्षितता (Safety), तरलता (Liquidity), और लाभप्रदता (Profitability)। कुशल वैंकर ऐसी व्याजू लागत ढूढ़ते हैं जो सरलता से वसूल की जा सके और भगतान के लिये लगातार पकती (Mature) रहे। इनकी सम्पत्तियों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है,— (१) लाभ न देने वाली और (२) लाभ देने वाली। वैंक की लाभ न देने वाली सम्पत्तियां नक़द कोप और मृत स्टाक हैं और लाभ देने वाली सम्पत्तियां मांग पर वापिस होने वाली लागत (Call Money), विलों की लागत (Discounts), ऋण (Advances), विनियोग (Investments) और बिल स्वीकार करना (Acceptances) इत्यादि हैं।

नक़द कोप (Cash Reserve)

वैंक के लिये सबसे तरल सम्पत्ति नक़द कोप है किन्तु यह लाभप्रद सम्पत्ति नहीं है। वैंक को रक़म निकासी की मांग

को पूरा करने के लिए कुछ न कुछ नक़द कोप रखना ही पड़ता है। यह बैंक की रक्षा की पहली श्रेणी है। जब जनता की नक़द रुपए की मांग होती है तो पहले पहल वह बैंक द्वारा रखे हुए नक़द कोप से पूरी की जाती है। नक़द कोप का कुल जमा दायित्व से अनुपात देश और समय की परिस्थिति के अनुसार बदलता रहता है। यह निम्नलिखित बातों पर निर्भर है:—

(१) बहुत से देशों में नक़द कोप का अनुपात विधान के द्वारा निश्चित कर दिया गया है। डेनमार्क में यह चालू जमा का १० प्रतिशत है, अर्जेनटाइना में यह स्थायी जमा का ८ प्रतिशत और चालू जमा का १६ प्रतिशत है, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में यह भिन्न २ स्थानों में भिन्न २ है। हमारे देश में सभी शिड्यूल्ड और गैर-शिड्यूल्ड बैंकों को चालू जमा का ५% और स्थायी जमा का २% नक़द कोप के रूप में रखना पड़ता है। कुछ देशों में इस प्रतिशत में केवल बैंकों में रक्खा हुआ नक़द कोप और कुछ में केन्द्रीय बैंक में रखा हुआ नक़द कोप भी सम्मिलित है।

(२) जिस देश में चैक का व्यवहार अधिक लोकप्रिय हो गया है वहां नक़द कोप का अनुपात बहुत ही कम रहता है।

(३) यह अनुपात देश में अन्य बैंकों के नक़द कोप के अनुपात पर भी निर्भर रहता है। यदि किसी स्थान पर एक बैंक अधिक नक़द कोप रखता है तो दूसरे बैंकों को भी वही प्रतिशत नक़द कोप का रखना पड़ेगा।

(४) नक़द कोप की मात्रा बैंक के प्रत्येक ग्राहक की जमा के औसत की मात्रा पर भी निर्भर रहता है। इसकी मात्रा इतनी होनी चाहिए जो सबसे अधिक जमा रखने वाले ग्राहक

की माँग पूरी कर सके।

(५) यदि देश में निकास प्रणाली बहुत ही उन्नत है तो बैंकों पर लिखे गये चैकों का भुगतान अधिकतर आपस ही में हो जाता है और नक़दी की विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती। ऐसी स्थिति में बैंक बहुत कम नक़द कोष रखते हैं।

(६) जिन देशों में लोग अपने पास नकदी न रख कर बैंकों द्वारा काम करते हैं वहाँ बैंकों के पास हमेशा रुपया आता और जाता रहता है और उन्हें रुपये का अभाव नहीं रहता। अतः वे कम नकद कोष से भी अपना कार्य चला सकते हैं।

(७) यदि किसी बैंक की लागत ऐसी है जो आवश्यकता पड़ने पर आसानी से वसूल की जा सके तो उस बैंक का कार्य कम नकद कोष से भी चल सकता है।

(८) व्यापारिक क्षेत्र के बैंकों को कृषक क्षेत्रों के बैंकों की अपेक्षा अधिक नकद कोष रखना पड़ता है क्योंकि व्यापारियों को बार २ रुपया निकालने की आवश्यकता पड़ती है।

(९) यदि बैंक के ग्राहक ऐसे हैं कि कभी २ बहुत रक़म निकालते हैं जैसे बिलों के दलाल तो बैंक को उनकी मांग पूरा करने के लिए पर्याप्त नक़द कोष रखना पड़ता है।

मृत स्टाक (Dead Stock)

यह बैंक की लाभ न देने वाली दूसरी सम्पत्ति है जिसमें बैंक भवन और उसके सम्बन्ध की अन्य वस्तुयें जैसे फर्नीचर आदि सम्मिलित हैं। इनका होना भी बैंक के लिए अति आवश्यक है क्योंकि बिना इनके व्यवसाय करना ही असम्भव है। बैंक भवन बहुत सुन्दर होना चाहिए जिससे लोग आकर्षित हों। इसके अतिरिक्त वह सुरक्षित भी होना चाहिए और कम मूल्य का भी। आवश्यकता

पड़ने पर मृत स्टाक आसानी से बेचा नहीं जा सकता।

बैंक की लाभप्रद सम्पत्तियां

लघु कालीन ऋण (Money at call and ShortNotice):

यह एक प्रकार का अल्पकालीन ऋण है जो केवल कुछ दिनों के लिए ही दिया जाता है और सूचना देकर २४ घन्टे के अन्दर शीघ्र ही वापिस लिया जा सकता है। कुछ देशों में यह ऋण १४ दिनों के लिए भी दिया जाता है। इन ऋणों पर सूद की दर बहुत कम होती है क्योंकि ऋणी इसका लाभ बहुत कम समय तक उठा पाता है। लन्दन में ऐसे ऋण बहुधा बिल के दलालों, भुनान गृहों (Discount Houses) तथा स्टाक एक्सचेंज के व्यवसायियों को प्रथम श्रेणी के प्रतिभूतियों पर दिये जाते हैं। भारतवर्ष में ऐसे ऋण अधिक लोक प्रिय नहीं हैं क्योंकि यहाँ डिस्काउन्ट मार्केट और स्टाक एक्सचैंज अधिक संगठित नहीं हैं। फिर भी बैंक अपने पास के अतिरिक्त नक़द कोष को इस प्रकार के ऋणों में देकर कुछ लाभ कमा लेते हैं। यह ऋण खतरे से खाली हैं क्योंकि इनकी जमानतों को बेच कर आसानी से वसूली की जा सकती है। शांतिकाल में यह नकद के समान ही समझे जाते हैं और यह रक्षा की दूसरी श्रेणी में आते हैं।

विनिमय बिलों का भुनाना (Bill Discounting)

बैंकों के लिए अपनी कार्यशील पूंजी का सदुपयोग करने का यह सबसे उत्तम साधन माना गया है। इसमें व्यापारिक बिल, देशी तथा विदेशी बिल, ट्रेजरी बिल तथा प्रामिसरी नोट सम्मिलित हैं। इनकी अवधि प्रायः तीन माह की हुआ करती है। इन बिलों पर बहुधा अच्छी २ संस्थाओं के हस्ताक्षर होते

हैं। भारत में शिड्यूल्ड तथा सहकारी बैंक इन बिलों पर हस्ताक्षर करते है। इन हस्ताक्षरों के कारण इन बिलों को आवश्यकता के समय अन्य संस्थाओं अथवा केन्द्रीय बैंक के हाथों बेचा या दुबारा भुनाया जा सकता है। ये बिल भी खतरे से रहित होते हैं और केवल संकटमय परिस्थिति के समय ही इनके मूल्य में कमी होती है। इनमें तरलता और सुरक्षिता अधिक होती है और इसी कारण इनमें कम आय होने पर भी बैंकर इनमें अधिक रुपया लगाते हैं। यह रक्षा की तृतीय श्रेणी में आते हैं। परन्तु बिलों के सम्बन्ध में उनके लिखने वाले, ऊपर वाले तथा बेचान करने वाले धनियों की व्यापारिक स्थिति का भी पता लगाते रहना चाहिये क्योंकि उनकी स्थिति पर ही बिलों का भुगतान निर्भर है। फिर एक ही प्रकार के सौदों के बिलों में ही सारी रकम नहीं फंसानी चाहिये और अन्त में लगातार पकने वाले बिलों में ही बैंक को अपनी रक़म लगानी चाहिये जिससे वह धीरे २ मिलती रहे और ग्राहकों की मांग की पूर्ति होती रहे।

विनियोग (Investments)—

बैंक अपनी पूंजी सरकारी, अर्ध-सरकारी, सार्वजनिक संस्थाओं और उद्योग धन्धों सम्बन्धी साख-पत्रों में भी लगाते हैं। सरकारी प्रतिभूतियां काफी सुरक्षित होती हैं और आवश्यकता पड़ने पर आसानी से बेची जा सकती हैं। परन्तु जब सूद की दर बढ़ जाती है तो इनका मूल्य घट जाता है। आर्थिक मन्दी के समय तो इनका बेचना बहुत कठिन हो जाता है और प्रतिभूतियों का मूल्य भी आर्थिक मन्दी के समय गिर जाता है। इन पर की वार्षिक आय भी अधिक नहीं होती। इन साखपत्रों की कीमत बढ़ जाने प अवश्य

लाभ हो जाता है परन्तु यह सट्टेबाज़ी है और बैंकिंग व्यवसाय के विरुद्ध है। परन्तु फिर भी एक व्यापारिक बैंक को अपनी कार्यशील पूंजी का अधिक हिस्सा इन साख पत्रों में नहीं लगाना चाहिये क्योंकि मन्दी के समय इस को बेचना कठिन हो जाता है और इसके अतिरिक्त व्यापारिक बैंकों के लिये विनियोग का यह उपयुक्त क्षेत्र है भी नहीं।

ऋण तथा अग्रिम (Loans and Advances)—

ऋण तथा अग्रिम बैंकर का मुख्य व्यवसाय है। यह सब बैंकर की सब से अधिक लाभ देने वाली सम्पत्ति है। बैंकर अच्छे सूद पर ऋण देकर लाभ कमाता है। साधारणतया यह ऋण नकद साख, ऋण तथा अधिनिकास का रूप लेते हैं। इन में तरलता की कमी होती है क्योंकि ऋणियों से शीघ्र ही इनकी वापसी नहीं ली जा सकती। ऋण देने से पहले बैंकर को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये :—

१—*'एक ही टोकरी में सभी अंडों को रखना उचित नहीं'*—वाली कहावत के अनुसार बैंकर को एक ही क्षेत्र या एक ही व्यवसाय में अधिक ऋण नहीं देने चाहिये। जहां तक हो ऋण अधिकाधिक विस्तृत क्षेत्र में बंटे रहने चाहिये।

२—कुल जमादायित्व का एक खास प्रतिशत ही ऋण तथा अग्रिम के रूप में देना चाहिये।

३—प्रत्येक बैंकर को नक़दी का पर्याप्त कोष अपने पास रखना चाहिये।

४—बैंकर को ज़मानत भली भांति देख कर लेनी चाहिये और अपने पक्ष में मूल्य में घट बढ़ होने की सम्भावना के अनुसार यथेष्ट गुँजाइश (Margin) रख लेनी चाहिये।

५—उसे इस बात का ध्यान होना चाहिये कि उसे चालू लेन देन का प्रवन्ध करना है।

६—व्यापारिक वैंकों का उद्देश्य केवल अल्पकालीन साख उत्पन्न करना है और उन्हें इस नियम से विचलित नहीं होना चाहिये।

७—ऋणों का बार २ नवीनकरण नहीं करना चाहिये। इससे उनका भुगतान कठिन हो जाता है।

८—ऋण के उद्देश्य को भी ध्यान में रखना वैंकर के लिये आवश्यक है। यह देख लेना चाहिये कि ऋण कहां से वापिस होगा।

९—जमानतों के मूल्य का भी ध्यान वैंकर को रखना चाहिये। यदि उनका मूल्य अधिक घट जाय तो अन्य जमानत मांग कर उस को पूरा कर लेना चाहिये।

१०—अधिक कम व्याज पर भी ऋण नहीं देने चाहिये।

११—अन्त में वैंकर को ऋणी का चरित्र भी देख लेना चाहिये क्योंकि अच्छे चरित्र से बढ़ कर कोई जमानत नहीं है। ऋणी में ईमानदारी, तत्परता, न्यायप्रियता और व्यवस्था पालन की आदत होना आवश्यक है। यही गुण उसके चरित्र को बनाते हैं।

अभ्यास-प्रश्न

१—वैंक की क्रिया (Working) का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

२—वैंक का एक चिट्ठा (Balance Sheet) दीजिये तथा उसकी किन्हीं चार बातों को विस्तारपूर्वक समझाइये।

३—वैंक की कार्यशील पूंजी किन तरीकों से प्राप्त होती है और उसका उपयोग किस प्रकार किया जाता है संक्षेप में समझाइये।

तीसरा अध्याय ।

बैंकर और ग्राहक

बैंक और ग्राहक के सम्बन्ध के विषय में लिखने से पूर्व यह जान लेना चाहिये कि बैंकर और ग्राहक किसे कहते हैं। बैंकर की परिभाषा करना बहुत ही कठिन है। फिर भी साधारण तौर पर हम यह कह सकते हैं कि बैंक या बैंकर वह है जो चालू खाते में मुद्रा जमा करे और चैक द्वारा उसका भुगतान करे। 'जान पेगट (John Paget) के अनुसार कोई भी संस्था या व्यक्ति बैंकर नहीं हो सकता जो खातों पर रुपये जमा न करे, चैक न सिकारे और रेखांकित व अरेखांकित चैक एकत्रित न करे।

ग्राहक वह है जो कुछ समय तक बैंक से व्यवहार करता रहा हो और उसका बैंक से कारबार बैंकिंग सम्बन्धी हो। आज कल पहली शर्त का होना अर्थात् ग्राहक का कुछ समय तक बैंक से व्यवहार करता रहना आवश्यक नहीं है। यदि उसी दिन भी हिसाब खोला गया हो जिस दिन के लेन-देन के सम्बन्ध में कोई झगड़ा है तब भी वह ग्राहक माना जायगा। इसलिये ग्राहक वह है जो बैंक में अपना हिसाब रखता है, रुपये जमा कराता है तथा उन्हें चैक द्वारा निकालता है। इसका यह अर्थ हुआ कि बैंकर के यहां उसका चालू खाता

(Running Account) होना चाहिये।

बैंकर तथा ग्राहक का सम्बन्ध—

बैंकर और ग्राहक का आपस में प्रमुख सम्बन्ध देनदार और लेनदार का है। ग्राहक अपना रुपया बैंक में जमा कर बैंक का लेनदार बन जाता है और बैंक ग्राहक का देनदार। परन्तु जब ग्राहक बैंक की आज्ञानुसार अपने जमा किये हुये धन से अधिक रुपया अपने खाते में से निकाल लेता है तो यह सम्बन्ध उल्टा हो जाता है अर्थात् ग्राहक देनदार हो जाता है और बैंकर लेनदार।

बैंकर इस जमा किये हुये रुपये के सम्बन्ध में ग्राहक का ट्रस्टी या एजेन्ट नहीं होता, जब तक कि वह ट्रस्टी या एजेन्ट विशेष रूप से न बना दिया जाय। इसलिये बैंकर को जमा की हुई रकम पर पूरा अधिकार होता है और वह जिस प्रकार भी चाहे उसे अपने काम में ला सकता है। बैंक की यह जिम्मेदारी अवश्य होती है कि ग्राहक जब रुपया मांगे वह उसे तुरन्त वापिस करे। बैंक और साधारण कर्जदार में भेद इतना ही है कि साधारण कर्जदार के विरुद्ध कर्ज की अवधि समाप्त हो जाने पर लेनदार बिना उससे कर्ज की अदायगी माँगे ही कानूनी कार्यवाही कर सकता है। परन्तु बैंक जब तक ग्राहक उससे रुपया न मांगे तब तक उसे अदा नहीं करता। यदि बैंकर दिवालिया हो जाय तो ग्राहक के अधिकार एक साधारण लेनदार के होंगे। बैंकों के ऋण के सम्बन्ध में मियाद का विधान (Law of Limitations) नहीं लागू होता है। बैंक को सर्वदा ग्राहक की इच्छा के अनुसार ऋण का भुगतान करना चाहिये अन्यथा वह स्वयं उस रकम के लिये उत्तरदायी होगा। यदि ग्राहक के

बैंक में एक से अधिक खाते हैं, तो बैंक को उसी खाते में से रक़म देनी चाहिये, जिसका ग्राहक ने उल्लेख किया हो, और यदि ग्राहक कोई रुपया बैंक में जमा कराने भेजे तो बैंक को उसे उसी खाते में जमा करना चाहिये, जिसका ग्राहक उल्लेख करे। यदि ग्राहक कोई उल्लेख नहीं करता है, तो बैंक उस रक़म को उस ऋण के वसूल करने के प्रयोग में ला सकता है जो ऋण बैंक का ग्राहक पर हो। बैंक अपने ग्राहक के प्रति ही उत्तरदायी होता है न कि चैक के अधिकारी के प्रति। बैंक अपने ग्राहकों के चैकों का रुपया देने के लिये सर्वदा उत्तरदायी है। यदि वह ग्राहक के चैक को बिना किसी कारण अस्वीकृत कर देगा, तो वह क्षति पूर्ति के लिये उत्तरदायी होगा। बैंक ग्राहक के चैक, ड्राफ्ट इत्यादि तभी उसके खाते में जमा करेगा जब वह उनका रुपया वसूल कर लेगा। यदि ग्राहक के बैंक में दो खाते हों और एक में नामे बाक़ी हो और दूसरे में जमा हो, तो बैंकर ग्राहक को सूचना देकर दोनों खातों का जमा खर्च बराबर करा सकता है। बैंकर का यह कर्तव्य है कि वह बिना किसी कारण अपने ग्राहकों के खाते किसी को न बतावे। ग्राहक के खाते सम्बन्धी प्रत्येक बात के लिये गोपनीयता बनाये रखने को बैंकर सदैव बाध्य होता है।

निम्नलिखित परिस्थितियों में बैंक चैक को बिना भुगतान किये लौटा सकता है :—

(१) जब चैक पर लिखे हस्ताक्षर (Signature) बैंक को पहिले दिये गये नमूने के हस्ताक्षर से नहीं मिलते हों।

(२) जब शब्द और अंकों में लिखी गई रकम में अन्तर हो।

(३) जब चैक बैंक के पास ग्राहक की शेष रकम से

अधिक के लिये काटा गया हो, विशेषकर उस समय जब कि अधिक रकम निकालने (Overdraft) के बारे में पहिले से बातचीत न कर ली गई हो।

(४) जब चैक पर आगामी अथवा बहुत पहिले की तारीख लगा दी गई हो।

(५) जब चैक धनी जोग (Order) हो और बैंक पायन्दा (Payee) से परिचित न हो।

(६) जब चैक का रेखांकन (Crossing) कर दिया गया हो और चैक बैंक की मारफत प्रस्तुत न किया हो।

(७) जब चैक पर किये गये विशेष परिवर्तनों (Material Alterations) पर ग्राहक के पूरे हस्ताक्षर न हों।

(८) जब ग्राहक ने बैंक को भुगतान न करने की आज्ञा दे दी हो।

(९) जब न्यायालय द्वारा ग्राहक के खाते में से रकम निकालने पर प्रतिबन्ध लगा दी हो।

(१०) जब चैक का भुगतान करना बैंक अथवा जनता के हितों के विपरीत जाता हो। यह प्रायः कम होता है।

(११) जब ग्राहक मर जाय, पागल हो जाय अथवा दिवालिया हो जाय।

(१२) बैंक अपनी सुरक्षा के लिये, चैक के बैंक के नियमित रूप में न होने अथवा ग्राहक को दिये गये खाली चैकों की संख्या न मिलने पर भी भुगतान नहीं करते।

(१३) अन्य कोई कारण।

बैंकर का ग्राहक से सहायक सम्बन्ध भी होता है। यह

दो प्रकार का होता है :—

(१) आढ़त (Agency) का और (२) धरोहर (Trust) का।

आढ़त का सम्बन्ध—निम्नलिखित परिस्थितियों में वैंकर ग्राहक के अढ़तिये का काम करता है :—

(१) जब वह ग्राहक के चैक, बिल, वैंक ड्राफ्ट इत्यादि का रुपया इकट्ठा करता है या उनका भुगतान करता है।

(२) जब वह ग्राहक के बिल स्वीकार या वेचान करता है।

(३) जब वह ग्राहक के नाम रकम एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजता है।

(४) जब वह ग्राहक के लिये प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय करता है।

वैंकर को उपरोक्त कार्य प्रतिनिधि के रूप में बहुत सावधानी से करना चाहिए ताकि वह ग्राहक को उनके लिये उत्तरदायी ठहरा सके।

धरोहर का सम्बन्ध—वैंक अपने ग्राहकों के धरोहरी (Trustee) भी होते हैं। वे अपने ग्राहकों की बहुमूल्य वस्तुयें मुहरबन्द हालत में सुरक्षित रखने के लिये प्राप्त करते हैं। जब वह यह कार्य मुफ्त करता है तो वह रखे हुये माल की हानि के लिये केवल एक बहुत बड़ी असावधानी करने पर ही उत्तरदायी होता है परन्तु जब वह इस कार्य के लिये ग्राहक से कुछ प्रतिफल लेता है तो वह थोड़ी सी असावधानी के कारण क्षति के लिये भी उत्तरदायी होता है। अंग्रेजी विधान में मुफ्त धरोहरी और प्रतिफल पाये हुये धरोहरी की स्थिति में कोई अन्तर नहीं है। वैंकर को धरोहर के विषय में उतना ही सावधान होना चाहिये जितना कि वह स्वयं की वस्तुओं के

लिये होगा अन्यथा वह माल के खराब हो जाने, नष्ट हो जाने और खो जाने का स्वयं ज़िम्मेदार होगा। बैंकर को धरोहर अपनी ही जगह पर रखनी चाहिये दूसरी जगह पर सामान रखने पर यदि कोई क्षति होती है तो वह सावधानी वर्तने पर भी उसके लिये ज़िम्मेदार होगा।

कभी २ बैंकर धरोहर अपने ऋण के लिये ज़मानत के रूप में रखते हैं। उस धरोहर की भी उपरोक्त ढंग से ही निगरानी करनी चाहिये। ऐसी धरोहर के सम्बन्ध में बैंकर के निम्नलिखित अधिकार हैं यदि ग्राहक ऋण चुकाने में असफल होता है।

१—ग्रहणाधिकार (Lien)—यह वह अधिकार है जिसके अनुसार बैंकर ज़मानत को ऋण न चुकाने पर केवल रोक सकता है बेच नहीं सकता। बेचने के लिये अदालत से डिग्री करवाना आवश्यक है और बाद में कुर्की करवा कर ज़मानत विक्रय भी की जा सकती है। ग्रहणाधिकार दो प्रकार का होता है।

(अ) साधारण ग्रहणाधिकार (General Lien)—इस अधिकार के अनुसार बैंकर किसी भी अच्छा अधिकार देने वाली वस्तु को जो उस के पास साधारण व्यापार में आई है केवल रोक ही सकता है जब तक उसके मालिक के ऊपर कोई भी भुगतान रह जाय। यह ग्रहणाधिकार निम्न दशाओं में लागू नहीं होता :—

(i) ग्रहणाधिकार उन वस्तुओं पर लागू नहीं होता जो किसी विशेष कार्य के लिये बैंकर के पास जमा कराई गई हो या गलती से बैंकर के पास आगई हो।

(ii) ज़मानतों का बैंकर के पास धरोहरी के रूप में होना

आवश्यक है, उनके बैंकर के रूप में होने पर यह ग्रहणाधिकार लागू नहीं होगा।

(iii) यह अधिकार उन चैक, बिल और साखपत्रों पर भी खत्म हो जाता है जिनमें कोई कमी हो, या जाली हों और बैंकर उन पर अच्छे विश्वास के साथ कार्य न करे।

(iv) बैंकर का किसी साझेदारी में किसी हिस्सेदार के निजी हिसाब पर साझेदारी के ऋण के लिये गृहणाधिकार लागू नहीं होगा।

(v) बैंकर का मरे हुए ग्राहक की जमा पर उसके उत्तराधिकारी द्वारा ली हुई अधिक रकम पर भी यह अधिकार लागू नहीं होगा।

व–विशेष ग्रहणाधिकार (Particular Lien)—इस अधिकार के अनुसार बैंकर को किसी वस्तु को उस समय तक रोकने का अधिकार है जब तक उसके सम्बन्ध के उसको सब भुगतान प्राप्त न हो जाँय। यदि किसी बैंक के पास एक ४०००) रुपए के ऋण के लिए कोई ६०००) रुपये की जमानत है तो वह इस जमानत पर ४०००) रुपए और उसका व्याज वसूल करने का विशेष ग्रहणाधिकार रखता है। शेष पर उसे कोई साधारण ग्रहणाधिकार नहीं है। परन्तु यदि वह विशेष ऋण की अदायगी के बाद भी उसके पास छोड़ दिया जाय तो बैंकर का उस पर साधारण ग्रहणाधिकार हो जावेगा।

२–*गिरवी* (Pledge)—यह बैंकर का वह अधिकार है जिसके द्वारा यदि ऋण का भुगतान नहीं हुआ है तो वह अधिकार-पत्रों को रोक कर बेच भी सकता है। जमानत बेचने से प्राप्त हुआ धन ग्राहक के नाम में जमा कर दिया जाता है।

३—रहन (Mortgage)—जब जमानत अचल सम्पत्ति जैसे मकान, जमीन आदि के रूप में होती है तो वह रेहन कहलाती है। यह दो प्रकार का होता है:—

(i) वैधानिक (Legal)—इसमें रेहन रखने वाला एक सरकारी कागज पर लिखकर रजिस्ट्री करवाकर रेहन पाने वाले को देता है। अचल सम्पत्ति रेहन पाने वाले के नाम कर दी जाती है जो यह ऋण के न चुकाने पर बेच सकता है। ऋण चुकाने के बाद वह सम्पत्ति रेहन रखने वाले को वापस कर दी जाती है।

(ii) सादा रेहन (Equitable)—इसमें अधिकार पत्र अकेले या एक स्मरण पत्र के साथ या केवल स्मरण पत्र को ही रेहन पाने वाले को सौंप दिया जाता है जो रेहन अदालत की स्वीकृत से बेच सकता है।

विशेष सम्बन्ध—उपरोक्त सम्बन्धों के अतिरिक्त बैंक का ग्राहकों से विशेष सम्बन्ध भी होता है जो इस प्रकार है:—

नाबालिग (Minor)—नाबालिग बिना किसी जोखम के बैंक में खाता खोल सकता है। परन्तु बैंकर को नाबालिग को उसकी जमा की हुई रकम से अधिक रकम नहीं निकालने देनी चाहिए क्योंकि बैंक उसको नाबालिग से वसूल नहीं कर सकता। अधिकतर बैंक नाबालिगों का खाता उनके माता पिता के नाम से खोलते हैं। नाबालिग किसी के आढ़ति... रूप में कार्य कर सकता है।

विवाहिता स्त्री (Married woman)—विवाहि... बैंक में खाता खोल कर चैक काट सकती है। ... बैंकर ने उसे कोई ऋण दे दिया है तो वह उस... भिजवा सकता केवल उसकी व्यक्तिगत ...

बिल इत्यादि का बेचान किस प्रकार होगा अथवा उनमें से किसी की मृत्यु हो जाने पर रक़म किसको दी जावेगी। यदि खाता खोलने वाले सब व्यक्ति किसी एक को चैक, बिल इत्यादि पर हस्ताक्षर करने का अधिकार नहीं देते हैं तो सभी पत्रों पर सबके हस्ताक्षर होना आवश्यक है। ओवर-ड्राफ्ट देते समय बैंक को सब व्यक्तियों से यह स्वीकृति ले लेनी चाहिए कि वे सभी सम्मिलित तथा व्यक्तिगत रूप से उसके देनदार होंगे नहीं तो वे लोग उसके सम्मिलित रूप से ही देनदार होंगे।

धरोहरी (Trustee)—इन खातों में बैंकर को यह देख लेना चाहिए कि ट्रस्टी ट्रस्ट के काम के ही लिए रुपया निकाल रहा है खर्च के लिए नहीं। यदि ट्रस्ट का हिसाब सम्मिलित नामों में है तो चैकों पर सबके हस्ताक्षर होने चाहिए जिनके हस्ताक्षर बैंक को एक धरोहर पत्र पर ले लेने चाहिए। किसी ट्रस्टी के दिवालिया हो जाने का ट्रस्ट पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

साझेदारी (Partnership)—बैंकर को एक साझीदार के कहने पर फर्म का खाता नहीं खोलना चाहिए और न ऐसे चैकों का भुगतान करना चाहिए जिस पर एक ही साझीदार के हस्ताक्षर हों। ऐसा वह तभी कर सकता है जब वह सभी साझेदारों से इस आशय का लिखित आदेश ले ले। हिसाब खोलते समय बैंक को इस बात का सभी साझेदारों से लिखित आदेश ले लेना चाहिए कि वे खाता खोलना चाहते हैं। हिसाब का किस प्रकार संचालन होगा, चैक पर कौन हस्ताक्षर करेगा, ऋण के लिए साझीदार व्यक्तिगत और सम्मिलित रूप से उत्तरदायी होंगे यह सब बातें स्पष्ट कर लेनी चाहिए।

फर्म का हिसाब फर्म के नाम में होना चाहिए। जब कोई साझीदार फर्म से अलग होता है तो बैंक को पहले खाते बन्द कर देने चाहिए और एक नया खाता खोलना चाहिए नहीं तो अलहदा होने वाला साझीदार बैंक द्वारा फर्म को उस समय के दिये हुए ऋण के दायित्व से मुक्त हो जावेगा जब कि वह फर्म का साझीदार था।

कम्पनियां (Joint stock companies)—कम्पनियों का खाता खोलते समय बैंकर को उस प्रस्ताव की नकल मांग लेनी चाहिए जो उसको संचालकों ने बैंकर नियुक्त करते समय स्वीकृत किया था। बैंकर को यह भी लिखित ले लेना चाहिए कि खाते का संचालन कौन करेगा। उसे कम्पनी की रजिस्ट्री और कार्य आरम्भ का प्रमाण पत्र भी देख लेना चाहिए। बैंक को कम्पनी का स्मरण पत्र और नियमावली भी ले लेनी चाहिए। स्मरण पत्र से कम्पनी के कारोबार और संचालकों के अधिकारों का ज्ञान हो जायेगा। नियमावली से हिसाब खोलने और हस्ताक्षर करने के नियमों का पता चल जायगा। ऋण देते समय बैंक को संचालन बोर्ड के प्रस्ताव की नक़ल जिससे ऋण लेने का अधिकार दिया गया है मांग लेनी चाहिए। यह प्रस्ताव स्मरण पत्र और नियमावलि के अनुसार होना चाहिए।

अभ्यास-प्रश्न

१—बैंक किन २ खातों में धन जमा करते हैं? उनमें से प्रत्येक के विशेष लक्षण बताइये।

२—बैंकर और ग्राहक में किस प्रकार के विविध सम्बन्ध होते हैं? समझाइये।

३—एक बैंकर के ग्राहक के प्रति क्या क्या कर्तव्य हैं? विस्तार पूर्वक लिखिये।

चौथा अध्याय

ऋण के लिए उपयुक्त ज़मानतें

बैंक केवल अच्छी ज़मानतों पर ही ऋण देती है। ये ज़मानतें कई प्रकार की होती हैं। बैंक को ज़मानत पर काम करने के समय बहुत सावधानी रखनी चाहिए। अब हम उन ज़मानतों का वर्णन करेंगे जो बैंक बहुधा स्वीकार करते हैं।

बिना ज़मानत के ऋण (Clean advances)

यदि ग्राहक की साख बहुत ही अच्छी होती है तो बैंक उसकी व्यक्तिगत ज़मानत पर ही ऋण देते हैं। ऐसी हालत में बैंकर केवल ग्राहक की ईमानदारी, चालचलन और व्यापार के ढंग पर ही भरोसा रखता है। कभी २ वह ग्राहक से लिये हुए प्रणपत्र पर एक अथवा दो व्यक्तियों के हस्ताक्षर ले लेता है। बैंकर इन ज़ामिनों के विरुद्ध तभी कार्यवाही कर सकता है जब ग्राहक ऋण अदा न कर सके।

उपर्युक्त ज़मानत दो प्रकार की हो सकती है—चालू और विशेष। चालू ज़मानत के सम्बन्ध में ज़मानत करने वाला एक विशेष रक़म तक चाहे वह कितनी बार ही क्यों न ली दी जाय उत्तरदायी रहता है परन्तु विशेष ज़मानत में वह केवल एक बार दी हुई रक़म के लिए उत्तरदायी रहता है।

अतिरिक्त आनुसंगिक जमानत (Collateral Securities)

उधार लेने वाले को वैयक्तिक जमानत के अतिरिक्त कुछ भौतिक पदार्थों या उनसे सम्बन्धित के अधिकारपत्रों के रूप में जमानत देनी पड़ती है जो अतिरिक्त जमानत कहलाती है। इस जमानत को तब काम में लाया जाता है जब ऋणी ऋण भुगतान करने से इन्कार कर दे। यह जमानत स्वत्व-ग्रहणाधिकार, अथवा गिरवी या रेहन के रूप में हो सकती है।

स्वत्व-ग्रहणाधिकार में बैंक को जमानत में केवल रोक रखने का अधिकार है उसे वह बेच नहीं सकता। बेचने से पहले डिग्री प्राप्त करके उस चीज की कुर्की करवानी पड़ती है और तब वह बेची जा सकती है। परन्तु विनिमय-साध्य पत्र केवल देनदार को उचित सूचना देकर बेचे जा सकते हैं।

गिरवी रखी हुई वस्तु को बैंकर को रोकने के अतिरिक्त उचित सूचना देकर बेचने का भी अधिकार है अतः गिरवी स्वत्व ग्रहणाधिकार से अधिक अच्छा है।

यदि जमानत अचल सम्पत्ति के रूप में होती है तो उसका रेहन करवाना पड़ता है। इसमें स्वामित्व तो हस्तान्तरित हो जाता है परन्तु उस सम्पत्ति पर कब्जा देनदार या जिसे वह चाहता है उसका रहता है। स्वत्व ग्रहणाधिकार और गिरवी में कब्जा बदल जाता है परन्तु स्वामित्व नहीं बदलता। रेहन दो प्रकार का होता है—वैधानिक रेहन और सादा रेहन। वैधानिक रेहन रेहननामे के आधार पर होता है जो एक सरकारी कागज पर लिख कर रजिस्ट्रार के पास रजिस्टर्ड करवाया जाता है। सादे रेहन में अधिकार-पत्र अकेले

ही या एक स्मरण पत्र के साथ अथवा केवल स्मरण पत्र को ही रेहन रखने वाले को सौंप दिया जाता है।

अतिरिक्त ज़मानतों के रूप

स्टाक एक्सचेंज पर बिकने वाली प्रतिभूतियां—इसमें सरकारी और गैर सरकारी दोनों पत्र शामिल हैं। यह पूर्ण रूप से विनिमय साध्य हस्तांतरित होने वाले व अविनिमय साध्य हस्तान्तरित न होने वाले दो प्रकार के होते हैं। इनमें निम्न-लिखित गुण और दोष हैं:—

गुण—(१) ये आसानी से शीघ्रता पूर्वक बेचे जा सकते हैं।

(२) इनका बाजारू मूल्य आसानी से मालूम किया जा सकता है।

(३) इनके मूल्य में अधिक उतार चढ़ाव नहीं होता।

(४) इनके स्वामित्व में कोई झगड़ा नहीं होता इसलिये इन्हें बेचने में आसानी रहती है।

(५) बैंकर इनको आवश्यकता के समय केन्द्रीय बैंक में रखकर रुपया ले सकता है।

(६) पूर्ण रूप से विनिमयसाध्य स्टाकों के सम्बन्ध में यदि वह अच्छी नियत और पूरा रुपया चुका कर प्राप्त किये गये हैं तो बैंक का अच्छा अधिकार रहता है और ऋण के भुगतान न होने तक वह उन्हें प्रत्येक व्यक्ति के विरोध में अपने पास रख सकता है।

दोष—(१) आंशिक भुगतान वाले हिस्सों और ऋण पत्रों पर शेष भुगतान मांगने पर बैंक को स्वयं भुगतान करना पड़ता है।

(२) कुछ कम्पनियों की यह शर्त होती है कि हिस्सेदार के ऊपर कम्पनी की यदि कोई रकम है, तो वह उसके हिस्से से वसूल कर ली जायगी। ऐसी हालत में यदि कम्पनी की कोई रकम हिस्सेदार पर है तो बैंक को हिस्से की पूरी रकम मिलेगी और उसको हानि उठानी पड़ेगी।

(३) यदि वह पूर्ण रूप में विनिमय साध्य हस्तान्तरित होने वाली नहीं होती तो बैंक को इसके हस्तान्तर कराने में बड़ी असुविधा होती है, और हस्तान्तरकर्ता के सूचित स्वीकार होने पर बैंक का अधिकार भी दूषित होता है।

इन प्रतिभूतियों के सम्बन्ध में बैंक को निम्नलिखित सावधानियां रखनी चाहिये :—

१—ऋण की रकम और इनके मूल्य में पर्याप्त गुंजाइश होनी चाहिये और मूल्य गिर जाने पर और अधिक जमानत मांग लेनी चाहिये।

२—आंशिक भुगतान वाले हिस्से और ऋण-पत्र जमानत में कभी स्वीकार नहीं करने चाहिये।

३—सट्टे वाले हिस्से नहीं लेने चाहिये।

४—अविनिमय साध्य पत्रों को पहले ही हस्तान्तर करा लेना चाहिये।

विनिमयसाध्य पुर्जे—विनिमयसाध्य बिल वैसे तो भुनाये भी जा सकते हैं और रखे भी जा सकते हैं परन्तु गिरवी रखने पर बैंकर को इनके पकने तक अपने पास रखना पड़ता है अतः इनको गिरवी रखना ठीक नहीं।

गुण—१—अच्छी नियत से प्राप्त करने पर बैंकर का इन पर अच्छा अधिकार रहता है।

२—इनका मूल्य निश्चत रहता है।

३—इनके पकने पर रुपया मिलना निश्चित है।

दोष—इनके पकने पर बैंकर को स्वयं इनकी वसूली करनी पड़ती है।

सावधानी—इन्हें गिरवी रखने के बजाय भुनाना अधिक अच्छा है। माल अथवा माल के अधिकार पत्र—जब माल गिरवी रख जाता है तो या तो वह बैंक के गोदाम में रखा जाता है और ऋण लेने वाले को गोदाम का किराया देना पड़ता है। या ऋण लेने वाला माल को अपने गोदाम में रख कर गोदाम की तालियां भी बैंक को सौंप सकता है। माल का बीमा कराना दोनों स्थितियों में आवश्यक है। माल के अधिकार पत्र जैसे जहाजी बिल्टी, डाक पत्र, रेल की बिल्टी, गोदाम वालों को प्रमाण पत्र इत्यादि भी गिरवी रखे जाते हैं।

गुण—(१) माल और माल सम्बन्धी कागजात स्वयं ही वास्तविक वस्तु या उसके समान हैं इसलिये अच्छी ज़मानते हैं।

(२) इन्हें आसानी से बेचा जा सकता है।

(३) इनके मूल्यों में अधिक परिवर्तन नहीं होता।

(४) इनकी ज़मानत पर लिया हुआ ऋण माल के बिक जाने पर अवश्य वापिस मिल जाता है।

(५) इनका मूल्य आसानी से कूंता जा सकता है।

दोष— (१) माल के खराब होने की सम्भावना रहती है।

(२) माल कई प्रकार के होने कीवजह से इसमें धोखा दिया जा सकता है।

(३) माल रखने के लिए जगह की आवश्यकता पड़ती है।

(४) माल या माल पत्रों के चोरी हो जाने का भय रहता है।

(५) माल सम्बन्धी अधिकार पत्रों में जालसाजी भी की जा सकती है।

सावधानियां— (१) खराब हो जाने वाला माल जमानत पर नहीं रखना चाहिए। यदि रक्खा भी जाय तो उसका बीमा करा लेना चाहिए।

(२) माल के मूल्य का पता लगाते रहना चाहिए। ऋण देते समय काफी गुँजायश रखनी चाहिए और मूल्य गिरने पर और जमानत मांग लेनी चाहिए।

(३) माल की किस्म अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए।

(४) माल की निगरानी रखनी चाहिये।

(५) माल सम्बन्धी कागजों को गिरवी रखने से पहले उनकी जांच पड़ताल कर लेनी चाहिये।

(६) बैंकर को वही माल रखना चाहिये जिसे वह आसानी से अपने गोदाम में रख सकता हो। यदि माल ऋणी के गोदाम में है तो उसकी जांच करा लेनी चाहिये।

(७) ऋण लेने वाले की ईमानदारी का पता लगवा लेना चाहिये।

(८) माल गिरवीं रक्खे जाने का प्रमाण लिखित रूप में ले लेना चाहिये।

(९) जहाजी बिल्टी की सब नकलें ले लेनी चाहिये।

भारतवर्ष में ये जमानतें अधिक प्रिय नहीं हैं, क्योंकि यहां लाइसेन्स प्राप्त गोदाम नहीं हैं। माल की किस्में निर्धारित नहीं हैं और बहुत सी चीजों के संगठित बाजार भी नहीं हैं।

जीवन बीमा पत्र—जीवन बीमा पत्र के आधार पर भी बैंक उनके तात्कालिक मूल्य तक ऋण दे देते हैं। इनका भी वैधानिक तथा सादा रेहन हो सकता है। सादे रेहन में बीमा पत्र दे दिया जाता है और वैधानिक रेहन में बेची पत्र भी भरा जाता है।

गुण—(१) इनका तात्कालिक मूल्य आसानी से मालूम हो जाता है।

(२) यदि बीमे की किश्त जारी रहती है तो इसका तात्कालिक मूल्य भी बढ़ता रहता है।

(३) बीमा पत्र के द्वारा ऋण लेने वाले के दिवालिया हो जाने पर पहले बैंकर को अपना ऋण वसूल करने का अधिकार है।

(४) एक निश्चित समय के बाद या ऋणी की मृत्यु के बाद बीमे का रुपया स्वयं ही पक जाता है।

(५) यदि जीवन बीमा पत्र की बेची हो गई है और इसकी सूचना बीमा कम्पनी को दे दी गई हो तो यह बिलकुल सुरक्षित रहता है।

(६) आवश्यकता के समय बैंक इसकी बेची किसी अन्य व्यक्ति के नाम भी कर सकता है।

दोष—(१) प्रस्ताव पत्र ठीक न भरे जाने पर बीमा प्रसंविदा अवैध हो जाता है।

(२) बीमा कराने वाले की आयु का प्रमाण न देने पर बैंक को उसकी मृत्यु के बाद आयु का प्रमाण देने में कठिनाई पड़ सकती है।

(३) ६ मास के अन्दर आत्महत्या करने पर बीमे की रक़म नहीं मिलती।

(४) यदि बीमित किश्त अदा न करे तो बैंक को उसका भुगतान करना पड़ता है।

(५) यदि बीमा पत्र नहीं ले लिया गया है तो वह किसी और के नाम बेचा जा सकता है।

सावधानियां—(१) यह देख लेना चाहिये कि बीमित की आयु प्रमाणित हो चुकी है।

(२) यह भी देख लेना चाहिये कि बीमा कराने वाले को जिसका बीमा कराया है उसके जीवन में आर्थिक हित है।

(३) उसे वैधानिक रेहन अधिक पसन्द करना चाहिये।

(४) उसे यह ध्यान रखना चाहिए कि किश्तें बराबर दी जा रही हैं और उनकी रसीदें मौजूद हैं।

(५) उसे बीमा कम्पनी को रेहन की सूचना दे देनी चाहिये।

(६) बैंकर के लिये एक निश्चित अवधि पर पकने वाला बीमा आजीवन बीमे से अधिक अच्छा है।

(७) बीमा पत्र की सब धाराओं का अच्छी तरह से अध्ययन कर लेना चाहिये।

अचल सम्पत्ति—अचल सम्पत्ति भी जमानत में दी जाती है। इसका रेहननामा वैधानिक होता है। इनसे सम्बन्धित अधिकार पत्रों की खूब जांच करवा लेनी चाहिये और उनका मूल्य अंकवा कर बीमा करवा लेना चाहिये।

गुण—वास्तव में अचल सम्पत्ति में कोई भी गुण ऐसा नहीं है जिसके कारण वह जमानत में स्वीकार की जा सके। परन्तु बहुत से ग्राहक इसके अतिरिक्त और कोई जमानत नहीं दे सकते। इसलिये बैंक को उनसे अचल सम्पत्ति की जमानत ही स्वीकार करनी पड़ती है।

दोष—(१) वैधानिक रेहन बहुत असुविधाजनक और अधिक

(२) हमारे उत्तराधिकारी सम्बन्धी नियम टेढ़े मेढ़े होने से अचल सम्पत्ति के अधिकारी का कठिनता से पता चलता है।

(३) इसका ठीक मूल्य आंकना बहुत कठिन है और यह भी घटता बढ़ता रहता है।

(४) इसके बेचने में बहुत असुविधा होती है।

(५) कुछ मकान मरम्मत इत्यादि न होने के कारण जल्दी खराब हो जाते हैं।

(६) बैंक को मकानों में किरायेदार रखने और मकानों की मरम्मत की फिक्र करनी पड़ती है।

(७) इनके अधिकार पत्रों की वास्तविकता का पता लगाना बहुत कठिन है।

(८) इसके अग्नि से नष्ट होने का डर रहता है।

(९) पट्टे की ज़मीन का किराया न पहुंचने पर पट्टे की समाप्ति का डर रहता है।

सावधानियां—(१) ऋण लेने वाले के अचल सम्पत्ति पर अधिकार का भली भांति पता लगा लेना चाहिये।

(२) अधिकार पत्रों की भली प्रकार जांच करा लेनी चाहिये।

(३) भविष्य में मरम्मत का प्रबन्ध कर देना चाहिये।

(४) पट्टे के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना जरूरी है कि किराये का प्रबन्ध हो गया या नहीं।

(५) सम्पत्ति का अग्नि बीमा करा लेना चाहिये और उसकी किश्त भिजवाते रहना चाहिये।

(६) उसी सम्पत्ति पर एक रेहन के बाद दूसरा रेहन नहीं स्वीकार करना चाहिये।

अभ्यास-प्रश्न

१—बैंक अपनी कार्य-शील पूंजी का विनियोग किस प्रकार करते हैं? बैंक को अपने ग्राहकों को ऋण देते समय क्या सावधानियां रखनी चाहिये?

२—नक़दी कोष से आप क्या समझते हैं? बैंक के लिये इसका महत्त्व समझाते हुए यह बतलाइये कि नक़दी कोष की रक़म किन २ बातों पर निर्भर करती है?

२—बैंक की विनियोग नीति का आधार क्या है? बैंक के लाभकर विनियोग कौन २ से हैं, बतलाइये।

४—बैंक कितने प्रकार के ऋण देते हैं? प्रत्येक का वर्णन कीजिये।

पांचवाँ अध्याय

मुद्रा बाज़ार

मुद्रा बाज़ार वह स्थान है जहां मुद्रा के ग्राहक अर्थात् उधार लेने वाले मुद्रा के विक्रेताओं अर्थात् उधार देने वालों के सम्पर्क में आकर मुद्रा के उपयोग का क्रय विक्रय या लेन देन करते हैं। इस बाज़ार में भी दो पक्ष होते हैं—उधार लेने वाले अर्थात् औद्योगिक संस्थायें, सट्टे बाज़ार के व्यापारी और केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारें और दूसरा पक्ष उधार देने वालों का होता है जिसमें व्यापारिक बैंक, बट्टा गृह, बिल ब्रोकर, महाजन तथा केन्द्रीय बैंक सम्मिलित हैं। इस बाज़ार में व्यापारिक बिलों, साख पत्रों और सरकारी पत्रों आदि में भी लेन देन होता है।

मुद्रा बाज़ार के कार्य—(१) मुद्रा बाज़ार राष्ट्र के अतिरिक्त कोष (Excess Funds) को एक जगह एकत्रित करके राष्ट्र की आर्थिक उन्नति में लगाता है।

(२) यह राष्ट्र के अतिरिक्त कोष को उन व्यक्तियों से जिनको उसकी आवश्यकता नहीं है, लेकर उन क्षेत्रों और व्यक्तियों को जिनको उसकी आवश्यकता है दिलवाने में सहायता देता है और उधार लेने वालों और देने वालों के बीच मध्यस्थ का कार्य करता है।

(३) मुद्रा बाजार के द्वारा तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये नक़द पूंजी प्राप्त होती है।

(४) सुसंगठित मुद्रा बाजार के द्वारा सरकार भी अपनी अल्पकालीन मुद्रा कोष की आवश्यकतायें पूरी कर लेती है। विदेशी सरकारें भी सुसंगठित मुद्रा बाजार में अल्पकाल के लिये ऋण ले सकती हैं।

(५) यह व्यापारियों और उद्योगपतियों को द्रव्य के उपयोग की सहायता प्रदान कर देश में व्यापार तथा उद्योगों को प्रोत्साहन कर देश का उत्पादन तथा सम्पत्ति बढ़ाता है।

(६) मुद्रा बाजार व्याज दर तथा कटौती दर में भी स्थायित्व स्थापित करता है। भारत में बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में बड़े २ शहरों जैसे कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास के अतिरिक्त कहीं भी मुद्रा बाजार सही अर्थ में मौजूद न था। इन बड़े शहरों में भी यूरोपियन बैंकों का एकाधिकार था जो केवल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में ही आर्थिक सहायता देते थे। देशी व्यापार व उद्योग धन्धे सब आर्थिक सहायता के लिये महाजनों और देशी बैंकरों पर ही अधिकतर निर्भर थे। परन्तु अब काफ़ी संख्या में भारतीय सम्मिलित पूंजी वाले बैंक खुल गये हैं जो देशी व्यापार में आर्थिक सहायता पहुंचाते हैं।

आधुनिक बैंकों की स्थापना के प्रारम्भ में मुद्रा बाजार में ऋतु विशेष में मुद्रा की कमी रहती थी परन्तु रिजर्व बैंक की स्थापना के बाद यह कठिनाई दूर हो चली है। अब मुद्रा बाजार का अध्ययन रिजर्व बैंक की स्थापना के बाद से किया जायगा। मुद्रा बाजार की बनावट में सर्वप्रथम रिजर्व बैंक का नाम आता है जो और दूसरे बैंकों का बैंक है। उसके पश्चात्

अनुसूचित बैंक, सहकारी बैंक, इम्पीरियल बैंक तथा विदेशी विनिमय बैंक हैं जो ऋण देने वालों की गिनती में आते हैं। इसके पश्चात् बिना अनुसूचित बैंक, सेण्ट्रल बैंक, साख समितियां, भूमि बन्धक बैंक, देशी बैंकर तथा आर्थिक व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्र आते हैं जो ऋण लेने वाले होते है।

रिज़र्व बैंक आफ इण्डिया (Reserve Bank of India) यह भारत का केन्द्रीय बैंक है जो रिजर्व बैंक आफ इण्डिया एक्ट १९३४ के अनुसार स्थापित किया गया। यह सब बैंकों का सिरताज है। इसका वर्णन आगे एक अलग अध्याय में किया गया है।

इम्पीरियल बैंक (Imperial Bank of India)—यह बैंक १९२१ में स्थापित किया गया था। यह रिजर्व बैंक की स्थापना से पूर्व कुछ केन्द्रीय बैंक के कार्य भी करता था। अब भी यह बैंक बहुत से स्थानों में रिजर्व बैंक के आढ़तिये का काम करता है। यह बैंक भारत का सब से महत्वपूर्ण बैंक है। मुद्रा बाजार में इसका एक विशेष स्थान है। इसकी पूंजी तथा साधन अन्य बैंकों की अपेक्षा बहुत अधिक है। छोटे छोटे बैंक अब भी इसी के पास आर्थिक सहायता के लिये पहुँचते हैं।

अनुसूचित बैंक (Scheduled Banks)—ये वे बैंक हैं जिन के नाम रिजर्व बैंक की सूची (Schedule) में दर्ज हो चुके हैं। इन बैंकों के पास रिजर्व बैंक एक्ट की ४२६ धारा के अनुसार पांच लाख रुपये की चुकता पूंजी और पांच लाख रुपये का रक्षित कोष होना आवश्यक है। इन बैंकों को रिजर्व बैंक को यह भी विश्वास दिलाना पड़ता है कि उनके कार्य जमा कर्ताओं के अहित में नहीं होते। ये बैंक भी भारतीय मुद्रा बाजार के महत्वपूर्ण अंग हैं।

विदेशी विनिमय बैंक (Exchange Banks)—ये वे सम्मिलित पूंजी वाले बैंक हैं जिनके प्रधान कार्यालय विदेशों में हैं। ये अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सहायता पहुँचाते हैं और देशी और विदेशी मुद्रा (Currency) का विनिमय करते हैं।

स्टेट कोआपरेटिव बैंक—ये प्रान्तीय सहकारी हैं और प्रान्त भर के सहकारी आन्दोलन के केन्द्र हैं। जिला बैंक इन से ऋण लेते हैं। ये मुद्रा बाजार तथा सहकारी बैंकों में सम्बन्ध स्थापित करते हैं। इनका रिजर्व बैंक से सीधा सम्बन्ध है।

बिना अनुसूचित बैंक (Non-Scheduled Banks) ये वे भारतीय सम्मिलित पूंजी वाले बैंक हैं, जिनका नाम रिजर्व बैंक की दूसरी सूची में दर्ज नहीं है। इनकी पूंजी ५ लाख से कम होती है। इनका रिजर्व बैंक से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है परन्तु १९४९ के बैंकिंग एक्ट के अनुसार इन से भी सम्बन्ध बढ़ गया है। ये अधिकतर इम्पीरियल बैंक तथा अनुसूचित बैंकों से ऋण लेते हैं।

सेंट्रल बैंक और साख समितियां (Central Bank & Credit Societies)—यह सहकारी समितियां हैं जो अपने फण्ड के लिये प्रान्तीय या राज्य सहकारी बैंकों पर निर्भर रहती हैं। ये समितियां प्रान्तीय सहकारी बैंकों के आदेशानुसार कार्य करती हैं।

भूमि बन्धक बैंक (Land Mortgage Banks)—ये बैंक किसानों को दीर्घ काल के लिये रुपया उधार देती हैं। ये उन्हें पुराने ऋणों को चुकाने में सहायता देती हैं और उनकी भूमि को बन्धक से छुड़ाने में मदद देती हैं। ये बैंक कई

प्रकार के होते हैं।

इण्डस्ट्रियल फाइनेन्स कारपोरेशन—यह भारत में १६४८ में स्थापित हुआ था और यह उद्योग धन्धों को दीर्घकाल के लिये ऋण देता है।

देशी बैंकर (Indigenous Bankers)—देशी बैंकर की गिनती में, महाजन, सर्राफ, चेट्टियर इत्यादि आते हैं। यह प्राचीन काल से ही बैंकिंग कार्य करते आ रहे हैं। ये ग्राम्य साख की बहुत कुछ पूर्ति करते हैं तथा कृषकों को अल्पकालीन और दीर्घकालीन ऋण देते हैं। इन में से कुछ जमा भी प्राप्त करते हैं परन्तु इनकी पूंजी और धनराशि सीमित ही रहती है जिसके कारण इन्हें जब मुद्रा बाजार में मौसमी फण्डों की अधिक आवश्यकता होती है तो व्यापारिक बैंकों से ऋण लेना पड़ता है। ये बैंकिंग के अतिरिक्त अन्य व्यापारिक कार्य भी करते हैं। इसलिये इनका रिजर्व बैंक से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है।

भारतीय मुद्रा बाज़ार के दोष

१—संगठन की कमी—मुद्रा बाजार की भिन्न २ इकाइयों में आपसी सम्बन्ध तथा हेलमेल का काफी अभाव है। प्रत्येक इकाई अपने क्षेत्र में स्वयं निर्भर है और अपनी अलग २ नीति काम में लाती है। भारतीय सम्मिलित पूंजी वाले बैंक इम्पीरियल बैंक को संदेह की दृष्टि से देखते हैं। विनिमय बैंक विदेशी हैं और मुद्रा बाजार में ईर्ष्या की दृष्टि से देखे जाते हैं। ये बैंक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में लगे रहने के अतिरिक्त अन्तर्देशीय व्यापार में भी भारतीय बैंकों के साथ प्रतिस्पर्धा रखते हैं। अनुसूचित बैंकों और सहकारी बैंकों में भी सम्बन्ध

का सिलसिला सुनियमित नहीं है। देशी वैंकर तो केन्द्रीय वैंकिंग नियन्त्रण के दायरे के बिल्कुल वाहर हैं। अतः भरतीय मुद्रा वाज़ार एक ढीली ढाली, असंगठित और कमज़ोर संस्था है। वहां जितन भी संस्थायें हैं एक दूसरे की सहायता न करके आपस में प्रतियोगिता का भाव रखती हैं। अव आशा की जाती है कि रिज़र्व वैंक के नियन्त्रण में मुद्रा वाज़ार का यह दोप दूर हो जायगा और वह शीघ्र ही एक सुसंगठित तथा सुनियमित मुद्रा वाज़ार में परिणत हो जायगा।

२—*मुद्रा वाज़ार में व्याज दरों की विभिन्नता*—भारतीय मुद्रा वाज़ार के विभिन्न अंगों में घनिष्ट सम्वन्ध न होने के कारण वैंक दर, वाज़ार व्याज दर तथा इम्पीरियल वैंक की हुण्डी दर तथा बट्टे दर में वहुत अन्तर रहता है। भिन्न २ स्थानों पर भिन्न २ दरें रहती हैं। इसलिये रिजर्व वैंक की दर भी प्रभावशाली नहीं रह सकती। प्रतियोगिता के कारण भी यहां दरें भिन्न २ रहती हैं। यहां दरों में काफी उतार चढ़ाव भी रहता है। गर्मी और वर्षा के मौसम में वाज़ार मन्द पड़ जाता है और सूद की दर गिर जाती है। नवम्वर से जून तक व्यापार में तेजी आ जाती है और पूंजी की मांग होती है अथवा व्याज दर काफी ऊंची हो जाती है जिससे व्यापारियों को कठिनाई होती है। रिजर्व वैंक इन कठिनाइयों को दूर करने की कोशिश करता है परन्तु विधान के कारण उचित मात्रा में सहायता नहीं पहुँचा सकता।

३—*असंगठित विल वाज़ार*—भारतीय मुद्रा वाज़ार का एक यह भी दोप है कि उस में विल का अभाव है और वहां विलों की संख्या वहुत कम है। मुद्रा वाज़ार के लिए एक सुसंगठित विल वाज़ार वहुत ही आवश्यक है। भारत में विल

लोक प्रिय नहीं है। इसके निम्न कारण हैं:—

१—भारत में लोग सरकारी प्रतिभूतियों में रुपया लगाना अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि वे आवश्यकता के समय आसानी से वेची जा सकती हैं और उन से आय भी अच्छी हो जाती हैं परन्तु अब इन प्रतिभूतियों की अपेक्षा विलों से अधिक आय होने लगी है और आशा है कि विलों का प्रयोग भविष्य में बढ़ेगा।

२—ऋण लेने के अन्य साधन जैसे नकदी साख और अधिनिकास (Cash Credit & Overdrafts) बिलों की अपेक्षा अधिक सस्ते हैं।

३—व्यापारिक विल भिन्न २ भाषाओं तथा लिपियों में लिखे जाते हैं, उनकी अवधि व हस्तांतरण की विधि भी भिन्न २ होती है और उनकी स्वीकृति और अदायगी के के नियम भी भिन्न २ स्थानों में भिन्न हैं i इसलिये वे जनता में प्रिय नहीं हैं।

४—भारत में विदेशों की तरह ऐसी संस्थाओं का अभाव है जिनके द्वारा विलों पर हस्ताक्षर करने वाले की साख तथा स्थिति के बारे में पूरा ज्ञान हो सके।

५—बहुत से विलों और हुण्डी के आकार से यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि वे आर्थिक बिल (Accommodation Bills) हैं या सच्चे व्यापारिक विल। इसके अतिरिक्त इनके साथ अन्य माल के अधिकार पत्र जैसे विक्रीनामा, इनवायस आदि नहीं लगाये जाते हैं जिसके कारण बैंक इन विलों में अधिक लेन देन नहीं करते।

६—भारतवर्ष में माल गृहों (Warehouses) की कमी

होने के कारण भी माल के अधिकार पत्रों का सृजन नहीं किया जा सकता और रिजर्व बैंक विना माल के अधिकार पत्रों के विलों को नहीं भुनाता।

७—कुछ वर्षों से भारत सरकार ने कोष विलों (Treasury Bills) का अधिक प्रयोग किया है और बैंक तथा रिजर्व बैंक विलों की अपेक्षा इन्हीं में अधिक लेन देन करते हैं।

८—विदेशी विलें प्रायः स्टर्लिंग में लिखी जाती हैं यदि वे भारतीय मुद्रा में लिखी जातीं तो विल के वाजार के विकास की अधिक सम्भावना हो जाती है।

९—भारत के विलों की पुनर्कटौती (Rediscounting) के लिए भी अधिक सुविधायें प्राप्त नहीं हैं और पुनर्कटौती आर्थिक निर्बलता की द्योतक समझी जाती है। इसलिये भी यहाँ विल वाज़ार का विकास न हो सका।

१०—रिजर्व बैंक ने विल बाजार के विकास में कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया परन्तु फिर भी भारत में विल वाजार को विकसित करना परमावश्यक है। विल वाजार का विकास निम्नलिखित उपायों द्वारा किया जा सकता है:—

(१) विलों का निश्चित रूप निर्धारित करके उनकी अवधि स्वीकृत, भुगतान आदि के नियमों में समानता स्थापित कर देनी चाहिये।

(२) विलों की स्टाम्प ड्यूटी में भी काफ़ी कटौती कर देनी चाहिए। यद्यपि रिजर्व बैंक ने १९४० में स्टाम्प ड्यूटी दी परन्तु फिर भी वह अधिक है।

(३) भुनाने की दर भी घटा देनी चाहिये जिससे बिल खरीदने वालों को प्रोत्साहन मिले। रिजर्व बैंक को पुनर्कटौती की सुविधाओं में अधिक वृद्धि कर देनी चाहिए।

(४) सुरक्षित माल गृहों की स्थापना शीघ्र होनी चाहिए और इसके लिये भिन्न भिन्न प्रान्तों में कानून बना देने चाहिये।

(५) बिलों के फार्म अंग्रेजी और हिन्दी दोनों में होने चाहिये।

(६) भारत में भी बिलों की स्वीकृति के लिये स्वीकृति गृहों की स्थापना होनी चाहिये।

(७) बिलों के उपभोग को नकदी साख और अधि निकास की अपेक्षा कम खर्चीला बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

(८) इसके अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रों में बिलों का प्रयोग बढ़ाना चाहिये जैसे मौसमी कृषि कार्यों अथवा अनाजों को बाजार तक पहुंचाने में बिल काफी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

(५) मुद्रा बाजार में धन की कमी— भारतीय द्रव्य बाजार में धन की कमी रहती है और वह उद्योग धन्धों तथा व्यापार की पूंजी तथा साख की आवश्यकताओं की पूरी तौर से पूर्ति नहीं कर सकता। इसका कारण भारतीय जनता की निर्धनता, उसकी अज्ञानता तथा अशिक्षा है। भारतीय अधिकतर धन को गाड़ कर रखना या उसे गहने व जमीन जायदाद में लगाना अधिक पसन्द करते हैं। इसके अतिरिक्त यहां कोई उचित बैंकिंग तथा विनियोग की सुविधायें भी प्राप्त नहीं हैं।

(६) *मुद्रा बाज़ार में लोच तथा स्थायित्व का अभाव*—भारतीय मुद्रा बाज़ार में रिजर्व बैंक के स्थापित होने से पूर्व लोच तथा स्थायित्व का अभाव था क्योंकि उस समय साख और मुद्रा का नियंत्रण एक ही संस्था के हाथ में न था। साख नियंत्रण इंपीरियल बैंक और मुद्रा नियंत्रण सरकार के हाथ में था। परन्तु रिजर्व बैंक ने इस अभाव को कुछ सीमा तक दूर कर दिया है परन्तु अब भी भारतीय बैंकों के साधन उनके कोष परिमित होने और चैकों का अधिक प्रचार न होने के कारण सीमित हैं।

(७) *विशिष्ट साख संस्थाओं का न होना*—भारतीय मुद्रा बाज़ार में विशिष्ट साख संस्थाओं का अभाव है। यहां पर काफी भूमि बन्धक बैंक, औद्योगिक बैंक इत्यादि नहीं हैं जो अपने २ क्षेत्रों की आवश्यकता पूर्ति कर सकें।

(८) *ब्रांच बैंकिंग का अभाव*—यहां पर ब्रांच बैंकिंग का अभाव है। गत महायुद्ध तथा युद्धोत्तर काल में भारतीय बैंकों ने इस ओर क़दम बढ़ाया और भिन्न २ स्थानों पर शाखायें खोलना आरम्भ किया परन्तु उनकी संख्या काफी नहीं है।

(९) *साहूकार तथा देशी बैंकरों की प्रधानता*—आज भी महाजनों और देशी बैंकरों का गावों में अधिक प्रभाव है और गाँव वाले उन्हीं से ऋण लेना अधिक पसंद करते हैं। अब कुछ उनका प्रभाव कम होता जा रहा है।

(१०) *समाशोधन गृहों की कमी*—यहां के मुद्रा बाज़ार की एक यह भी कमी है कि यहां समाशोधन गृहों (Clearing Houses) की कमी है और वे केवल बड़े बड़े शहरों में

ही हैं।

परन्तु यह दोष अब १६४६ के बैंकिंग विधान के पास हो जाने के पश्चात् और रिजर्व बैंक के राष्ट्रीयकरण हो जाने के पश्चात धीरे २ दूर हो रहे हैं। रिजर्व बैंक का अब समस्त बैंकों पर नियंत्रण है। सहकारी बैंक भी अब उन्नति कर रहे हैं और उनकी उन्नति के साथ २ देशी बैंकरों और महाजनों का भी एकाधिकार ग्रामों में दूर हो जावेगा औद्योगिक क्षेत्र में औद्योगिक अर्थ प्रमण्डल बहुत महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। बैंकिंग की उच्च शिक्षा का प्रबन्ध किया जा रहा है। परन्तु फिर भी उपरोक्त दोषों को दूर करना आवश्यक है। इसके लिये एक अखिल भारतीय संघ की स्थापना होनी चाहिए जिसके सब बैंक सदस्य हों और जो बैंकिंग साहित्य का प्रचार करके बैंकों में एकता स्थापित करे जिससे उपरोक्त दोष दूर होकर मुद्रा बजार सुव्यवस्थित और सुदृढ़ बने।

अभ्यास-प्रश्न

१—भारतीय मुद्रा बाजार के क्या २ दोष हैं? इनको किस प्रकार दूर किया जा सकता है?

२—भारतीय मुद्रा बाजार के विभिन्न अंगों का संक्षेप में वर्णन कीजिए तथा समझाइये कि इनमें अबतक पारस्परिक सहयोग की भावना क्यों नहीं उत्पन्न हो पाई?

३—क्या भारत में एक सुसंगठित मुद्रा बाजार विद्यमान है?

यदि नहीं, तो बतलाइये कि अबतक भारत में एक सुसंगठित मुद्रा बाजार क्यों नहीं बन पाया।

४—किसी भी देश में एक सुदृढ़ अर्थ-व्यवस्था की दृष्टि से एक सुसंगठित मुद्रा बाजार का होना क्यों आवश्यक है बतलाइये।

५—भारत में अब तक एक अच्छा बिल बाजार क्यों नहीं स्थापित हो सका? यहां एक अच्छा बिल बाजार स्थापित करने के लिये अबतक क्या क्या प्रयत्न किये गये।

छठवां अध्याय

केन्द्रीय बैंकिंग

केन्द्रीय बैंकिंग का विशिष्ट रूप में विकास बीसवीं शताब्दी से ही प्रारम्भ होता है। इसके पूर्व केन्द्रीय बैंक के विषय में मनुष्यों के विचार स्पष्ट नहीं थे। प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व केन्द्रीय बैंकिंग नीति का उद्देश्य बहुत ही संकुचित था और वह देश के अन्दर स्वर्ण मूल्य में स्थायित्व प्राप्त करने के लिये करेंसी के नियम तक ही सीमित था। कुछ बैंकों को नोट प्रकाशन का अधिकार था। वे सरकार के बैंकर का भी कार्य करते थे, परन्तु उनको केन्द्रीय बैंक के कुछ कार्यों के करने की अनुमति थी और कुछ की नहीं। परन्तु युद्धांतर काल में, विशेषकर गत आर्थिक मन्दी के बाद इनका महत्व बढ़ गया और इनके कार्य भी बढ़ने लगे तथा इनको एक विशेष अर्थ में केन्द्रीय बैंक कहा जाने लगा।

आधुनिक समय के स्थापित केन्द्रीय बैंकों में स्वीडन का-रिक्स बैंक (Riks bank) सर्व प्रथम आता है। समय की दृष्टि से बैंक आफ़ इंग्लैंड सबसे पुरानो बैंक है जो प्रारम्भ से ही सरकारी बैंक तथा बैंकों के बैंक के कार्य करता रहा है। यद्यपि १९वीं शताब्दी में सभी प्रगतिशील पाश्चात्य देशों में केन्द्रीयबैंक स्थापित हो चुके थे फिर भी १९२० के ब्रूसेल्स के अन्तर्राष्ट्रीय राजस्व

सम्मेलन (Internationl Financial Conference) के बाद उन देशों ने भी केन्द्रीय बैंक स्थापित कर लिये जहां वह अभी तक नहीं खुले थे और अब लगभग संसार के सभी देशों में केन्द्रीय बैंक हैं।

"केन्द्रीय बैंक एक विशिष्ट संस्था है, जिसके कार्य अन्य बैंकों से भिन्न होते हैं। यह बैंक दूसरे बैंकों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकती बल्कि उनके मित्र और पथप्रदर्शक का काम करती है। यह बैंक अन्य बैंकों के आर्थिक संकट के समय सहायता करती है। यह बैंक अपने कार्य देश के हित के लिये करती है"।

केन्द्रीय बैंक के कार्य—केन्द्रीय बैंकिंग के विशेषज्ञ डाक्टर एम० एच० डी काक के अनुसार केन्द्रीय बैंक के निम्न कार्य हैं:—

१—देश की व्यापारिक तथा जनता की आवश्यकता के अनुसार देश में मुद्रा निकालना और उसकी मात्रा पर नियन्त्रण रखना।

२—देश की सरकार के लिये साधारण बैंकिंग काम तथा अन्य आढ़त के काम करना।

३—अन्य बैंकों के कोष को सुरक्षित रखना।

४—राष्ट्र के धात्विक कोष को सुरक्षित रखना।

५—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार द्वारा प्राप्त किए विदेशी करेंसी अर्थात् विदेशी विनिमय कोष का प्रबन्ध।

६-व्यापारिक तथा अन्य प्रकार के बैंकों, बिल के दलालों तथा अन्य व्यवसायियों के विनिमय बिलों, सरकारी बिलों और अन्य साख पत्रों को जमानत पर ऋण देना।

७—जब कहीं से ऋण न मिल सके, तो अन्य बैंकों की आर्थिक सहायता के लिये "अन्तिम ऋणदाता" (Lender of of last resort) का काम करना।

८—बैंकों के पारस्परिक लेन-देन की चुकती कराने के लिये 'समशोधन गृह' (Clearing Houses) का काम करना।

९—व्यापार के आर्थिक हितों को दृष्टि में रखते हुये और विशेषतः राज्य की मुद्रा प्रणाली स्थिर रखने के उद्देश्य से साख नियन्त्रण करना।

कागज़ी मुद्रा निकालना:—कागजी मुद्रा निकालना केन्द्रीय बैंक का एक महत्वपूर्ण काम है और प्रत्येक केन्द्रीय बैंक को यह काम सौंपा जाता है। यदि केन्द्रीय बैंक को नोटों के प्रकाशन तथा चलन का एकाधिकार न सौंपा जाय, तो उसके लिये साख का नियन्त्रण करना असम्भव हो जाय। दूसरे, एक ही बैंक द्वारा प्रकाशन किए हुए नोटों में सादृश्यता आ जाती है। तीसरे, एकाधिकार के कारण बैंकों को एक ऐसा साधन मिल जाता है, जिसके द्वारा वे संकट काल में सुगमता से देश की सहायता कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, द्वितीय विश्व युद्ध के समय में हमारे देश के केन्द्रीय बैंक ने अधिक कागजी मुद्रा छाप कर सरकार की सहायता की। एकाधिकार से चौथा लाभ यह है कि सरकार किसी भी बैंक पर सुगमता से नियन्त्रण रख सकती है। इन्हीं कारणों से केन्द्रीय बैंक को नोट प्रकाशन का एकाधिकार देना आवश्यक समझा गया है और सभी देशों में यह एकाधिकार केन्द्रीय बैंक को प्राप्त है।

देश की सरकार के लिये साधारण बैंकिंग कार्य तथा अन्य आढ़त के कार्य करना:—केन्द्रीय बैंक सरकारी बैंकर का भी काम करता है। यह सरकार के लिये उन सभी कार्यों को

करता है, जो एक व्यापारिक बैंक अपने ग्राहकों के लिए करता है। सरकार को कई साधनों से आय होती है तथा सरकार को कई रकमें चुकानी भी पड़ती हैं। यदि इनका ठीक से प्रबन्ध न किया जाय तो मुद्रा बाज़ार में बहुत उथल पुथल हो जावेगी। अतः मुद्रा बाज़ार में स्थायित्व स्थापित रखने के लिये सरकार की अर्थनीतिक क्रियाओं का नियमन केन्द्रीय बैंक करता है। ये सरकार की आय-व्यय की प्राप्ति तथा चुकती का प्रबन्ध करता है। सरकार का कोष भी इसी बैंक के पास जमा रहता है। आवश्यकता पड़ने पर केन्द्रीय बैंक सरकार की आर्थिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति करता है। संकट काल में बैंक सरकार को ऋण देता है। यह बैंक सरकार के लिये एक स्थान से दूसरे स्थान पर रुपया भी भेजता है। इसके अतिरिक्त यह सरकार को ऋण उठाने में सहायता देता है और अन्य आर्थिक विषयों पर सलाह देता है। यह सरकार के जनकर्ज (Public Debt) का भी प्रबन्ध करता है और सरकार को सरकारी हुण्डियों पर तथा अन्य प्रकार से अल्पकालीन ऋण भी देता है। यह सरकार के लिये विदेशों में भी ऋण उठाने का भार लेता है। केन्द्रीय बैंक सरकार के लिये ऋणदाता, ऋण प्रबन्धक तथा अर्थनीतिक परामर्शदाता का काम करता है।

युद्धकाल में केन्द्रीय बैंक सरकार को युद्ध के लिये ऋण का प्रबन्ध करता है। विदेशी ऋण और उसके व्याज को चुकाने के लिये बैंक को विदेशी विनिमय का भी प्रबन्ध करना पड़ता है।

II. अन्य बैंकों के कोष रखना:—केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों का कुछ नक़दकोष अपने पास जमा रखता है। कुछ देशों में तो व्यापारिक

वैंकों को यह कोष विधान के अनुसार जमा कराना पड़ता है और कुछ देशों में इसका चलन हो गया है। इस सम्बन्ध में सबसे पहले वैंक आफ इंग्लैंड ने क़दम उठाया और इसके बाद सब देशों ने उसका अनुकरण किया। भारत में भी प्रत्येक व्यापारिक वैंक को चालू खाते में जमा राशि (Demand Liability) का ५ प्रतिशत तथा मुद्दती जमा (Time Liability) का २ प्रतिशत रिजर्व वैंक के पास कोष जमा रखना पड़ता है। यह प्रतिशत देश काल के अनुसार बदलता भी रहता है। इस कोष से व्यापारिक और केन्द्रीय वैंक दोनों को ही लाभ होता है। व्यापारिक वैंकों के लिये यह कोष तरल सम्पत्ति (Liquid Assets) के समान है और संकट के समय इस कोष का उपयोग कर सकते हैं। इससे व्यापारिक वैंकों की साख भी बढ़ जाती है। केन्द्रीय वैंक इसके द्वारा व्यापारिक बैंकों द्वारा निकाली गई साख पर नियन्त्रण रख सकता है। व्यापारिक वैंक अपनी नक़दी के आधार पर ही साख उत्पन्न कर सकते हैं। कुछ नक़दी केन्द्रीय वैंक में जमा कर देने से उनकी नक़दी कम हो सकती है और उनकी साख उत्पन्न करने की शक्ति पर भी प्रभाव पड़ता है। इस कोष के आधार पर केन्द्रीय वैंक को व्यापारिक वैंको की साख उत्पन्न करने की शक्ति का ज्ञान हो जाता है। यदि केन्द्रीय वैंक व्यापारिक वैंकों की साख उत्पन्न करने की शक्ति को सीमित करना चाहता है, तो वह इस जमा किये जाने वाले कोष का प्रतिशत बढ़ा कर, कर सकता है। यदि केन्द्रीय वैंक व्यापारिक वैंकों की साख उत्पन्न करने की शक्ति बढ़ाना चाहता है, तो वह इस प्रतिशत को घटा देता है।

2 राष्ट्र के धात्विक कोष को सुरक्षित रखना और विनिमय

कोष का प्रबन्ध:—प्रत्येक केन्द्रीय बैंक को विधान के अनुसार अपने पास धात्विक कोष रखना पड़ता है। परन्तु इंग्लैंड अथवा अन्य कुछ देशों में आज भी इस सम्बन्ध में कोई विधान नहीं है। इस कोष की मात्रा को बैंक की ही इच्छा पर छोड़ दिया जाता है, क्योंकि यह मात्रा सदैव के लिये एक बार ही निश्चित नहीं की जा सकती। यह मात्रा कितनी हो, यह बात भिन्न भिन्न देशों के व्यापार और उनकी आवश्यकताओं पर निर्भर रहता है। पहले तो यह कोष नोटों के लिये रखना पड़ता था परन्तु अब यह जमा के लिये रखा जाता है। विदेशी मुद्राओं की विनिमय दर को स्थायी करने के लिये केन्द्रीय बैंक को अपने पास अन्य देशों की मुद्रायें भी रखनी पड़ती है, जिससे विदेशी व्यापारियों को समय समय पर भुगतान किया जा सके।

बैंकों के बैंक का कार्य करना अथवा अन्तिम अवस्था में ऋणदाता का कार्य:—केन्द्रीय बैंक, व्यापारिक, औद्योगिक, विनिमय, कृषि तथा अन्य बैंकों का भी बैंक माना गया है। यह अन्य सभी बैंकों का जमा खाता रखता है और उनसे प्रतियोगिता नहीं करता। यह उनकी संकट के समय सहायता करता है। यह बैंक अन्य बैंकों और मुद्रा सम्बन्धी लाए हुए विनिमय बिलों, सरकारी बिलों तथा दूसरे साख पत्रों पर ऋण देता है अथवा उसका प्रबन्ध करवाता है। कहीं से भी ऋण प्राप्त न होने पर केन्द्रीय बैंक अन्तिम ऋणदाता (Lender of the last resort) की हैसियत से उसे स्वयं देने का भी दायित्व स्वीकार करता है। परन्तु यह सुविधा तभी दी जाती है जब ऋण प्राप्त करने के अन्य साधन समाप्त हो जाते हैं। केन्द्रीय बैंक अन्तिम ऋणदाता का काम केवल बिलों को पुनः भुना कर ही

करता (Through Rediscounting facilities) है। केन्द्रीय बैंक केवल बहुत अच्छे बिलों को पुनः भुनाता है। वे बिल उच्चकोटि के अल्पकालीन, वास्तविक बिल होने चाहिए और उन पर दो बड़ी आर्थिक संस्थाओं की गारन्टी के हस्ताक्षर होने चाहिये। बिल भुनाने की सुविधा से साख व्यवस्था में तरलता व लोच आ जाती है। इसके द्वारा बैंक की नक़दी बढ़ जाती है और साधारणतः बैंकों को अधिक नक़दी नहीं रखनी पड़ती परन्तु बिल भुनाने की शक्ति का बुद्धिमानी से प्रयोग करना चाहिये।

सबसे पहले इस काम को बैंक आफ़ इंग्लैंड ने अपनाया और जब इस बैंक ने सन् १८७३ में अंतिम ऋणदाता का स्थान ग्रहण कर लिया तब अन्य देशों के केन्द्रीय बैंकों ने भी इसका अनुकरण किया।

बिल को पुनः भुनाने के काम को करते समय केन्द्रीय बैंक देश में मिती काटे की दर को भी निर्धारित कर देता है। इसके भुनाने की दर का प्रभाव साख पर बहुत गहरा होता है। यदि केन्द्रीय बैंक दर बढ़ा देता है, तो बाज़ार की सूद की दर (Interest Rate) भी बढ़ जाती है और यदि केन्द्रीय बैंक दर घटा देता है, तो बाज़ार दर भी कम हो जाती है। सूद की दर पर ही साख की मात्रा निर्भर रहती है। ज्यादा दर होने पर कम साख ली जायगी और कम दर होने पर अधिक साख ली जायगी।

बैंकों के पारस्परिक लेन-देन की चुकती कराने के लिये समाशोधन गृह का कार्य—यह कार्य भी सर्वप्रथम बैंक आफ़ इंग्लैंड ने १८५४ में प्रारम्भ किया और उसके पश्चात् अन्य

बैंक भी इस कार्य को करने लगे। कुछ देशों में व्यापारिक बैंकों ने आपसी लेन देन को चुकाने के लिये एक अलग समाशोधन गृह स्थापित कर लिया है। ऐसे देशों में केन्द्रीय बैंक का कार्य केवल नित्यप्रति के बैंकों के आपसी लेन देनों के अन्तर को तय करना है। परन्तु जिन देशों में व्यापारिक बैंकों के अपने समाशोधन गृह नहीं हैं, वहां इसका प्रबन्ध केन्द्रीय बैंक को करना पड़ता है। प्रत्येक सदस्य बैंक को केन्द्रीय बैंक के यहां अपना हिसाब खोलना पड़ता है और आपसी लेन देन के अन्तर की चुकती केन्द्रीय बैंक के पास उनके खातों में जमा तथा नामे लिखकर सरलता से कर दी जाती है। इससे भिन्न भिन्न बैंकों के लेन देन का अन्तर केवल खातों में हेर फेर करके ही चुकाया जा सकता है और ऐसा करने से द्रव्य की आवश्यकता नहीं होती।

व्यापार के आर्थिक हितों को दृष्टि में रखते हुए और विशेषतः राज्य की मुद्रा प्रणाली स्थिर रखने के उद्देश्य से साख नियंत्रण करना—व्यापार की आवश्यकता के अनुसार साख का नियंत्रण करना भी केन्द्रीय बैंक का एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है। वास्तव में साख के सृजन एवं वितरण का महत्व आजकल काफ़ी बढ़ गया है तथा उत्पादन, आय व्यय तथा माल के वितरण पर इसका काफ़ी प्रभाव पड़ता है। इसलिये इसका नियन्त्रण करना आवश्यक है। यह कार्य केन्द्रीय बैंक को ही सौंपना चाहिए क्योंकि वह करेंसी प्रकाशन का एकमात्र अधिकारी होता है, वह मुद्रा बाज़ार और अन्य मुद्रा सम्बन्धी संस्थाओं के सम्पर्क में आता है तथा उसे व्यापार की साख की आवश्यकता का पूरा पूरा ज्ञान होता है।

देश में *आर्थिक स्थायित्व* (Economic stability) स्थापित करना ही साख नियंत्रण का मुख्य उद्देश्य होना चाहिये। इसके लिये देश के अन्दर मुद्रा तथा साख के प्रसार (Inflation) व संकुचन (Deflaation) को रोकना, मूल्यों में अधिक घट बढ़ को रोकना, देश को व्यापारिक चक्र (Trade Cycle) के प्रभाव से बचाना तथा देश से बेकारी को दूर करना ही केन्द्रीय बैंक का उद्देश्य होना चाहिये।

केन्द्रीय बैंक साख नियंत्रण कई प्रकार से करती हैं, जैसे (१) बैंक की दर घटा बढ़ा कर, (२) खुले बाजार की क्रिया की नीति द्वारा (Open market operations), (३) नक़दी के कोष के अनुपात में परिवर्तन करके, (४) साख पत्रों के अंश को घटा बढ़ा कर, (५) साख का राशनिंग कर, (६) नैतिक प्रभाव डालकर, (७) सीधी कार्यवाही कर और (८) प्रचार नीति द्वारा। इनका विस्तार पूर्वक वर्णन नीचे किया गया है।

बैंक की दर घटाना बढ़ाना—यह साख नियंत्रण का सबसे पुराना अस्त्र है। यह दर वह दर है जिस पर केन्द्रीय बैंक उच्चकोटि के बिलों को फिर से भुनाने को तैयार हो जाते हैं। इसी दर पर केन्द्रीय बैंक सदस्य बैंकों को उच्चकोटि की जमानत पर ऋण देती है। प्रति सप्ताह यह दर बैंक-द्वारा घोषित कर दी जाती है। इस दर का साख निर्माण पर काफ़ी प्रभाव पड़ता है क्योंकि व्यापारिक बैंक भी अपनी सूद की दर को इस दर के अनुसार बदलते रहते हैं। केन्द्रीय बैंक की दर बदलने का प्रभाव सारे मुद्रा बाज़ार की दर पर पड़ता है। यदि यह दर बढ़ जाती है तो साख का निर्माण कम हो जाता है। इसके घटने पर साख का निर्माण बढ़ जाता है। साख नियंत्रण के इस उपाय का उपयोग सर्व प्रथम बैंक आफ़ इंग्लैंड

ने १८३९ में किया और सफलता प्राप्त की। इस के पश्चात् बैंक आफ इंग्लैंड ने इसका उपयोग १८४४, १८७३ और १८९० में सफलता पूर्वक किया। फ्रांस, जर्मनी, अमरीका तथा अन्य देशों में भी समय समय पर इस नीति का अवलम्बन किया गया।

इसकी सफलता कुछ मानी हुई बातों पर निर्भर रहती है। (१) यदि केन्द्रीय बैंक दर को घटावे बढ़ावे, तो उसी अनुपात में बाज़ार की दर भी घटनी बढ़नी चाहिये, (२) यदि केन्द्रीय बैंक जानबूझ कर आर्थिक परिस्थितियों को दृष्टि में रखकर बैंक दर घटाये या बढ़ाये तो व्यापारिक बैंकों को भी उसका अनुकरण करना चाहिए, (३) व्यापारिक बैंक केन्द्रीय बैंक की आज्ञा तभी मान सकते हैं जब वे पूर्ण रूप से केन्द्रीय बैंक पर आश्रित हों, (४) पुनः बिल भुनाने तथा अन्तिम ऋण-दाता का सम्बन्ध बिल के भुनाने के बाज़ार (Discount market) के संगठन पर निर्भर करता है, (५) बिल बाज़ार तभी संगठित हो सकता है जब देशी व विदेशी व्यापार में बिलों की प्रधानता हो और बिलों को स्वीकृत करने और भुनाने के लिये स्वीकृति गृह (Acceptance Houses) और भुनाने वाले गृह (Discounting Houses) उपस्थित हों। इन परिस्थितियों के न होने पर साख नियन्त्रण का यह अस्त्र बेकार हो जावेगा। यदि ये परिस्थितियां मौजूद भी हों तो भी कुछ बाधाओं के कारण बैंक दर द्वारा साख नियन्त्रण असफल हो जाता है। आर्थिक तेज़ी के समय व्यवसायी जब तक रुपया लगाते चले जांयगे, तब तक उन्हें लाभ का स्तर ऊंचा दीख पड़ेगा और ऊंची बैंक दर बेकार हो जायगी। इसी प्रकार आर्थिक मंदी के समय व्यापारी वर्ग तब तक विनियोग के लिये तैयार न होंगे जब तक उन्हें मुनाफे का स्तर नीचा देख

पड़ेगा चाहे सूद की दर कितनी ही कम क्यों न हो। साधारण परिस्थितियों में भी बैंक दर का असर धीरे धीरे पड़ता है, क्योंकि उचित परिस्थितियों का अनुमान ही नहीं लगाया जा सकता। बैंक दर बदलने का सही उद्देश्य समझने में ही कठिनाई होती है। मुद्रा बाजार की दशा में भी परिवर्तन हो जाने से बैंक दर का महत्व जाता रहता है। देशी व्यापार में बिलों के बदले अधिनिकास की सुविधाओं (Overdraft facilities) का अधिक व्यवहार होने लगा है। विदेशी टेलीग्राफिक ट्रांसफर का भी व्यवहार अधिक हो गया है और मुद्रा बाजार में तरल निधियों की अधिकता भी बैंक दर की असफलता का कारण बन गई है। अल्पकालीन ऋणों में ट्रेषरी बिलों का महत्व बढ़ गया है और लोग बैंक बिलों की अपेक्षा ट्रेजरी बिलों में रुपया लगाना अधिक पसन्द करते हैं। बैंक की दर की सफलता के लिये आर्थिक व्यवस्था एवं आर्थिक पद्धति में भी काफी लचीलापन होना आवश्यक है, अर्थात बैंक दर के परिवर्तन के साथ साथ उत्पादन, वेतन, लागत तथा व्यापार में भी परिवर्तन होना चाहिये, जो वर्तमान काल में आर्थिक योजनाओं तथा अन्य प्रकार के आर्थिक नियंत्रणों के कारण असम्भव है। अतः बैंक दर का महत्व वर्तमान काल में बिल्कुल समाप्त सा हो चला है।

खुले बाज़ार की क्रिया (Open market operations)– युद्धान्तर काल में बैंक दर नीति के साख नियंत्रण में अधिक सफल न होने के कारण 'खुले बाजार की क्रिया' की नीति को इस कार्य के लिये अपनाना पड़ा। इसका अर्थ केन्द्रीय बैंक द्वारा बाजार में किसी भी प्रकार के पत्रों, जैसे सरकारी प्रतिभूतियों, पब्लिक प्रतिभूतियों, बैंकों के स्वीकृत पत्रों तथा व्यापारिक

बिलों का क्रय विक्रय करना है। परन्तु व्यवहारिक कार्यों में 'खुले बाज़ार की क्रिया' से केवल सरकारी प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय ही समझा जाता है, क्योंकि बैंक केवल सरकारी साख पत्रों को ही लेते और बेचते हैं। वे जनता के दूसरे साख पत्रों को नहीं छूते। खुले बाज़ार की क्रिया से व्यापारिक बैंकों के नक़द कोष में घटौती अथवा बढ़ोतरी होती है और इससे बाज़ार की ब्याज दर और आर्थिक दशा में परिवर्तन होता है। बैंकों के नक़द कोष में परिवर्तन होने से साख पर भी प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि नक़द कोष ही साख का आधार है। जब केन्द्रीय बैंक साख निर्माण कम करना चाहता है, तो वह प्रतिभूतियों को बेचेगा जो व्यापारिक बैंकों तथा उनके ग्राहकों द्वारा खरीदी जायँगी। इससे व्यापारिक बैंकों का जो केन्द्रीय बैंक के पास नक़दी जमा है कम हो जायगी और व्यापारिक बैंकों की साख उत्पन्न करने की शक्ति भी कम हो जायगी। जब केन्द्रीय बैंक देश में अधिक साख उत्पन्न करना चाहता है, तो वह सिक्योरिटीज़ खरीदना आरम्भ कर देता है, जिससे व्यापारिक बैंकों की नक़दी बढ़ जाती है और उसके साथ साथ उनकी साख उत्पन्न करने की शक्ति भी। परन्तु यह नीति केन्द्रीय बैंक तभी काम में लाते हैं जब उन्हें अपनी बैंक दर प्रभावपूर्ण करनी होती है अथवा द्रव्य के मौसमी हेर-फेर के कारण उत्पन्न गड़बड़ को दूर करना होता है या सूद की दर कम या नीची करनी होती है। 'खुले बाज़ार की क्रिया' की सफलता निम्न बातों पर निर्भर रहती है:—(१) केन्द्रीय बैंक जिस अनुपात से साख पत्रों की खरीद-बिक्री करे और 'खुले बाज़ार की क्रिया को काम में लावे, उसी अनुपात से व्यापारिक बैंकों की नक़दी में कमी अथवा ज्यादती होनी चाहिये।

२—व्यापारिक बैंकों को भी नकद कोषों में कमी या अधिकता के अनुसार अपने ऋण तथा विनियोगों को घटाना बढ़ाना चाहिये। ३—व्यापारिक बैंकों के साख आधार में घटौती या बढ़ौती तथा ब्याज दर की घटौती या बढ़ौती के अनुसार मुद्रा बाजार में भी बैंक साख की मांग में कमी या ज्यादा होनी चाहिये और ४—बैंकों की जमा की गति (Deposit Velocity) भी एक सी होनी चाहिए।

उपरोक्त परिस्थितियां सब देशों में एक समान नहीं पाई जातीं। कभी कभी तो देश की बैंकिंग प्रणाली बहुत ही उन्नत अवस्था में होने पर भी ये बातें सही नहीं उतरतीं। कभी कभी व्यापारिक बैंक के कोषों में केन्द्रीय बैंक के प्रतिभूतियाँ क्रय विक्रय करने से उसी अनुपात में कम ज्यादा नहीं होती। जब विदेशों से स्वर्ण का आगमन हो या साख पत्र बैंकों में न जमा हुये धन से खरीदी जांय, तो बैंकों के कोप पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। कभी कभी राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के कारण भी बैंक अपने बढ़े हुये या घटे हुये कोष का साख नियन्त्रण में पूरा पूरा उपयोग नहीं कर पाते। इसके अतिरिक्त नकदी कोषों का पूर्ण उपयोग केवल बैंकों के ऊपर निर्भर न रह कर ऋण चाहने वालों पर भी निर्भर रहता है। मन्दी के दिनों में व्यापारी कभी भी ऋण लेना नहीं चाहते, चाहे सूद की दर कितनी ही कम हो और तेजी के समय वे ऋण लेते ही हैं, चाहे सूद की दर कितनी ऊंची क्यों न हो। बैंकों की जमा की चाल में भी एक सी रफ्तार नहीं होती। व्यापारिक तेजी के समय यह गति बढ़ जाती है, चाहे सूद दर कितनी ही अधिक क्यों न हो और व्यापारिक मन्दी के समय यह रफ्तार कम हो जाती है, चाहे सूद दर कितनी ही कम

क्यों न हो। इस के चलन पर मनुष्य की मानसिक प्रवृत्ति का अधिक प्रभाव होता है और इन बातों पर केन्द्रीय बैंक कोई प्रभाव नहीं डाल सकता। इसके अतिरिक्त जिन स्थानों में बैंकिंग प्रणाली बहुत उन्नत अवस्था में नहीं है, वहां क्रियाशील पूंजी बाज़ार की कमी, केन्द्रीय बैंक के पास बेचने के लिये काफी प्रतिभूतियों की कमी और खरीदने के लिये धन की कमी व्यापारिक बैंकों और केन्द्रीय बैंक के बीच घनिष्ट सम्पर्क का अभाव आदि भी कुछ रुकावटें हैं, जो इस नीति को सफल नहीं होने देतीं। इसके अतिरिक्त राजनैतिक, आर्थिक और जनता की मानसिक प्रवृत्तियों का भी इस पर काफी प्रभाव पड़ता है।

इन रुकावटों के अतिरिक्त अधिक प्रतिभूतियों की विक्री से इनके मूल्यों में कमी हो जाने का भय रहता है, जिससे सूद दर ऊंची हो जाती है और सरकार को क्षति उठानी पड़ती है तथा मुद्रा बाज़ार में भी सूद की दर पर उल्टा प्रभाव होता है।

बहुत से केन्द्रीय बैंकों ने 'बैंक दर' और 'खुले बाज़ार की क्रिया' दोनों का संयुक्त प्रयोग किया है, परन्तु यह उपाय भी अधिक सफल न हो सका।

✓ नक़द कोष के अनुपात को बदलना—अविकसित पूंजी बाज़ार वाले देशों में जहां विधानतः व्यापारिक बैंकों को अपनी कुल जमा का एक निश्चित प्रतिशत केन्द्रीय बैंक के पास जमा करना पड़ता है वहां के लिये यह साख नियन्त्रण का एक अच्छा अस्त्र माना गया है। इस का आविष्कार सर्व प्रथम अमरीका में सन् १९३३ में हुआ और सन् १९३५ में उसको अधिक प्रभावपूर्ण बनाया गया। इस उपाय के अनुसार नक़द

कोष के अनुपात में परिवर्तन करने से साख नियन्त्रण किया जाता है। जब केन्द्रीय बैंक को साख कम करने की आवश्यकता होती है, तो वह नक़द कोष के अनुपात को बढ़ा देता है। जिससे व्यापारिक बैंकों को अधिक रकम केन्द्रीय बैंक के पास रखने से उनका नकद कोप कम हो जायगा और साथ में उन की साख उत्पन्न करने की शक्ति भी। जब केन्द्रीय बैंक को साख प्रसार करना होता है तो वह इस अनुपात में कमी कर देगी जिससे व्यापारिक बैंकों के पास अधिक नक़दी हो जावेगी और वह अधिक साख सृजन कर सकेंगी। लार्ड कीन्स ने इस अस्त्र की काफी प्रशंसा की है, किन्तु साथ ही इसमें भी कुछ कठिनाइयां हैं। यह सब बैंकों पर एक सा प्रभाव नहीं डाल सकता। जिन बैंकों पर पहले से ही काफी नकद कोष है, उनके ऊपर नक़द अनुपात के बढ़ाने का बहुत कम असर होगा। दूसरे इसमें नमनीयता की कमी है। इसमें आवश्यकतानसार कोष की अत्यधिक कमी अथवा वेशी का कोई ध्यान नहीं रखा जाता। जिस स्थान पर पहले से ही नक़द कोष की कमी है, वहां अनुपात बढ़ाने से और भी कमी हो जावेगी और जहां नक़दी की बहुतायत है, वहां अनुपात बढ़ाने से भी नकदी की कठिनाई न होगी। इसके अतिरिक्त व्यापारिक बैंक बढ़ाये हुए अनुपात के अनुसार चलने के लिये प्रतिभूतियां वेचने लगेंगे, जिससे उनके मूल्यों में काफी कमी आ जायगी।

श्री ह्विटलसे (Whittlesey) ने खुले बाज़ार की क्रिया और नकद कोष के अनुपात को बदलने के ढंग, दोनों को संयुक्त रूप से प्रयोग में लाने का सुझाव दिया है। जब नकद कोप का अनुपात बढ़ाया जाय, तो खुले बाज़ार की क्रिया भी काम में ली जानी चाहिये, अर्थात जब अनुपात बढ़ाने के परि-

आर्थिक संकट आया तो इस नीति को अपनाना पड़ा। सन् १९२४ में जर्मनी ने अपने निउ रैन्टन मार्क के मूल्य में कमी रोकने के कारण इसको अपनाया। सन् १९२९ में भी जर्मनी ने इसे काम में लिया। सन् १९३१ में रीका बैंक ने साख का कोटा (Quota) बांध कर बड़े बड़े बैंकों को फेल होने से बचाया। रूस में यह ढंग वहां की सरकारी बैंक की साधारण अर्थिक नीति का प्रायः एक अंग ही बन गया है। द्वितीय महायुद्ध काल में भी यह तरीका प्रजातन्त्र राज्यों द्वारा काफी प्रयोग में लाया गया। यह देश की सरकार पर निर्भर रहता है कि किस क्षेत्र में कितनी साख और अर्थ की आवश्यकता है। इस ढंग में पक्षपात का अधिक भय रहता है।

नैतिक प्रभाव डालना—नैतिक प्रभाव डाल कर भी साख नियन्त्रण सफलता पूर्वक किया जा सकता है। जब केन्द्रीय बैंक यह अनुभव करता है कि देश में साख का दुरुपयोग अथवा अनावश्यक प्रसार हो रहा है, तो वह ठीक स्थिति को समझाने के लिये अपने प्रतिनिधियों को व्यापारिक बैंकों के पास भेजता है, जो उन्हें सही नीति बरतने के लिये सुझाव देते हैं। इसका प्रभाव अच्छा ही पड़ता है। इसका प्रभाव तभी पड़ सकता है जब केन्द्रीय बैंक और मुद्रा बाजार के सभी तत्वों में घनिष्ट सम्बन्ध हो। यह नीति इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रांस स्वीडन, हालैंड, कनाडा, आस्ट्रेलिया इत्यादि सभी देशों द्वारा समय समय पर सफलतापूर्वक काम में लाई जा चुकी है।

सीधी कार्रवाई—सीधी कार्रवाई द्वारा भी केन्द्रीय बैंक साख नियन्त्रण कर सकता है। इस नीति के अनुसार केन्द्रीय बैंक के साथ सख्ती से काम लेना पड़ता है। यदि केन्द्रीय

बैंक समझता है कि कोई बैंक देश के हितों के खिलाफ सट्टे फाटके तथा अनावश्यक व्यवसायों में अधिक ऋण देता है, तो वह उसके खिलाफ सीधी कार्रवाई कर सकता है और उसकी बिल भुनाने की सुविधा और दूसरी सुविधायें बन्द कर सकता है और अन्त में उसका बैंकिंग व्यवसाय भी स्थगित कर सकता है। इस नीति को काम में लाना अच्छा नहीं समझा जाता और इसका उपयोग बहुत कम किया गया है। व्यापारिक बैंकों के साख के दुरुपयोग का पता लगाना बहुत कठिन है। इस नीति का प्रयोग १९२८–२९ में अमरीका की फेडूल रिजर्व बैंकों ने अधिक किया, किन्तु उनका यह तरीका बहुत अच्छा सिद्ध न हुआ।

प्रचार एवं प्रकाशन नीति—बहुत से देशों में केन्द्रीय बैंकों ने साख नियन्त्रण की नीति को प्रचार विभाग के द्वारा भी मजबूत और कामयाब बनाने का यत्न किया है। प्रचार के द्वारा केन्द्रीय बैंक अपनी नीति को देश की सब बैंकों के पास पहुँचा सकता है। देश की साख स्थिति के बारे में बुलेटिन प्रकाशित किये जा सकते हैं और कभी कभी यह विवरण बहुत कामयाब सिद्ध हुये हैं। यद्यपि इसकी सफलता हर समय निश्चित नहीं है फिर भी प्रचार विभाग के द्वारा बैंकिंग संसार में पर्याप्त प्रभाव डाला जा सकता है। रिजर्व बैंक ने भी मई १९४६ में स्टाक एक्सचैंज सट्टा व्यवसाय के सम्बन्ध में सब बैंकों का स्टाक एक्सचैंज प्रतिभूतियों के लिए अधिक ऋण देने के विरोध में चेतावनी दी थी और यदि इस पर पहिले से ध्यान दे दिया जाता तो भारत में १९४६ का बैंकिंग संकट न आता।

उपरोक्त साख नियंत्रण के तरीके तभी सफल हो सकते

हैं जब देश में मुद्राबाजार विकसित तथा सुसंगठित हो और केन्द्रीय बैंक पर निर्भर हो। मुद्रा बाजार सुसंगठित न होने पर साख नियंत्रण नकद कोष का अनुपात या साख-पत्रों के मूल्य का अंश घटा बढ़ा कर अथवा सीधी कार्यवाही द्वारा ही हो सकता है।

अभ्यास-प्रश्न

१—केन्द्रीय बैंक क्या क्या कार्य करता है ? क्या यह आवश्यक है कि केन्द्रीय बैंक एक साधारण व्यापारिक बैंक के कार्य न करे ?

२—बैंक दर से आप क्या समझते हैं ? बैंक दर में परिवर्तन क्यों और कब किये जाते हैं ? इनका देश की अर्थ-व्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

३—केन्द्रीय बैंक साख नियन्त्रण कैसे करता है और उसका ऐसा करना कहां तक उचित है ?

४—केन्द्रीय बैंक के किन्हीं दो प्रमुख कार्यों का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।

५—किसी देश के मुद्राबाजार के सुसंगठित नहीं होने पर साख नियन्त्रण के लिये कौन कौन से साधन अपनाये जाते हैं ?

सातवाँ अध्याय ।

रिज़र्व बैंक आफ़ इण्डिया

रिजर्व बैंक आफ़ इण्डिया का नाम आज कौन नहीं जानता ? यह देश की सर्वोपरि बैंकिंग संस्था है । कुछ लोग इसे देश का केन्द्रीय बैंक कह कर पुकारते हैं । देश के मुद्रा संचालन करने, बैंकों पर नियन्त्रण रखने तथा केन्द्रीय सरकार की रकमों व प्रतिभूतियों के रखने का अधिकार केवल इसी बैंक को प्राप्त है । आपने देखा होगा कि एक रुपये के नोटों के अतिरिक्त अन्य सारे कागजी नोटों पर रिजर्व बैंक आफ़ इण्डिया लिखा रहता है और उसके गवर्नर के हस्ताक्षर होते हैं । इन नोटों को प्रकाशित करने का अधिकार केवल इसी बैंक को है । आइयें अब हम आपको रिजर्व बैंक के बारे में विस्तार से समझायें ।

स्थापना

रिजर्व बैंक की स्थापना के लिये सन् १९३४ में रिज़र्व बैंक आफ इण्डिया, विधान पास किया गया जिसके फलस्वरूप १ अप्रैल १९३५ को रिजर्व बैंक का जन्म हुआ । वैसे तो देश के लिये एक केन्द्रीय बैंक की स्थापना के लिये ठोस सुझाव सन् १९२५ में हिल्टन यंग कमीशन ने रखा था, किन्तु इस प्रकार के प्रयत्न बहुत पहिले से चल रहे थे । सब से पहिले

इस प्रकार की संस्था की आवश्यकता प्रथम महायुद्ध में प्रतीत हुई। किन्तु सन् १६३० तक इस पर कोई कार्यवाही न की गई। सन् १६३० में नियुक्त केन्द्रीय वैंकिंग जांच समिति (Central Banking Enquiry Committee) ने भी जब इस प्रकार की संस्था शीघ्र स्थापित करने की मांग की, तो सरकार अधिक दिन चुप न रह सकी और अन्त में १६३५ में इसकी स्थापना होकर रही।

उद्देश्य

(१) देश के आन्तरिक तथा वाह्य मूल्यों में स्थायित्व लाना;

(२) देश के मुद्रा संचालन के कार्य को सुचारु रूप से चलाना;

(३) वैंकों की जमाओं का कुछ प्रतिशत अपने पास रख आवश्यकता पड़ने पर उन को सहायता देकर वैंकों को असफल होने से रोकना;

४—सब वैंकों को अपने नियन्त्रण में रख देश में एक सुदृढ़ तथा ठोस वैंकिंग प्रणाली की नींव डालना।

५—सरकारी रकमों को सुरक्षित रखना, उनकी प्रतिभूतियों का विक्रय करना तथा समय समय पर देश की आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिये परामर्श देना।

६—कृपकों को उचित ऋण की सुविधायें प्रदान कर उनको महाजनों के चंगुल से बचाना तथा देश की कृपि-अर्थ-व्यवस्था को उच्चस्तर पर लाना।

७—देश के मुद्रा वाजार के विभिन्न अंगों में पारस्परिक सहयोग तथा सामन्जस्य स्थापित करना।

८—देश में सुनियन्त्रित तथा सुसंगठित आर्थिक नीति की

नींव डालना तथा उसका देशहित के लिये पालन करवाना।

रिज़र्व बैंक का विधान

रिज़र्व बैंक के लिये एक अलग विधान जिसको रिज़र्व, बैंक आफ इंडिया विधान (Reserve Bank of India Act) कहते हैं मार्च १६३४ में पास किया गया। इस विधान की मुख्य मुख्य बातें इस प्रकार हैं।

रिज़र्व बैंक की पूंजी

विधानानुसार इसकी पूंजी ५ करोड़ रुपया रखी गई, जिसको सौ सौ रुपये के ५ लाख अंशों में विभाजित कर दिया गया। इन अंशों को पूर्ण चुकता अंश (Fully paid up shares) का रूप दिया गया और सारे अंश जनता को बेच दिये गये जिससे बैंक को पूरे ५ करोड़ रुपये प्राप्त हो गये। सारे अंश देकर के एक भाग में ही एकत्रित होकर सत्ता केन्द्रित न हो जाय। इसके लिये देश को ५ भागों में बांट दिया गया और उनकी पूंजी का बटवारा निम्न प्रकार किया गया:—

बम्बई	१४० लाख
कलकत्ता	१४५ लाख
देहली	११५ लाख
मद्रास	७० लाख
रंगून	३० लाख

यह सारी अंश-पूंजी केन्द्रीय धारा सभा व केन्द्रीय सरकार की पूर्व सम्मति तथा केन्द्रीय समिति (Central Board) की सिफारिश से बदली जा सकती थी। यद्यपि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लिये ऊपर लिखे अनुसार अंश-पूंजी निर्धारित कर दी गई थी, किन्तु फिर भी बाजार में इन अंशों का खुला क्रय-विक्रय

होने से बम्बई क्षेत्र में अंशों की मात्रा धीरे धीरे बढ़ती जा रही थी। जिसको रोकने के लिये सन् १९४० में रिजर्व बैंक ने एक व्यक्ति के नाम अधिकतम अंशों की रकम २०००० रुपया निश्चित कर दी।

प्रत्येक सदस्य को प्रति पांच अंशों के पीछे एक मत देने का अधिकार था और एक सदस्य अधिक से अधिक दस मत दे सकता था।

प्रबन्ध

सन १९३४ के विधान के अनुसार बैंक के प्रबन्ध के लिये एक केन्द्रीय समिति (Central Board) का होना आवश्यक था जिसमें १६ संचालक होते थे। ये संचालक निम्न प्रकार नियुक्त किये जाते थे:—

१—एक गवर्नर, दो डिप्टी गवर्नर, चार संचालक तथा एक और संचालक, जो सरकारी कर्मचारी होता था, गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त किये जाते थे। इस प्रकार आधे संचालक तो सरकार की ओर से मनोनीत किये हुए होते थे।

२—शेष आठ संचालक विभिन्न क्षेत्रों के सदस्य चुनते थे। इनमें से दो दो संचालक बम्बई, कलकत्ता तथा दिल्ली से और एक-एक मद्रास तथा रंगून से चुने जाते थे।

इसके अतिरिक्त उपर्युक्त प्रत्येक भाग में एक स्थानीय समिति (Local Board) होती थी, जिसके ८ संचालक होते थे। इनमें से पांच संचालक तो उस क्षेत्र के सदस्यों द्वारा चुने जाते थे और बाकी तीन केन्द्रीय समिति द्वारा मनोनीत किये जाते थे। इस स्थानीय समिति का मुख्य कार्य सेन्ट्रल समिति के लिए संचालक चुनना, उसकी देख-रेख में कार्य करना तथा समय समय पर बैंक के संचालन सम्बन्धी परामर्श देता था।

बैंक का कोई एक प्रधान कार्यालय न रख पाँच प्रमुख कार्यालय बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, रंगून तथा देहली में रखे गये।

रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण

१ अप्रैल १६३५ से, जब से कि रिजर्व बैंक की स्थापना हुई, ३१ दिसम्बर १६४६ तक यह बैंक सदस्यों का बैंक रहा। किंतु सन् १६४६ में रिजर्व बैंक के राष्ट्रीयकरण के लिये भारतीय संसद में एक विधान रखा गया, जो ३ सितम्बर १६४६ को स्वीकृत हो गया और इसके फलस्वरूप १ जनवरी १६४६ से यह पूर्णतः सरकारी बैंक हो गया। बैंक के प्रत्येक सदस्य को उस समय के बाजार भाव से प्रत्येक १०० रुपये के अंश के बदले में ११८ रुपये १० आने दे दिये गए। यह भुगतान १८ रुपये १० आने को छोड़कर तीन प्रतिशत विकास ऋण, १६७०-७५ (3 % Development Loan 1970-1975) में किया गया।

राष्ट्रीयकरण के कारण—बैंक के राष्ट्रीयकरण के लिए अनेक युक्तियां (Arrangements) रखी गईं जिनमें से मुख्य मुख्य इस प्रकार हैं:—

१—विश्व के सभी प्रमुख तथा प्रगतिशील देशों में जिनमें इग्लैंड भी सम्मिलित है, केन्द्रीय बैंकों का राष्ट्रीयकरण हो चुका है। वहाँ सरकार की आर्थिक व मौद्रिक नीति को केन्द्रीय बैंक ही कार्यान्वित करते है। भारत में भी ऐसा होने के लिए रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण आवश्यक है।

२—रिजर्व बैंक का विधान विदेशी शासन में विदेशियों के हित को दृष्टि में रखते हुए विदेशियों द्वारा बनाया गया था। इस विधान के अन्तर्गत रिजर्व बैंक व केन्द्रीय सरकार के बीच

जो कि अब देश की सरकार थी, सामंजस्य स्थापित नहीं हो सकता था। इसके लिये इस विधान में आमूल चूल परिवर्तन (Fundamental changes) करना आवश्यक है, जो केवल राष्ट्रीयकरण द्वारा सम्भव है। राष्ट्रीयकरण से सरकार व बैंक की नीति एक हो जायगी।

३—युद्धोत्तर पुनर्निर्माण तथा पुनर्गठन की योजनाओं को सफलीभूत करने के लिये भी रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण आवश्यक है।

४—अन्तर्राष्ट्रीय कोष तथा विश्व बैंक से व्यवहार करने के लिये देश के केन्द्रीय बैंक को माध्यम बनाना आवश्यक है। इन व्यवहारों को देश की आर्थिक नीति के अनुकूल बनाए रखने के लिये रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण होना अनिवार्य है।

५—रिजर्व बैंक ही देश की एक ऐसी संस्था है, जो साख और मुद्रा का नियंत्रण करती है। इस नियन्त्रण का जनहित में होना भी संभव है, जब यह पूंजी-पतियों के प्रभाव से परे हो और इसका राष्ट्रीयकरण हो जाय।

६—राष्ट्रीयकरण से हानि होगी या लाभ, यह तो हम उन चीजों को देखकर पता लगायें, जो आज सरकार के हाथ में हैं। रेल इत्यादि का राष्ट्रीयकरण होना देश के लिये कितना लाभ-दायक सिद्ध हुआ है, यह तो आज बच्चा बच्चा जानता है। इसलिये रिजर्व बैंक का भी राष्ट्रीयकरण हो जाना चाहिये।

७—रिजर्व बैंक के इतने महत्वपूर्ण कार्यों व अधिकारों को देखते हुये यह आवश्यक है कि वह सरकारी नियन्त्रण में कार्य करे।

८—रिजर्व बैंक अभी तक एक निजी संस्था होने से देश की

अन्य बैंकिंग संस्थाओं पर नियंत्रण रखने तथा उनसे आवश्यक अंक (Statistics) प्राप्त करने में कठिनाई होती है। राष्ट्रीयकरण हो जाने से इसके अधिकार बढ़ जायेंगे और ये कठिनाइयां दूर हो जायेंगी।

६—अब तक देशवासियों का विश्वास सरकार तथा सरकारी संस्थाओं में अधिक रहा है। इसलिये राष्ट्रीयकरण से बैंक में जनता का विश्वास बढ़ जायगा, जो देश की बैंकिंग पद्धति के विकास के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

१०—रिजर्व बैंक अपने इतने लम्बे काल में मुद्रा बाजार के विभिन्न अंगों में पारस्परिक सहयोग व संगठन स्थापित करने में असफल रहा है। स्वदेशी बैंकर जो देश की बैंकिंग पद्धति के एक आवश्यक अंग हैं, आज भी जहां के तहां हैं। यह विश्वास किया जाता है कि राष्ट्रीयकरण से इस संगठन को उन्नतिशील बनाने में सहायता मिलेगी।

राष्ट्रीयकरण के उपरान्त

पूंजी—रिजर्व बैंक की मौजूदा पूंजी पूर्ववत् ५ करोड़ रुपया ही है। केवल अन्तर इतना ही है कि अब यह पूंजी सदस्यों की न होकर सरकार की है। सदस्यों को प्रत्येक अंश के लिए ११६ रुपये १० आने (१६ रुपये १० आने तो रोकड़ी और शेष १०० रुपये विकास ऋण के रूप में) दे दिए गए। इस ऋण का भुगतान १५ अक्टूबर १६७० से १६७५ की अवधि के बीच सरकार तीन महीने पहिले सूचना देकर कभी भी कर सकती है।

प्रबन्ध—राष्ट्रीयकरण के बाद बैंक के प्रबन्ध का सारा भार भारत सरकार पर है। जैसा स्वाभाविक ही था। इसके संचा-

लकों की नियुक्ति का ढंग अब बिलकुल बदल गया है। अब केन्द्रीय समिति में १६ के स्थान पर १४ संचालक होते हैं, जिनकी नियुक्ति का ढंग निम्न प्रकार है:—

एक गवर्नर तथा दो डिप्टी गवर्नर— इनकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा पांच वर्ष के लिए होती है और ये वेतन पर कार्य करते हैं। डिप्टी गवर्नरों को केन्द्रीय समिति की बैठक में भाग लेने का अधिकार तो है, किन्तु वे अपनी राय नहीं दे सकते। गवर्नर की अनुपस्थिति में उसकी लिखित अनुमति से डिप्टी गवर्नर भी अपना मत दे सकता है। आजकल रिजर्व बैंक के गवर्नर श्री बी० रामाराव हैं।

२—*चार संचालक*—इनको केन्द्रीय सरकार चारों स्थानीय समितियों में से प्रत्येक स्थान से एक के हिसाब से मनोनीत करती है। इनकी भी अवधि ५ वर्ष की होती है।

३—६ *संचालक*—ये भी केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत किए जाते हैं। इनमें से प्रत्येक दो संचालक बारी बारी से एक दो तथा तीन वर्ष के बाद अपने पद से मुक्त हो जाते हैं।

२ *एक सरकारी कर्मचारी*—यह भी केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है किन्तु इसकी कोई अवधि निश्चित नहीं होती, साथ ही इसको मतदान का अधिकार भी नहीं होता।

इनके अतिरिक्त चार स्थानीय समितियां कलकत्ता, बम्बई, मद्रास तथा देहली में अपने अपने अपने क्षेत्र का केन्द्रीय समिति के आदेशानुसार प्रबन्ध करती है। प्रत्येक स्थानीय समिति के पांच सदस्य होते हैं, जिनको केन्द्रीय सरकार नियुक्त करती है।

केन्द्रीय समिति की बैठक बुलाना गवर्नर के अधिकार में है, वैसे कोई भी तीन संचालकों द्वारा गवर्नर को बैठक बुलाने की मांग करने पर यह बैठक बुलाई जा सकती है। केन्द्रीय समिति को वर्ष में ६ बैठकें बुलाना आवश्यक है, जिनमें तीन महीने में कम से कम एक बैठक तो अवश्य बुलाना चाहिए।

मुद्रा निधि—रिजर्व बैंक के विधान में यह भी परिवर्तन कर दिया गया कि अब वह अपने नोट प्रकाशन तथा बैंकिंग विभाग में पहिले की भांति न केवल स्टर्लिंग प्रतिभूतियां रख सकेगा, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के किसी भी सदस्य देश की मुद्रा अथवा प्रतिभूतियां रख सकेगा। भारत के मुद्रा कोष के सदस्य हो जाने तथा रिजर्व बैंक को विदेशी मुद्रा का निश्चित दरों पर क्रय-विक्रय करने को बाध्य होने के कारण, यह परिवर्तन अत्यन्त आवश्यक हो गया था।

राष्ट्रीयकरण का हिताहित— कुछ लोगों ने राष्ट्रीयकरण की बड़ी आलोचना की। उनका कहना था कि इसके द्वारा सरकार को बैंक की नीति निर्धारित करने का पूर्ण अधिकार हो जाने से यह परिणाम होगा कि यह नीति केन्द्र में जो राजनैतिक दल सत्तारूढ़ होगा, उसी की इच्छानुसार बदलती रहेगी।

किंतु राष्ट्रीयकरण के पक्षपातियों का कहना है कि आज-कल जो हमारी पंचवर्षीय योजनायें आदि चल रही हैं, इनकी सफलता इस प्रकार की एक राष्ट्रीय संस्था के अभाव में असम्भव थी। जब विश्व के प्रमुख देशों जैसे कनाडा, आस्ट्रेलिया, इंग्लैंड तथा फ्रांस आदि में केन्द्रीय बैंकों का राष्ट्रीय करण हो चुका है और जहां इसके कारण सरकार और केन्द्रीय बैंक के बीच देश की आर्थिक नीति सम्बन्धी सब मतभेद दूर हो गये हैं,

भारत को भी उनका अनुसरण करना हितकर ही होगा। बल्कि
यों कहना चाहिये कि इस राष्ट्रीयकरण द्वारा यह मतभेद दूर हो
भी गया है। यदि रिजर्व बैंक एक सदस्यों का ही बैंक होता, तो
इसको बैंकिंग कम्पनी विधान १९४९ द्वारा दिये गये अधिकार
कभी न दिये गये होते। राष्ट्रीयकरण ने इन अधिकारों का दिया
जाना न्यायसंगत ठहरा दिया है।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि इस राष्ट्रीयकरण से
देश को लाभ ही होगा, हानि नहीं। हां यह अवश्य है कि
इसका कार्य सुचारु रूप से चलने देने के लिये इसको दलगत
राजनीति का शिकार न बनाना ही हितकर होगा।

रिजर्व बैंक के कार्यालय तथा विभाग

आजकल हमारे देश में रिजर्व बैंक के पांच प्रमुख कार्या-
लय बम्बई, कलकत्ता, मद्रास देहली तथा कानपुर में हैं। १९३६
से इसकी एक शाखा लंदन में भी कार्य कर रही है। भविष्य में
इसकी शाखा खोलने का पूर्ण अधिकार भारत सरकार को है।
वैसे जहां जहां इम्पीरियल बैंक की शाखायें हैं, वे ही इसका
प्रतिनिधित्व करती हैं। आजकल रिजर्व बैंक के निम्न पांच
विभाग कार्य कर रहे हैं।

१—नोट प्रकाशन विभाग (Issue Department)—
यह बैंक का अत्यन्त महत्वपूर्ण विभाग है और यह १ अप्रैल,
१९३५ से ही कार्य कर रहा है। इसका मुख्य कार्य कागजी
नोटों का प्रकाशन करना है। हमारे देश में दो रुपये, पांच
रुपये, दस रुपये तथा सौ रुपये के नोटों का प्रकाशन यही
विभाग करता है। पहिले यह एक हजार रुपये वाले नोट भी
प्रकाशित करता था, किन्तु १२ जनवरी १९४६ से इनका चलन

बन्द कर दिया गया। इस विभाग की शाखायें बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, देहली तथा कानपुर में हैं, पहले लाहौर और करांची में भी थीं किन्तु पाकिस्तान के बन जाने के बाद ये शाखायें बन्द कर दी गई। इस विभाग के भी दो उपविभाग होते हैं। प्रथम, कोष विभाग (Treasury Dept.) जिसका कार्य नोट निकालना तथा उनका एक दूसरे में परिवर्तन करना है। दूसरा, साधारण विभाग जिसका कार्य नोटों को जांचना तथा रद्द करना तथा हिसाब रखना आदि है।

रिजर्व बैंक अपने साप्ताहिक विवरण में इस विभाग के अंक प्रकाशित करता है। ये अंक बड़े उपयोगी होते हैं क्योंकि इन में प्रति सप्ताह के अन्त में जारी किये नोटों की तथा चलन में नोटों को संख्या दी रहती है, जिससे मालूम हो जाता है कि गत सप्ताह से नोटों की संख्या में कितना परिवर्तन हुआ। इस अध्याय के अन्त में रिजर्व बैंक के साप्ताहिक विवरण में ये सब बातें दी हुई हैं।

२–*बैंकिंग विभाग* (Banking Department)—इस विभाग ने अपना कार्य १ जुलाई १९३५ से प्रारम्भ किया। क्योंकि, इसी दिन से अनुसूचित बैंकों (Scheduled Banks) ने अपनी याचित एवं काल देय (Demand & time liabilities) का क्रमशः ५ प्रतिशत और २ प्रतिशत रिजर्व बैंक के पास जमा कराना शुरू किया तथा समाशोधन गृहों (Clearing Houses) का कार्य भी इम्पीरियल बैंक के पास से रिजर्व बैंक के पास इसी दिन से आया था। इस विभाग का कार्य बैंकों की जमायें अपने पास रखना, उनको आर्थिक सहायता तथा परामर्श देना, समय समय पर उनका निरीक्षण करना, रकमों का एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजना, सरकारी

लेन देन तथा ऋण की व्यवस्था करना है। इसका कार्य भार एक व्यवस्थापक के हाथ में होता है। यह विभाग भी अपने अंक साप्ताहिक विवरण में प्रकाशित करता है, जैसा आगे दिखाया गया है।

३—*कृषि साख विभाग* (Agricultural Credit Department)—भारत में कृषि उद्योग के महत्व को स्वीकार करते हुये रिजर्व बैंक ने इस की उन्नति के लिये प्रारम्भ से प्रयत्न किया है। इसके लिये इसने अपना एक अलग विभाग, जो ऊपर लिखे नाम से प्रसिद्ध है, खोल रखा है। इस विभाग के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :—

(क) कृपि साख सम्बन्धी सभी प्रश्नों का अध्ययन करने तथा कृषि समस्याओं पर अपना परामर्श देने के लिये विशेषज्ञों को नियुक्त करना;

(ख) समय समय पर केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों, सहकारी समितियों तथा अन्य बैंकिंग संस्थाओं को कृषि साख सम्बन्धी सुझाव देना तथा उनके बीच पारस्परिक सामंजस्य बनाये रखना;

(ग) रिजर्व बैंक की कृषि साख सम्बन्धी नीति निर्धारित करना।

४—*अनुसंधान तथा अंक-संकलन विभाग* (Research & Statistics Department)—इस विभाग का मुख्य कार्य मुद्रा तथा बैंकिंग सम्बन्धी बातों का अनुसन्धान करना तथा उन के सम्बन्ध में आंकड़े प्रकाशित करना है। इस विभाग द्वारा एक मासिक पत्रिका जो रिजर्व बैंक आफ़ इण्डिया बुलेटिन (Reserve Bank of India Bulletin) कहलाती

है, प्रकाशित की जाती है। देश की मुद्रा तथा बैंकिंग समस्याओं का अध्ययन करने के लिये भारत में इससे अधिक उपयुक्त अन्य कोई प्रकाशन नहीं निकलता। आजकल इस के प्रधान सम्पादक श्री पी० एस० नारायण प्रसाद हैं, जो रिजर्व बैंक के आर्थिक सलाहकार का कार्य कर रहे हैं। इस बुलैटिन के अतिरिक्त भी समय समय पर कई अन्य प्रकाशन निकलते रहते हैं, जिन में रिजर्व बैंक की वार्षिक करैन्सी एण्ड फाइनैंस रिपोर्ट मुख्य है। यह विभाग बम्बई में काम करता है।

५—*विनिमय नियन्त्रण विभाग* (Exchange Control Department)—वैसे तो विदेशी विनिमय दर स्थायी रखने के लिये रिजर्व बैंक प्रारम्भ से ही विदेशी विनिमय के क्रय-विक्रय का कार्य कर रहा है, किन्तु इस कार्य के लिये पहिले कोई अलग विभाग नहीं था। अलग विभाग का निर्माण तो दूसरे महा युद्ध के दिनों में हुआ था। इस विभाग का उद्देश्य विदेशी विनिमय का सारा क्रय-विक्रय अपने हाथ में लेकर विनिमयदर पर पूर्ण नियन्त्रण रखना है। अब सन् १९४७ के विदेशी विनिमय नियन्त्रण विधान द्वारा, यह क्रय-विक्रय का अधिकार केवल रिजर्व बैंक को ही रह गया है।

रिजर्व बैंक के कार्य

रिजर्व बैंक देश की एक सर्वोपरि बैंकिंग संस्था होने के कारण इसका कार्य-क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। इसके समस्त कार्यों को हम दो भागों में बांट सकते हैं। (१) केन्द्रीय बैंकिंग कार्य तथा (२) साधारण बैंकिंग कार्य।

१—*केन्द्रीय बैंकिंग कार्य*—रिजर्व बैंक भी समस्त अन्य देशों के केन्द्रीय बैंकों की भांति निम्नलिखित कार्य सम्पन्न

करता है :—

(१) नोट प्रकाशन का कार्य—सन् १९३५ से इस बैंक को हमारे देश में नोट प्रकाशित करने का एकाधिकार (Monopoly) मिला हुआ है। इस कार्य के लिये बैंक ने एक अलग विभाग, जो नोट प्रकाशन विभाग (Issue Department) कहलाता है, खोल रखा है। बैंक आफ इंग्लैंड की भांति इस विभाग की सम्पत्ति बैंकिंग विभाग की सम्पत्ति से अलग रखी जाती है। इस विभाग की सम्पत्ति में स्वर्ण मुद्रा, स्वर्ण धातु, स्टर्लिंग प्रतिभूतियां, रुपये, रुपये की प्रतिभूतियां तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अन्य सदस्य देशों की मुद्रायें तथा प्रतिभूतियां सम्मिलित हैं। इन सब का ४० प्रतिशत भाग स्वर्ण मुद्रा, स्वर्ण धातु अथवा स्टर्लिंग प्रतिभूतियों के रुपये होना चाहिये बशर्ते कि सोने की कुल राशि २१ रुपये ३ आने १० पाई प्रति तोले के हिसाब से ४० करोड़ रुपये के मूल्य से कभी कम न हो। सम्पत्ति के इस परिमाण से कम होने पर सरकार से आज्ञा लेना तथा कम से कम ६ प्रतिशत का दण्ड भोगना आवश्यक है। इस सारे स्वर्ण का ८५ प्रतिशत भाग भारत में ही रहना आवश्यक है।

उक्त सम्पत्ति का शेष ६० प्रतिशत भाग रुपयों, सरकारी प्रतिभूतियों, स्वीकृत व्यापारिक बिलों तथा प्रणपत्रों के रूप में होना चाहिये। प्रचलित नोटों में एक रुपये वाले नोटों को छोड़कर शेष सब प्रकार के नोट रिजर्व बैंक ही प्रकाशित करता है।

(२) बैंकों के बैंक का कार्य करना—जिस प्रकार साधारण व्यक्ति अपने नित्य प्रति के मुद्रा तथा साख सम्बन्धी कार्यों के लिये बैंक की शरण लेता है उसी प्रकार देश के बैंक भी अपनी

सहायता के लिये रिजर्व बैंक के पास दौड़ते है। रिजर्व बैंक इन बैंकों का बैंक है। इन समस्त संयुक्त पूंजी वाले बैंकों को जिन की पूंजी तथा सुरक्षित कोष कम से कम पांच लाख रुपया है और जिनका नाम रिजर्व बैंक की दूसरी सूची (Schedule) में है अपनी चालू जमा का ५ प्रतिशत और स्थायी जमा का २ प्रतिशत रिजर्व बैंक के पास जमा रखना आवश्यक है। सन् १९५१ में इन अनुसूचित बैंकों की संख्या ९६ थी। अब तो सन् १९४९ के बैंकिग विधान के बाद प्रत्येक बैंकिग संस्था को अपनी जमाओं का कुछ प्रतिशत रिजर्व बैंक के पास रखना आवश्यक है। आवश्यकता पड़ने पर रिजर्व बैंक इनको ऋण सम्बन्धी, पुनर्कटौती तथा रकम हस्तान्तरण की सुविधायें देता है। उपर्युक्त जमाओं के कारण रिजर्व बैंक खुले बाजार की नीति (Open Market Operations) अपनाकर देश में साख का नियन्त्रण करने में समर्थ होता है। वैसे तो साख नियन्त्रण के लिये बैंक के पास बैंक दर का शस्त्र भी मौजूद है, किन्तु इस का उपयोग बहुत कम किया जाता है। अब तक इसका उपयोग केवल एक बार सन् १९५२ में किया गया है।

(३) *रुपये की विनिमय दर पर नियंत्रण रखना*—रिजर्व बैंक पर भारतीय रुपये की विनिमय दर १ शि० ६ पेंस पर स्थिर रखने का उत्तरदायित्व प्रारम्भ से चला आ रहा है। इसके लिये इस को कम से कम दस हजार पौंड १ शि० ५$\frac{49}{64}$ पेंस प्रति रुपये के हिसाब से बेचना तथा १ शि० ६$\frac{3}{16}$ पेंस प्रति रुपये के हिसाब से खरीदना आवश्यक था। अब देश में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रामान स्थापित हो जाने से रिजर्व बैंक के लिये अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सभी देशों की मुद्राओं का निश्चितयों पर क्रय-

विक्रय करना आवश्यक हो गया है। यहां यह स्मरण रहे कि सन् १९४७ के विनिमय नियन्त्रण विधान के बाद इन विभिन्न मुद्राओं के क्रय-विक्रय का अधिकार केवल रिजर्व बैंक को ही रह गया है। रिजर्व बैंक ने इस कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिये एक विनिमय नियन्त्रण विभाग भी खोल रखा है।

(४) <u>सरकारी बैंक का कार्य करना</u>—रिजर्व बैंक और केन्द्रीय सरकार के बीच प्रारम्भ से ही यह समझौता है कि सरकारी बैंक का कार्य केवल रिजर्व बैंक अथवा उसका प्रतिनिधि ही करेगा। इस समझौते के अनुसार यह सरकार के प्रति निम्न कार्य करता है :—

(क) यह उसके शेष (Balances) निःशुल्क रखता है, जिस की राशि इसके बैंकिंग विभाग के साप्ताहिक चिट्ठे में दिखलाई जाती है।

(ख) यह भारत सरकार की ओर से सब लेन देन करता है।

(ग) सरकारी ऋण को निर्गमित करने अथवा उसका भुगतान करने का कार्य करता है।

(घ) सरकार को आवश्यकता पड़ने पर काम चलाऊ ऋण (Ways and Means Advances) भी देता है।

(ङ) समय समय पर सरकार को आर्थिक मामलों पर सलाह भी देता रहता है।

(च) सरकार की ओर से एक स्थान से दूसरे स्थान को रुपया भेजने का कार्य भी करता है।

१ अप्रैल, सन् १९३७ को प्रान्तीय सरकारों के साथ भी

रिजर्व बैंक का एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार यह केन्द्रीय सरकार की भांति प्रान्तीय सरकारों के प्रति भी उपर्युक्त कार्य करने लग गया। जब एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को रुपया भेजना होता है, तो बैंक इन सरकारों से भी उसी दर से कमीशन लेता है, जिस दर से वह सहकारी समितियों तथा अन्य बैंकों से लेता है, किन्तु प्रान्त के भीतर भीतर रुपया भेजने पर कोई कमीशन नहीं लिया जाता। अब तो रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण हो जाने से यह एक प्रकार से एक सरकारी विभाग सा बन गया है। इसलिये अब किसी समझौते आदि का प्रश्न ही नहीं उठता। अब इस के द्वारा सरकार के प्रति उक्त सब कार्य सम्पन्न होना स्वाभाविक है।

(५) *समाशोधन गृह का कार्य करना*—रिजर्व बैंक समाशोधन गृह (Clearing House) का कार्य कर रकम के अनावश्यक इधर से उधर जाने को रोकता है। बैंक ने लगभग २५ स्थानों पर समाशोधन गृह खोल रखे हैं, जिनमें बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, देहली और कानपुर के समाशोधन गृह विशेष उल्लेखनीय हैं। ये समाशोधन गृह एक स्वतन्त्र संस्था के रूप में कार्य करते हैं और बैंक साधारणतया इनके कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करता। सन् १९५०-५१ में भारत में कुल ६५७८ करोड़ रुपये के चैकों का समाशोधन किया गया।

(६) *अन्य कार्य*—बैंक को पांच या उससे अधिक मूल्य वाले नोटों के बदले रुपये अथवा एक एक रुपये वाले नोट देना; जनता, सहकारी बैंकों, सदस्य बैंकों तथा गैर सदस्य बैंकों और स्वदेशी बैंकों का रुपया रियायती कमीशन पर इधर से उधर भेजना; तथा विभिन्न प्रकार की बैंकिंग संस्थाओं को आर्थिक समस्याओं पर परामर्श देना आवश्यक है। इसके

अतिरिक्त यह विभिन्न संस्थाओं से अंक एकत्रित कर उनको जनता के सामने भी लाता है।

२. *साधारण बैंकिंग के कार्य*—रिजर्व बैंक के साधारण बैंकिंग कार्य निम्नलिखित हैं :—

(१) केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों, बैंकों, संस्थाओं तथा व्यक्तियों से बिना किसी ब्याज के रुपया जमा पर लेना।

(२) समय समय प्रकाशित निश्चित दरों पर निम्नलिखित विनिमय बिलों को खरीदना, बेचना और पुनर्कटौती करना।

(क) भारत में लिखे व भुगतान किये जाने वाले वे बिल और प्रणपत्र जिनका भुगतान खरीदने अथवा पुनर्कटौती करने के ६० दिन के भीतर हो जाने वाला हो और जिन पर दो अच्छे हस्ताक्षर (कम से कम एक अनुसूचित बैंक के) मौजूद हों।

(ख) भारत में लिखे व भुगतान किये जाने वाले वे बिल जो कृषि अर्थ व्यवस्था को सुविधा देने अथवा फ़सल के बेचने के लिये लिखे गये हों और जो खरीदने अथवा पुनर्कटौती करवाने के ६ महीने के भीतर पक जाने वाले हों।

(ग) वे बिल जो ६० दिन की अवधि के हों और केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकारों की प्रतिभूतियां खरीदने के लिये लिखे गये हों।

(३) अनुसूचित बैंकों को कम से कम एक लाख रुपये के बराबर की विदेशी विनिमय बेचना तथा खरीदना।

(४) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सदस्य देशों में लिखे हुये अथवा उनके ऊपर किये हुये हों, उन बिलों का क्रय-विक्रय और पुनर्कटौती करना, जो खरीदने की तिथि से ६० दिन के भीतर पक जाने वाले हों।

(५) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सदस्य देशों के बैंकों के यहां अपने शेष (Balances) रखना।

(६) भारत में राज्यों, स्थानीय अधिकारिय (Local Authorities), अनुसूचित बैंकों और प्रान्तीय सहकारी बैंकों की मांग पर देय अथवा अधिक से अधिक ६० दिन की अवधि पर देय ऋण देना। इन ऋणों का भी. धरोहर की प्रतिभूतियों (Trustee Securities), सोने अथवा चांदी, श्रेष्ठ बिलों, अनुसूचित बैंकों या प्रान्तीय सहकारी बैंकों के प्रण-पत्रों जो माल के अधिकार-पत्रों के आधार स्वरूप हैं, आदि की जमानत पर दिया जाना आवश्यक है।

(७) केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों को ६० दिन में चुक जाने वाले कामचलाऊ ऋण (Ways & means Advances) देना।

(८) अपने स्वयं के कार्यालयों अथवा प्रतिनिधि बैंकों पर देय दर्शनी ड्राफ्ट (Demand Draft) जारी करना।

(९) विदेशी सरकारों की ऐसी प्रतिभूतिकों का क्रय-विक्रय करना, जो क्रय की तिथि से दस वर्षों के भीतर पक जाने वाली हों।

(१०) निश्चित सीमाओं में, केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकारों की किसी भी अवधि के भीतर पकने वाली प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय करना।

(११) अधिक से अधिक ३० दिन के लिये भारत के किसी भी अनुसूचित बैंक अथवा किसी दूसरे देश के केन्द्रीय बैंक से रकम उधार लेना।

(१२) किसी अन्य देश के केन्द्रीय बैंक में खाता खोलना, उससे आढ़त के सम्बन्ध स्थापित करना; उसके

आढ़तिये के रूप में स्वयं कार्य करना तथा उसके अंशों में पूंजी का विनियोग करना।

(१३) स्वर्ण के सिक्के अथवा स्वर्ण का क्रय-विक्रय करना।

उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त सन् १९४९ के भारतीय वैंकिंग कम्पनी विधान ने रिजर्व बैंक आफ़ इण्डिया पर निम्न कार्यों का भार और डाल दिया है:—

(१) वैंकों के निरीक्षण द्वारा यह विश्वास हो जाने पर कि वे अपनी समस्त जमा राशि का आवश्यकतानुसार भुगतान करने में समर्थ हैं, उनको वैंकिंग विधान की धारा २२ के अन्तर्गत अनुमति पत्र (Licence) देना।

(२) वैंकिंग विधान की धारा २३ के अन्तर्गत वैंकों की संख्या तथा शाखाओं को नियन्त्रित करना।

(३) धारा ३५ के अन्तर्गत अपनी इच्छा से अथवा केन्द्रीय सरकार के आदेश से किसी भी वैंक का हिसाब वही खाता तथा अन्य विवरणों का निरीक्षण करना तथा उस वैंक की कार्य-पद्धति संतोपजनक न होने पर केन्द्रीय सरकार के आदेशानुसार उस वैंक को आगे जमायें स्वीकार करने से रोकना।

(४) धारा १९ के अन्तर्गत भारत के समस्त वैंकों की याचित एवं काल देय (Demand & Time Liabilities) का क्रमशः ५ प्रतिशत व २ प्रतिशत अपने कोप में जमा रखना तथा उनसे इस देय से सम्बन्धित एक साप्ताहिक विवरण प्राप्त करना।

(५) धारा २१ के अन्तर्गत जनहित की दृष्टि से किसी भी समय किसी भी वैंक अथवा समस्त वैंकों की एक ऋण

Name:

नीति निर्धारित करना।

(६) विधान की विभिन्न धाराओं के अन्तर्गत बैंकों से समय समय पर भिन्न भिन्न प्रकार के विवरण तथा सूचनायें प्राप्त करना तथा उनका परिनिरीक्षण (Scrutiny) करना।

(७) धारा ४५ के अन्तर्गत बैंकों के एकीकरण तथा पुनर्गठन की योजनाओं पर विचार कर अपनी स्वीकृति देना।

(८) धारा ३६ के अन्तर्गत किसी भी बैंक के समाप्तिकरण (Liquidation) का कार्य संभालना।

रिजर्व बैंक के निषिद्ध कार्य

रिजर्व बैंक आफ़ इण्डिया विधान ने रिजर्व बैंक पर निम्न प्रतिबन्ध लगा रखे हैं:—

(१) रिजर्व बैंक किसी भी प्रकार के व्यापार तथा उद्योग-धन्धे में कोई प्रत्यक्ष भाग नहीं ले सकता है और न आर्थिक सहायता ही दे सकता है।

(२) यह अपने हिस्से या अन्य किसी बैंक या कम्पनी के हिस्से (Shares) नहीं खरीद सकता। अभी इसके द्वारा भारतीय अर्थ प्रमंडल के अंश खरीदे जाने के लिये विशेष वैधानिक व्यवस्था करनी पड़ी है।

(३) यह अपने कार्यालय तथा कर्मचारियों की आवश्यकता के अतिरिक्त किसी भी प्रकार की अचल सम्पत्ति (Immovable Property) न तो खरीद ही सकता है और न उसकी जमानत पर रुपया ही उधार दे सकता है

(४) यह अपने पास ब्याज पर जमायें (Deposits) स्वीकार नहीं कर सकता।

(५) यह उक्त परिस्थितियों के अतिरिक्त आंच्छित ऋण (unsecured loans) नहीं दे सकता।

उक्त प्रतिबन्धों के अतिरिक्त इस पर राष्ट्रीयकरण के पहिले एक प्रतिबन्ध और था और वह था ५ प्रतिशत से अधिक की लाभांश दर घोषित न करना। कहना न होगा कि इन सब प्रतिबन्धों के मूल में केवल एक बात थी और वह थी इसके केन्द्रीय बैंक होने के कारण इसको दूसरे बैंकों से स्पर्धा पूर्ण वर्ताव करने से रोकना।

रिजर्व बैंक का अन्य बैंकों से सम्बन्ध

१—रिजर्व बैंक तथा इम्पीरियल बैंक — रिजर्व बैंक स्थापित होते ही रिजर्व बैंक और इम्पीरियल बैंक के बीच एक समझौता हुआ जिसके अनुसार इम्पीरियल बैंक को रिजर्व बैंक का एकाकी प्रतिनिधि (Sole Agent) नियुक्त कर दिया गया। यह समझौता पहिले १५ वर्ष की अवधि के लिये था। इसके बाद किसी भी पक्ष द्वारा ५ वर्ष की सूचना पर भंग किया जा सकता है। इस सेवा के बदले इसको प्रथम ५ वर्षों में ६ लाख रुपये प्रति वर्ष, दूसरे पांच वर्षों में ६ लाख रुपये प्रति वर्ष और तीसरे पांच वर्षों में ४ लाख रुपये प्रति वर्ष देना तय हुआ था। इसके अतिरिक्त प्रथम दस वर्षों में २५० करोड़ रुपये तक के व्यवहारों के लिये प्रति सौ रुपये पर एक आना तथा २५० करोड़ रुपये से ऊपर प्रति सौ रुपये पर दो पैसा कमीशन निश्चित किया गया।

सन् १९४५ में कमीशन की ये दरें ५ वर्ष के लिये बदल दी गईं। ये दरें इस प्रकार हैं—

प्रथम १५० करोड़ रुपये पर एक रुपये का $\frac{१}{१६}$ प्रतिशत

द्वितीय १५० ,, ,, ,, ,, ,, $\frac{१}{३२}$,,

उपर्युक्त २०० करोड़ रुपये से ऊपर ३०० करोड़ रुपये तक एक रुपये का ,, ६६ प्रतिशत

इसके उपरान्त ,, ,, ,, ,, ३८८ ,,

इसके लिये इम्पीरियल बैंक पर यह प्रतिबन्ध है कि वह रिजर्व बैंक की बिना अनुमति के न कोई नई शाखा खोल सकता है और न मौजूदा शाखा बन्द कर सकता है। साथ ही रिजर्व बैंक इम्पीरियल बैंक को अपना प्रतिनिधि केवल तभी तक रखेगा जब तक इसकी आर्थिक दशा सुदृढ़ रहेगी।

२—*रिजर्व बैंक तथा अनुसूचित बैंक*—रिजर्व बैंक आफ इण्डिया विधान की ४२ (६) के अन्तर्गत, किसी भी बैंक को अनुसूचित बैंक बनने के लिये निम्न कार्यों का पालन करना आवश्यक है।

(१) उसकी चुकता पूंजी और सुरक्षा कोष (Reserve Fund) दोनों मिलाकर कम से कम पांच लाख रुपया होना आवश्यक है। यह पूंजी तथा सुरक्षा कोष की रकम हिसाब की पुस्तकों के आधार पर निश्चित न होकर वास्तविक तथा विनिमय-शील (Exchangeable) मूल्य के आधार पर निश्चित होनी चाहिये।

(२) वह भारतीय कम्पनी विधान, १९१३ की धारा २ में दी गई परिभाषा के अन्तर्गत निर्मित एक कम्पनी हो अथवा एक कारपोरेशन हो, इन दोनों कार्यों के पूर्ण होने पर उस बैंक का नाम रिजर्व बैंक की दूसरी अनुसूची (Schedule) में लिख दिया जाता है और बाद में वह अनुसूचित बैंक कहलाने लगता है। इस प्रकार के बैंकों की संख्या ३१ मार्च १९५० को १०० थी तथा उनकी शाखाओं की संख्या २९१२ थी। जिन बैंकों का नाम इस अनुसूची में नहीं है, वे अन-अनसूचित बैंक (non-

Scheduled Banks) कहलाते हैं ।

प्रत्येक अनुसूचित बैंक को रिजर्व बैंक के पास अपनी याचित तथा काल देय (Demand & Time Liabilities) का क्रमशः ५ प्रतिशत व २ प्रतिशत जमा रखनी पड़ती है। प्रत्येक ऐसे बैंक को रिजर्व बैंक के पास एक साप्ताहिक विवरण भी भेजना पड़ता है, जिस में उनकी याचित तथा काल देय की राशि नकदी की स्थिति (Cash Position) आदि बातें बतलानी होती हैं। इस विवरण की प्रमाणिकता के लिये इस पर बैंक के दो संचालकों तथा व्यवस्थापक के हस्ताक्षर होना आवश्यक है। कुछ बैंक साप्ताहिक विवरण न भेज कर मासिक विवरण भेजते हैं, क्योंकि वे अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण ऐसा नहीं कर पाते। इस विवरण के ठीक समय पर न पहुँचने पर १०० रुपये प्रति दिन के हिसाब से दण्ड भोगना पड़ता है।

इन अनुसूचित बैंकों को रिजर्व बैंक से इस सम्बन्ध के कारण कई लाभ भी हैं। वे इस प्रकार हैं :—

(१) इससे उनकी बाज़ार में साख और प्रसिद्धि बढ़ जाती है और लोगों में एक विश्वास सा उत्पन्न हो जाता है।

(२) इससे उनको अपने अच्छे बिलों की पुनर्कटौती कराने की सुविधा मिल जाती है।

(३) इससे संकट कालीन दशा में आर्थिक सहायता भी मिल जाती है।

(४) इससे उनको रकम के एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजने की सुविधा भी मिल जाती है।

(५) इससे समय समय पर उनको पथ-प्रदर्शन तथा

परामर्श भी मिलता रहता है।

यहां यह स्मरण रहे कि किसी भी वैंक के अनुसूचित हो जाने का यह अर्थ नहीं है कि यह उसकी आर्थिक स्थिति के सदैव अच्छी और ठोस रहने का एक प्रमाण-पत्र मिल गया है। रिजर्व वैंक अनुसूचित वैंकों द्वारा ली जाने वाली जमाओं के भुगतान की कभी कोई दायित्व स्वीकार नहीं करता और न वह ऐसा कर ही सकता है।

३. *रिजर्व वैंक तथा अन-अनुसूचित वैंक*—प्रारम्भ में इन वैंकों को रिजर्व वैंक से कोई विशेष सुविधायें नहीं दी जाती थीं। १ अक्टूबर १९४० से इन को राशि स्थानान्तरण की सुविधा दी गई तथा १५ फर्वरी १९४५ से इन को रिजर्व वैंक के पास अपने खाते खोलने की अनुमति दी गई। किन्तु यह शर्त रखी गई कि उक्त वैंक कम से कम १०००० रुपये की जमा रखेगा। साथ ही इस प्रकार के हिसाव पर वह वैंक रिजर्व वैंक पर किसी तीसरे व्यक्ति के पक्ष में कोई चैक नहीं लिखेगा। ३१ मार्च १९५० को उक्त वैंकों की संख्या ३६४ थी।

सन् १९४९ के वैंकिंग विधान से रिजर्व वैंक और देश के अन्य सभी वैंकों के बीच सम्बन्ध स्थापित हो गया है। अब इन सब वैंकों को अपनी तथा काल देय का क्रमशः ५ प्रतिशत तथा २ प्रतिशत रिजर्व वैंक के पास जमा कराना आवश्यक है। रिजर्व वैंक इन सब का निरीक्षण कर सकता है तथा इन से कई विवरण प्राप्त कर सकता है। अब यह आशा की जाती है कि रिजर्व वैंक को इन सब अधिकारों के मिल जाने से देश की वैंकिंग व्यवस्था में काफी सुधार हो जायगा।

४. *रिजर्व वैंक तथा स्वदेशी वैंकर*—स्वदेशी वैंकर

भारतीय मुद्रा बाजार का एक अत्यन्त आवश्यक अंग है। भारतीय ग्रामीण साख व्यवस्था में इन का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। इसीलिये रिजर्व बैंक ने सन् १६३७ में इन्हें नियम बद्ध करने के लिये एक योजना घुमाई, जिसमें रिजर्व बैंक ने निम्नलिखित सुझाव दिये थे :—

(१) रिजर्व बैंक से सीधा सम्बन्ध स्थापित करने के पूर्व उनको अपनी बैंकिंग क्रियाओं को भारतीय कम्पनी विधान की धारा २७७ (क) तक ही सीमित कर लेना चाहिये। अर्थात बैंकिंग के अतिरिक्त दूसरे कार्यों को बन्द कर देना चाहिये।

(२) स्वदेशी बैंकरों को अपने व्यापार का स्वरूप एवं कार्य संयुक्त पूंजी वाले बैंकों के समान ही रखना चाहिये तथा इनको अपनी जमायें अधिक से अधिक बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये।

(३) स्वदेशी बैंकर जिनकी पूंजी २ लाख रुपये है, वे उसे पांच वर्ष के भीतर ५ लाख रुपये कर लेवें, तो रिजर्व बैंक के पास अपने आपको अनुसूचित कराने के लिये आवेदन भेजना चाहिये।

(४) उनकी जमायें उनकी पूंजी से पांच गुनी अधिक हो जाने पर उनका कुछ प्रतिशत रिजर्व बैंक के पास जमा रखना चाहिये।

(५) उनको अपने बहीखातों का अधिकृत अंकेक्षकों द्वारा अंकेक्षण कराना चाहिये तथा समय समय पर अपने कार्यों का निरीक्षण रिजर्व बैंक से कराने को तत्पर होना चाहिए।

(६) दूसरे अनुसूचित बैंकों की भांति इनको भी

रिजर्व बैंक के पास अपने साप्ताहिक विवरण भेजने चाहिये तथा समय समय पर उन्हें प्रकाशित कराना चाहिये।

उपर्युक्त बातों के मान लेने पर रिजर्व बैंक ने स्वदेशी बैंकरों को वे सब सुविधायें देने का आश्वासन दिया जो वह अब तक अनसूचित बैंकों को दे रहा है। किन्तु स्वदेशी बैंकरों को ये बातें मान्य न होने से इस योजना का कोई परिणाम न निकला। बाद में सन् १९४१ में भी एक योजना घुमाई गई किन्तु वह भी व्यर्थ रही। अब १९४९ के बैंकिंग विधान के बन जाने तथा रिजर्व बैंक के राष्ट्रीयकरण हो जाने के बाद यह आशा की जाती है कि रिजर्व बैंक किसी भी तरह इनसे अपना सम्बन्ध बढ़ा कर ग्रामीण साख व्यवस्था के इस अत्यन्त उपयोगी अंग को उन्नतिशील बनाकर देश के हित में अपना योग देगा।

रिजर्व बैंक और कृषि साख व्यवस्था—भारत में कृषि की महत्ता को देखते हुये रिजर्व बैंक आफ़ इण्डिया के विधान में दिये गये बैंक के कार्यों में कृषि साख को सुधारने के कार्यों का भी समावेष किया गया है। इसके लिये रिजर्व बैंक ने एक अलग कृषि साख विभाग (Agricultural Credit Department) खोल रखा है, जिसके विषयमें हम पहिले विस्तारपूर्वक समझा आये हैं। रिजर्व बैंक ने १९३७ ई० में स्वदेशी बैंकरों की उन्नति के लिये, जो योजना घुमाई थी उसी में सहकारी आन्दोलन के सम्बन्ध में उसने बड़े ज़ोरदार शब्दों में उन समस्त सहकारी समितियों में पुनर्निर्माण का सुझाव इन शब्दों में दिया था, "उचित मात्रा से अधिक ऋण को सन्तुलित करके लम्बी अवधि वाली ऋण संस्थाओं को सौंप कर, सहकारी साख समितियों को भविष्य में अपने आपको फसल सम्बन्धी

ऋणों तक सीमित कर लेना चाहिये। ये ऋण फसल पर चुकाये जा सकें अथवा ये सीमित मात्रा में अन्तर्वर्ती ऋण (Inter-changeable Loans) हों। इस वात का प्रयत्न किया जावे कि इन समितियों के कार्यों को विस्तृत कर दिया जावे, जिससे उनके कार्य-क्षेत्र में कृषक का सम्पूर्ण जीवन आ जावे। दूसरे शब्दों में ये वहुअर्थी समितियां (Multi-purpose Societies) वन जावें। ऋण देने वाली संस्था के दो रूप हों— ७ या ९ मील के घेरे में वैंकिंग संघ तथा प्रान्तीय सहकारी वैंक। इस के अतिरिक्त व्यवसाय पर तथा वैंकिंग सिद्धान्तों पर सूक्ष्म दृष्टि रखना, उच्च कोटि के वैंकिंग ज्ञान वाले कर्मचारी रखना आदि कुछ अन्य भी ऐसी सूचनायें थीं, जिनमें सुधार करने की तुरन्त आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया था।"†

१२ जून, १९३९ की एक विज्ञप्ति में रिजर्व वैंक ने व्यापारिक वैंकों तथा सहकारी वैंकों में किसी प्रकार का अन्तर मानने से इनकार कर दिया, क्योंकि व्यापारिक वैंक व्यापार की और उद्योग-धन्धों की आवश्यकता के लिये ऋण देते थे, जव कि सहकारी वैंक कृषि कार्यों के लिये। इसके अनुसार दोनों की ही स्थिरता के लिये धन के उपयोग में सुरक्षा तथा तरलता का होना आवश्[illegible] था।

रिजर्व वैंक ने अपने सन् १९३९ [illegible] पत्र के अनुसार सरकारी अधिकार पत्रों पर ९० दिन तक कार्य [illegible] के ऋण देना आरम्भ कर दिया। वैंक ने कुछ नियंत्रणों के [illegible] अच्छे वैंकों तथा सहकारी समितियों के ऋण-पत्रों पर भी [illegible] सहकारी वैंकों को ऋण देने की व्यवस्था की। आजकल यह [illegible] वैंक सहकारिता की गति-विधि वताते हुये कुछ उपयोगी

† मुरंजन-माडर्न वैंकिंग इन इण्डिया, पृष्ठ २९२–९३।

पुस्तकें भी प्रकाशित करता है। किन्तु दुःख इस बात का है कि भूमि बन्धक बैंक (Land Mortgage Banks) जो किसान की दीर्घकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, रिजर्व बैंक से अब तक किसी प्रकार का लाभ नहीं उठा पाये। इसके लिये रिजर्व बैंक यह कहता है कि यदि भूमि बन्धक बैंक की पूंजी की वापसी तथा व्याज के भुगतान होने पर सरकार पूंजी व व्याज देने का दायित्व ले ले, तो वह उस भूमि बन्धक बैंक को उचित जमानत पर उधार देने या उस बैंक के ऋण-पत्रों की जमानत पर उधार देने की सुविधा दे सकता है। किन्तु सरकार द्वारा इस प्रकार के दायित्व को स्वीकार करना असम्भव है। कुछ भी हो, अब राष्ट्रीयकरण के पश्चात् रिजर्व बैंक अपना दृष्टिकोण बदलेगा, ऐसी आशा है।

रिजर्व बैंक द्वारा साख नियंत्रण

रिजर्व बैंक का प्रमुख उद्देश्य ही भारत में मुद्रा तथा साख का नियंत्रण करना है। अब हमें यह देखना होगा कि रिजर्व बैंक अपना साख नियंत्रण का कार्य किस प्रकार करता है।

बैंक दर—भारत में साख नियंत्रण के हेतु बैंक दर का उपयोग सर्वप्रथम इम्पीरियल बैंक ने किया था। किन्तु वह इस कार्य में सफल न हो सका। उसके कारण निम्नलिखित हैं:—

(१) इम्पीरियल बैंक दूसरे संयुक्त पूंजी वाले बैंकों के साथ सहयोगपूर्ण वर्ताव न कर स्पर्धापूर्ण वर्ताव करता था।

(२) भारतीय मुद्रा बाजार के विभिन्न अंगों में भी पारस्परिक सहयोग का अभाव था।

(३) विनिमय बैंकों का विदेशी विनिमय बाजारों से सीधा सम्बन्ध होने के कारण वे अपनी मुद्रा सम्बन्धी

आवश्यकताओं के लिये इम्पीरियल बैंक पर निर्भर न रह कर इन्हें विदेशी बाज़ारों में ही पूरी कर लिया करते थे।

(४) साख व मुद्रा के नियन्त्रण के लिये देश में दोहरी पद्धति का अनुसरण किया जाता था। मुद्रा के नियन्त्रण का कार्य सरकार के हाथ में था और कि साख नियन्त्रण का कार्य इम्पीरियल बैंक के हाथ में।

(५) इनके अतिरिक्त इम्पीरियल बैंक इस दर का उपयोग देश हित की दृष्टि से न कर स्वयं लाभ प्रेरित होकर करता था।

रिज़र्व बैंक के बन जाने के बाद मुद्रा व साख दोनों का नियन्त्रण रिजर्व बैंक के हाथ में आ गया। इसकी बैंक दर भी ऐसी है, जिस पर वह प्रथम श्रेणी की प्रतिभूतियों पर ऋण देने तथा प्रथम श्रेणी की बिलों की कटौती व पुनर्कटौती करने को तैयार रहता है। इसने अपनी बैंक दर प्रारम्भ से ही ३ प्रतिशत रखी और वह युद्ध के दिनों में भी इसको ३ प्रतिशत पर ही टिकाये रखने में सफल रहा। नवम्बर १९५१ में, इसने देश में साख की वृद्धि को रोकने के हेतु इस दर को ३ प्रतिशत से बढ़ाकर ३½ प्रतिशत कर दिया। यह कार्य मुद्रा प्रसार के विरोधी उपाय के रूप में देश के मूल्य स्तर को नीचा लाने की दृष्टि से किया गया था और हर्ष के साथ कहना पड़ता है कि रिजर्व बैंक इसमें पूर्ण सफल हुआ।

यहां यह स्मरण रहे कि रिजर्व बैंक की बैंक दर साख नियन्त्रण के लिये एक प्रभावशाली अस्त्र होगा या नहीं, इस बात की जांच करने का यह प्रथम ही अवसर था और बैंक इसमें बाजी ले गया। हां, यह अवश्य है कि लोगों को ऐसी

आशा न थी, क्योंकि भारतीय बैंक साख सृजन के लिये केन्द्रीय बैंक पर निर्भर नहीं रहते। उनको अपनी जमा का बहुत कम अंश रिजर्व बैंक के पास जमा रखना होता है, जब कि साख नियन्त्रण के लिये इन बातों का होना आवश्यक है।

(२) खुले बाज़ार की क्रियायें—अपनी बैंक दर को प्रभावशाली बनाने के लिये रिजर्व बैंक खुले बाज़ार की क्रियायें भी कर सकता है। अर्थात् यह स्टाक विनिमय बाज़ार में प्रमाणित प्रतिभूतियों (Approved Securities) का क्रय-विक्रय भी कर सकता है। परन्तु उसकी यह क्रय-विक्रय करने की शक्ति सीमित है। इसके निम्नलिखित कारण हैं:—

(१) इस कार्य के लिये इसके साधन पर्याप्त नहीं है। इसकी चुकता पूंजी और सुरक्षित कोष दोनों मिलाकर केवल १० करोड़ रुपया है। सरकारी जमाओं तथा बैंकों की जमाओं पर निर्भर नहीं रहा जा सकता, क्योंकि ये सदैव बदलती रहती हैं।

(२) रिजर्व बैंक केवल कुछ मान्य प्रतिभूतियों का ही क्रय-विक्रय कर सकता है अन्य का नहीं।

(३) देश में बिलों का उपयोग बहुत कम होता है और उसके लिए यहां कोई बिल बाज़ार भी नहीं है।

(४) यहां पर विदेशों की भांति सुव्यवस्थित स्टाक विनिमय बाज़ार भी नहीं हैं, और जो हैं वे भी केवल बम्बई और कलकत्ते में। इनके सदस्यों की कुल संख्या लंदन और न्यूयार्क के स्टाक विनिमय बाज़ारों के सदस्यों की तुलना में नहीं के समान हैं। अतः इनमें क्रय-विक्रय करने का इतना प्रभाव नहीं पड़ पाता।

(३) वैंकों का नकदी कोष—रिजर्व बैंक विधान की धारा ४२ के अनुसार प्रत्येक अनुसूचित बैंक को रिजर्व बैंक के पास अपनी याचित तथा कालदेय (Demand & Time Liabilities) का क्रमशः ५ प्रतिशत व २ प्रतिशत जमा रखना आवश्यक है। अव तो १६४६ के बैंकिंग विधान की धारा १६ के अनुसार अन्य बैंकों को भी रिजर्व बैंक के पास इसी प्रकार की नकदी जमा रखना आवश्यक है।

इस तरह रिजर्व बैंक को ऊपर लिखी दोनों धाराओं के अन्तर्गत दूसरे बैंकों की जमा राशि पर नियन्त्रण करने का अधिकार तो है। किन्तु यह अधिकार अपूर्ण है। रिजर्व बैंक को अपने अनुसूचित बैंकों अथवा अन्य बैंकों की जमाओं की प्रतिशत वदलने का अधिकार नहीं है, जिसका होना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि बैंक अपनी जमा नक़दी के आधार पर ही तो साख निर्माण करते हैं। यदि केन्द्रीय बैंक के पास जमा की जाने वाली नक़दी की मात्रा वढ़ा दी जाय तो बैंकों के पास की नक़दी कम हो जायगी और फिर वह कम साख उत्पन्न कर पावेंगे। इसके विपरीत यदि बैंक के पास जमा नक़दी की मात्रा कम कर दी जाय, तो बैंकों की नकदी वढ़ जावेगी और वे अधिक साख सृजन कर सकेंगे।

(४) अन्य उपाय—इनके अतिरिक्त रिजर्व बैंक साख नियन्त्रण के अन्य उपाय, जैसे सीधी कार्यवाही करना, साख अनुभाजन करना, नैतिक प्रभाव डालना, तथा जनता से सीधे लेन-देन करना आदि, भी उपयोग में ला सकता है। किन्तु इनकी न तो यहां आवश्तकता ही पड़ी और न रिजर्व बैंक इनको उपयोग में ही लाया। फिर भी इन अधिकारों के होने से रिजर्व बैंक की दूसरे बैंकों पर पूरी धाक है और वे रिजर्व

बैंक की निर्धारित नीति के विपरीत जाने का साहस ही नहीं कर पाते।

अब १९४९ के बैंकिंग कम्पनी विधान के अन्तर्गत रिजर्व बैंक को कई और महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त हो गये हैं, जिनके कारण यह साख नियन्त्रण में पहिले से अधिक समर्थ हो गया है। इन अधिकारों में किसी भी बैंक को अरक्षित ऋण देने से रोकना अथवा उन्हें वापिस लेने का आदेश देना; उसकी ऋण-नीति निर्धारित करना, किन्हीं अवस्थाओं में उसके अनुमति-पत्र को रद्द करना, नये कार्यालय खोलने की अनुमति न देना, उसका निरीक्षण करना तथा असन्तोषजनक कार्य प्रणाली होने पर कार्य बन्द करने का आदेश देना आदि बातें सम्मिलित हैं।

रिजर्व बैंक की सफलताएं

यह कहना अनुचित न होगा कि रिजर्व बैंक अपने प्रारम्भिक जीवन से ही सही मार्ग का अनुसरण कर रहा है और इसी कारण वह कई बातों में सफल उतरा है। इसके सफल कार्य इस प्रकार हैं।

(१) इसकी स्थापना के पूर्व जो बैंक दर ७ से ६ प्रतिशत तक घूमा करती थी, वह इसके द्वारा सन् १९३५ से ३ प्रतिशत कर दी गई। यहां तक कि युद्ध के दिनों में भी इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया। इसको तो अभी नवम्बर, १९५१ में बढ़ाकर ३½ प्रतिशत किया गया था और वह भी मुद्रा प्रसार के कुपरिणामों से बचने के लिये।

(२) इसके द्वारा व्याज दरों में होने वाली मौसमी ऊंच नीच (Seasonal Fluctuations) भी दूर कर दी गई है।

(३) इसने सरकारों, अनुसूचित बैंकों, सहकारी समितियों तथा जनता को द्रव्य के स्थानान्तरण (Remittance) की सस्ती दर पर सुविधायें प्रदान कीं जिसका इन सबने पूरा पूरा लाभ उठाया।

(४) इसने कृषि तथा अन्य उद्योगों के लिये दीर्घकालीन ऋणों की व्यवस्था करने के उद्देश्य से कृषि-अर्थ प्रमंडल (Agricultural Finance Corporation) तथा औद्योगिक-अर्थ-प्रमंडल (Industrial Finance Corporation) की स्थापना करवाई, जो देश की उन्नति के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

(५) इसने अब तक जन ऋण (Public Debt) के संचालन में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। इसके अतिरिक्त इसने नीची दरों पर केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों के ऋण-पत्र बेचने की भी व्यवस्था की है।

(६) बैंक रुपये की विनिमय दर को संकटकाल में भी १ शि० ६ पेंस पर ही स्थायी रखने में सफल सिद्ध हुआ है।

(७) इसने देश में ग्रामीण साख व्यवस्था को उन्नत करने में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसने इस कार्य के लिये एक अलग विभाग ग्रामीण साख विभाग (Agricultural Credit Department) भी खोल रखा है, जो समय समय पर सरकार को सहकारिता के सम्बन्ध में परामर्श देता रहता है।

(८) बैंक ने अनुसंधान व अंक संकलन का एक विभाग (Research & Statistics Department) खोल रखा है, जिसमें बड़े योग्य तथा अनुभवी व्यक्ति कार्य कर रहे हैं। यह विभाग देश की आर्थिक व बैंकिंग सम्बन्धी बड़े उपयोगी

अंक प्रकाशित करता है। आज कल यही विभाग एक मासिक पत्रिका, जो रिजर्व बैंक आफ इण्डिया बलेटिन (Reserve Bank of India Bulletin) कहलाता है, प्रकाशित करता है। मुद्रा व बैंकिंग सम्बन्धी बातों पर प्रकाश डालने के लिये इस प्रकार का कोई दूसरा प्रकाशन भारत में नहीं निकलता।

(६) १९४८ व १९४९ में जब भारतीय मुद्रा बाजार पर आर्थिक संकट आया, तो इसने बैंकों तथा सहकारी समितियों को बड़ी मात्रा में ऋण देकर संकट टालने का पूरा प्रयत्न किया।

बैंक की असफलतायें

(१a) बैंक की स्थापना के समय बैंक से यह आशा की जाती थी कि यह मुद्रा बाजार के विभिन्न अंगों में सामंजस्य उत्पन्न कर इस को सुसंगठित तथा सुव्यवस्थित बनायेगा। किन्तु अभी तक रिजर्व बैंक ने इस सम्बन्ध में कोई रचनात्मक कदम नहीं उठाया।

(१b) सुसंगठित मुद्रा बाजार के न होने से बैंक दर की नीति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और साख नियन्त्रण नहीं हो पाता।

(२) रिजर्व बैंक अब तक स्वदेशी बैंकों को अपने नियन्त्रण में लाकर उनकी कार्य प्रणाली में कोई अन्तर नहीं ला सका। आज भी वे वहीं हैं जहां पहिले थे। वैसे तो इस ने १९३७ ई० में इन के सुधारों के लिये एक योजना अवश्य बनाई थी, किन्तु इसने इतनी शर्तें कुछ कठोर रखीं इसलिये वे सब प्रयत्न निष्फल रहे।

(३) यह अब तक भारत में बिल बाज़ार स्थापित करने में असफल ही रहा है। इससे भारतीय बैंकों को अपनी पूंजी के लाभपूर्ण विनियोग करने में बड़ी कठिनाई होती है। साथ ही यह भारतीय संयुक्त पूंजी वाले बैंकों को विदेशी विनिमय के कार्य में उचित स्थान दिलवाने में भी असमर्थ रहा है।

(४) यह भारतीय मुद्रा के आन्तरिक मूल्य में स्थिरता बनाये रखने में असमर्थ रहा है जो कि इस के एक केन्द्रीय बैंक होने की हैसियत से इसके लिये एक अत्यन्त आवश्यक कार्य था। हां यह आवश्यक है कि इस के लिये बैंक उत्तरदायी न होकर विदेशी प्रभुत्व उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिये।

(५) इसका विधान त्रुटिपूर्ण होने से युद्ध के दिनों में देश में असीमित मुद्रा प्रसार करने के लिये स्टर्लिंग प्रतिभूतियों का बेरोक टोक उपयोग किया गया।

(६) भारत सरीखे कृषि प्रधान देश के केन्द्रीय बैंक होने के नाते, इसको कृषि साख व्यवस्था की समुचित उन्नति ही अपना मुख्य ध्येय बनाना चाहिये था। किन्तु इसने इस दिशा में जो प्रयत्न किये, वे पर्याप्त नहीं कहे जा सकते।

बैंक सम्बन्धी सुधारों के सुझाव

उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट है कि बैंक को अपनी कार्य विधि तथा नियमों में सुधार करना आवश्यक है। इसके लिये उसे निम्न सुझाव देना होगा :—

(१) बैंक को अपनी बैंक दर नीति तथा खुले बाजार की क्रियाओं को प्रभावशाली बनाने के लिये भारतीय मुद्रा बाजार को एक सुसंगठित तथा सुव्यवस्थित रूप देना चाहिये। यह मुद्रा बाजार पहिले तो बड़ा छोटा और वह भी दो भागों में

विभाजित है। मुद्रा बाजार के विभिन्न अंगों को एक ही जगह पारस्परिक सहयोग से कार्य करने को प्रेरित करना चाहिये। वे लोग आपस में मिल जुल कर देश के हित में कार्य करें इस के लिये रिजर्व बैंक को कुछ नियम बना देना चाहिये जिन का पालन न करने पर कठोर कार्यवाही करनी चाहिये।

(२) रिजर्व बैंक को बिलों की पुनर्कटौती की दर बैंक दर स नीची रखनी चाहिये, जिस से बिलों पर उधार लेने की प्रवृत्ति बढ़े और देश में बिलों का प्रयोग अधिकाधिक हो। इससे देश में एक बिल बाजार स्थापित होने में भी सहायता मिलेगी।

(३) स्वदेशी बैंकरों को अनुसूचित बैंकों की भांति ऋण की, पुनर्कटौती की तथा द्रव्य स्थानान्तरण की सस्ती और सुलभ सुविधायें देनी चाहिये। स्वदेशी बैंकरों को देश की ग्रामीण साख व्यवस्था का एक अत्यावश्यक अंग मानते हुये इन से पूरा सम्पर्क बढ़ा कर इनकी कार्य विधि में आवश्यक परिवर्तन व सुधार करना चाहिये।

(४) अनुसूचित बैंकों से प्राप्त साप्ताहिक विवरणों तथा अन्य सूचनाओं से रिजर्व बैंक को इनकी स्थिति का पता लगाते रहना चाहिये। जब किसी बैंक की दशा अधिक गिरती दिखाई दे, इसे अपने अधिकार को काम में लेते हुये उस बैंक को आगे जमायें लेने से रोक देना चाहिये। इस से मरते समय रोग पहचानने की नौबत नहीं आयेगी।

(५) रिजर्व बैंक को देश में नोट प्रसारित करने का एकाधिकार तो है, किन्तु उसको कई सरकारी बन्धनों में कार्य करना पड़ता है। ये बन्धन हटाकर इसको पूरी स्वतन्त्रता से

बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के कार्य करने का अवसर देना चाहिये ताकि यह देश के हित में अपना योग दे सके।

(६) देश की वास्तविक सेवा की दृष्टि से, भारत जैसे कृषि प्रधान देश के केन्द्रीय बैंक होने के नाते रिजर्व बैंक को देश की ग्रामीण साख को पूरी तरह व्यवस्थित करना चाहिये। इस कार्य में रिजर्व बैंक को आस्ट्रेलिया के कामनवैल्थ बैंक तथा न्यूजीलैंड के रिजर्व बैंक से प्रेरणा लेनी चाहिये।

(७) देश में साख नियन्त्रण के लिये सीधी कार्यवाही, नैतिक प्रभाव आदि के उपायों को अपनाना चाहिये। अमरीका की भांति यहां भी रिजर्व बैंक को बैंकों की नकदी जमाओं की प्रतिशत में परिवर्तन करने का अधिकार दे दिया जाना चाहिये।

रिजर्व बैंक का स्थिति विवरण

रिजर्व बैंक प्रति सप्ताह अपनी स्थिति का विवरण (Statement of Affairs) प्रकाशित करता रहता है। यह विवरण दो भागों में विभाजित होता है। प्रथम भाग में मुद्रा प्रकाशन विभाग (Issue Department) के और द्वितीय भाग में बैंकिंग विभाग (Banking Department) के पूंजी और ऋण के आंकड़े दिखलाये जाते हैं। समय समय पर प्रसारित कागजी नोटों की संख्या, रिजर्व बैंक की आर्थिक स्थिति आदि के बारे में जान सकते हैं। यह विवरण भारत सरकार की पत्रिका (Gazette) के अतिरिक्त देश के सब प्रमुख समाचार पत्रों में प्रकाशित किया जाता है। अगले पृष्ठों पर हम रिजर्व बैंक का एक साप्ताहिक विवरण देते हैं।

RESERVE BANK OF INDIA

Statement of Affairs for the week ended 6th March, 1953.

ISSUE DEPARTMENT

			(In lakhs of Rs.) Week Ended 6-3-53
Liabilities :			
Notes in Banking Department	...	...	13,34
Notes in Circulation	...	...	11,36,11
Total Notes Issued	...	...	11,49,46
Assets :			
'A'–Gold Coin & Bullion :			
(a) In India	...	...	40,01
(b) Outside India	...	...	—
Sterling Securities	...	...	578,15
Total of 'A'	...	...	618,16
'B' Rupee Coin	...	...	81,43
Rupee Securities	...	...	449,86
Total			11,49,46

Ratio of total of 'A' to liabilities 53·779 per cent.

BANKING DEPARTMENT

Liabilities :			
Capital-Paid-up	...	...	5,00
Reserve Fund	...	...	5,00
Deposits—			
(a) Central Government	...	...	139,72
(b) Other Governments	...	...	10,47
(c) Banks	...	...	43,49
(d) Others	...	...	64,95
Bills Payable	...	...	3,54
Other Liabilities	...	...	27,00
Total	...	...	299,20

Assets :

Notes	...	...	13,34
Rupee Coin	...	...	11
Subsidiary Coin	...	...	3
Bills Discounted :			
Internal	...	...	22
External	...	...	—
Government Treasury Bills	...	...	10,54
Balances held abroad	...	...	146,22
Loans & Advances to Govt.	...	...	3,30
Other Loans & Advances	...	...	17,54
Investments	...	...	100,30
Other Assets	...	...	7,58
Total	...	...	299,20

(1) The item "Other Loans and Advances" includes Rs, 3,24,18,000 advances to schedaled banks against usance bills under section 17 (4) (c) of the Reserve Bank of India Act as against Rs. 1·74 crores last week.

(2) The total amount of advances availed by scheduled banks against usance bills under section 17 (4) (c) of the Reserve Bank of India Act since 1st January, 1953, is Rs. 5·24 crores as against Rs. 1·74 crores last week.

SCHEDULED BANKS IN INDIA

Statement of affairs for the week ended 6th March 1953.

(In Lakhs of Rupees)

Demand Liabilities (B)	...	...	5,26,48 (11,91)
Time Liabilities (B)	...	...	3,14,81 (2,01)
Borrowings from Reserve Bank (C)	...	...	9,38 (8,24)
Borrowings from Imperial Bank (D)	...	...	7,76
Cash	...	...	33,35
Balances with Reserve Bank		...	41,62
Balances with other banks in Current account	...	...	10,77
Money at call and short notice		...	16,38
Investments*	...	...	3,00,90
Advances, including inland bills purchased and discounted		...	5,10,84

A—Excludes borrowings from the Reserve Bank and with effect from the 18th April 1952 also those from the Imperial Bank.

C—The figures in brackets [ ] represent borrowings from the Reserve Bank against usance bills and/or promissory notes.

D—Figures not available prior to the 18th april 1952.

*—Investments are stated at book value in India in Central and State Government Securities including Treasury Bills and Treasury Deposit receipts.

अभ्यास-प्रश्न

१—रिजर्व बैंक की स्थापना कब और क्यों हुई ? इसकी पूंजी और व्यवस्था का उल्लेख कीजिये।

२—रिजर्व बैंक के कार्यों का संक्षेप में वर्णन करिये।

३—रिजर्व बैंक केन्द्रीय बैंक के क्या क्या कार्य करता है ? विस्तार पूर्वक लिखिये।

४—रिजर्व बैंक का राष्ट्रीय करण कब और क्यों किया गया ? इसके हिताहित के बारे में लिखिये।

५—रिजर्व बैंक के विभिर्न्न विभागों का वर्णन करिये तथा इसके ग्रामीण साख विभाग पर एक टिप्पणी लिखिये।

६—रिजर्व बैंक साख नियन्त्रण किस प्रकार करता है तथा वह इस कार्य में कहां तक सफल हुआ है ? विस्तार से लिखिये।

(७) रिजर्व बैंक और इम्पीरियल बैंक के बीच क्या सम्बन्ध है ? इम्पीरियल बैंक का इतना महत्व इस सम्बन्ध के कारण ही है। क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? यदि हां तो क्यों ?

(८) रिजर्व बैंक के राष्ट्रीय करण तथा १६४८ के बैंकिंग विधान के कारण रिजर्व बैंक को क्या क्या अधिकार प्राप्त हो गये ? संक्षेप में बतलाइये।

(६) रिजर्व बैंक का इनसे क्या सम्बन्ध है—

(१) अनुसूचित बैंक (२) अन-अनुसूचित बैंक (३) स्वदेशी बैंक (४) सहकारी समितियां।

(१०) सिद्ध कीजिये कि रिजर्व बैंक की स्थापना देश के हित में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई।

(११) रिजर्व बैंक अब तक किन किन कार्यों में असफल रहा ? उसको इसके लिये क्या प्रयत्न करना चाहिये ?

आठवां अध्याय

इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया

बैंकिंग सुविधाओं को एक विस्तृत रूप देने तथा मुद्रा बाजार के विभिन्न सदस्यों के बीच एक पारस्परिक मेल जोल व सामंजस्य उत्पन्न करने के लिये एक केन्द्रीय बैंक की आवश्यकता कई बार अनुभव की गई। इसे स्थापित करने के लिये अनेक योजनायें भी तैयार की गई किन्तु सन् १९२० के पहिले सब प्रयत्न निष्फल रहे। १९२० ई० में एक इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया, विधान पास किया गया, जिसके अन्तर्गत इम्पीरियल बैंक की १९२१ ई० में स्थापना हुई। यह बैंक बम्बई, बंगाल और मद्रास के प्रेसीडेन्सी बैंकों के एकीकरण का परिणाम है। इस बैंक का अपना एक अलग विधान होने के कारण, इसको इसके नाम के आगे सीमित (Limited) शब्द लगाने से मुक्त कर दिया गया। १९३४ ई० में रिजर्व बैंक की स्थापना होने से पूर्व यह बैंक केन्द्रीय बैंक तथा व्यापारिक बैंक दोनों के कार्य करता था। किन्तु इसके पश्चात अब यह केवल एक व्यापारिक बैंक ही रह गया है।

बैंक की पूंजी तथा लाभांश—बैंक की पूंजी सम्बन्धी पूरा ज्ञान कराने के लिये अगले पृष्ठ पर बैंक का एक सामाहिक

IMPERIAL BANK OF INDIA

Statement of affairs for the week ended 30 Jan., 1953.

(In 000's of Rupees).

LIABILITIES :

Capital, Authorised & Subscribed		...	11,25,00
Capital Paid-up	...	...	5,62,50
Reserve Funds	...	...	6,35,00
Deposits, and other Accounts		...	207,95,36
Borrowing from other Banks, Agents etc.	...	...	60,41
Bills Payable	...	...	2,79,23
Bills for Collection as per contra	...	...	50,74
Acceptances etc. for constituents as per contra	...	...	47
Other Liabilities including Inter-office Adjustment	...	...	3,03,70
Total		...	226,87,41

ASSETS :

Cash in hand and with Reserve Bank of India	...	...	12,49,83
Balance with other Banks	...	...	4,34,86
Money at call and short notice		...	89,23
Government and other Trustee Securities	...	...	76,13,95
Other Authorised Investments		...	10,88,71
Loans, Advances cash credits & Overdrafts	...	...	111,07,51
Bills discounted and Purchased		...	7,04,25
Bills for collection as per contra	...	...	50,74
Constituents Liabilities as per contra	...	...	47
Dead Stock	...	...	1,64,16
Other Assets including Inter-office Adjustments	...	...	2,15,70
Total		...	226,87,41

विवरण दिया गया है। इससे स्पष्ट है कि बैंक की कुल अधिकृत पूंजी ११३/४ करोड़ रुपये है, जो ५००) रुपये के अंशों में विभाजित है। इस में से आधी रकम तो चुकता पूंजी के रूप में प्राप्त हो चुकी और आधी पूंजी रक्षित दायित्व के रूप में छोड़ दी गई है। बैंक के पास अब तक इसकी चुकता पूंजी से अधिक अर्थात् ६ करोड़ ३५ लाख रुपये का संचित कोष इकट्ठा हो चुका है।

जहां तक लाभांश का प्रश्न है, बैंक प्रारम्भ से ही काफी लाभ प्राप्त होने से लाभांश की दर काफी ऊंची रही है। १६३१ तक यह दर १६ प्रतिशत थी, बाद में १६४५ तक १२ प्रतिशत फिर १६४६ तक १४ प्रतिशत और अब यह फिर १६ प्रतिशत हो गई है। इतनी ऊंची दर के कारण ही इसके पूर्ण चुकता ५००) रुपये के अंशों का बाजार बहुत ऊंचा है। ५ फर्वरी, १६५३ का अन्तिम भाव १८१२॥) का था। इससे बैंक की सुदृढ़ आर्थिक स्थिति और बाजार में सुप्रसिद्धि सिद्ध होती है।

\(, बैंक का प्रबन्ध—इस के प्रबन्ध के लिये सर्व प्रथम तीन स्थानीन बोर्ड हैं—बम्बई, बंगाल और मद्रास। कार्य को भली भांति चलाने के लिये और स्थानीय बोर्डों में सम्बन्ध स्थापित करने के लिये एक केन्द्रीय बोर्ड की स्थापना की गई। स्थानीय बोर्ड के सदस्यों का चुनाव उस क्षेत्र के रजिस्टर में लिखे हुये अंशधारी करते हैं। प्रत्येक स्थानीय बोर्ड में एक सभापति, एक उपसभापति, एक मन्त्री और कम से कम तीन सदस्य होते हैं। यह बोर्ड केन्द्रीय बोर्ड के आदेशानुसार कार्य करते हैं।

केन्द्रीय बोर्ड में निम्नलिखित संचालक होते हैं :—

(क) स्थानीय बोर्डों के सभापति, उपसभापति तथा मन्त्री गण ९

(ख) प्रत्येक स्थानीय बोर्ड के सदस्यों में से चुना हुआ एक सदस्य ३

(ग) केन्द्रीय बोर्ड द्वारा निर्वाचित प्रबन्ध संचालक तथा उप-प्रबन्ध संचालक २

(घ) केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत किये हुये सदस्य २

कुल सदस्य १६

इनके अतिरिक्त सरकार एक सरकारी अफसर को भी मनोनीत कर के बोर्ड की बैठकों में जाने का अधिकार दे सकती है परन्तु उसे मत देने का अधिकार नहीं होता। भारत सरकार को बैंक के हिसाब की जांच करने के लिये अंकेक्षक (Auditor) नियुक्त करने का भी अधिकार है। केन्द्रीय बोर्ड की बैठकों में स्थानीय बोर्डों के मन्त्री, उपप्रबन्ध संचालक तथा सरकारी अधिकारी भी भाग ले सकते हैं, परन्तु उन्हें भी मत देने का अधिकार नहीं होता। केन्द्रीय बोर्ड की एक छोटी सी प्रबन्धकारिणी समिति बना दी गई है, जो बोर्ड के कुछ कार्यों को पूरा करती है। केन्द्रीय बोर्ड की बैठकें बारी बारी से कलकत्ता तथा बम्बई में होती हैं। इम्पीरियल बैंक की एक शाखा लन्दन में भी है।

१९३४ के पहले भी बैंक का प्रबन्ध एक केन्द्रीय बोर्ड द्वारा ही होता था, जिसमें १६ शासक थे, जिनमें से दो प्रबन्ध शासक, चार गैर सरकारी अधिकारी, एक करेन्सी कण्ट्रोलर और तीन स्थानीय बोर्डों के मन्त्री, गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त

किये जाते थे। इसके अतिरिक्त सरकार को बैंक के हिसाब की जांच के लिये अंकेक्षक चुनने का भी अधिकार था। सरकार की अर्थनीति तथा सरकार के फन्डों की सुरक्षा के लिये गवर्नर जनरल को इम्पीरियल बैंक के नाम से आदेश भेजने का भी अधिकार था। इस प्रकार इम्पीरियल बैंक पर सरकार का पूरा नियंत्रण था। परन्तु सन् १९३४ में रिजर्व बैंक स्थापित हो जाने के बाद, इम्पीरियल बैंक सरकारी बैंक न रहा और सरकार के उक्त अधिकार भी समाप्त हो गये।

बैंक के कार्य सन् १९२१ के एक्ट के अनुसार इम्पीरियल बैंक निम्नलिखित कार्य कर सकता था:—

(१) सरकार का बैंक—यह सरकार के किये बैंकर का कार्य करता था। सरकार की समस्त रकम को यह बैंक बिना सूद जमा रखता था तथा बहुत से स्थानों में जहां इसकी शाखायें थीं ट्रेजरी का काम, बिना कमीशन तथा बिना खर्च किया करता था। यह जन ऋण (Public Debt) की व्यवस्था भी करता था और समय समय पर सरकारी ऋण पत्रों के बिकवाने का प्रबन्ध करता था। विदेशों में यानी लन्दन में हिन्दुस्तान की सरकार के लिये रुपये के रूप में ऋण (Rupee Loans) का प्रबन्ध करता था और इस कार्य के लिये एक स्थायी कमीशन लेता था। सरकारी बैंक होने के कारण इस पर सरकार का काफी नियंत्रण था, परन्तु रिजर्व बैंक की स्थापना के बाद, यह कार्य इससे छीन कर रिजर्व बैंक को दे दिया गया है और इस पर से सरकारी नियंत्रणों का भी अन्त हो गया है।

(२) बैंकों का बैंक—यह बैंक १९३३ तक बैंकों के बैंक का भी कार्य करता था। देश की भिन्न भिन्न बैंक इसमें अपनी

धन राशि जमा करती थीं और संकट के समय उधार भी लेती थीं। यह सभी बैंकों के लिये समाशोधन गृह (Clearing House) का कार्य करता था। भारतवर्ष में बैंकिंग-विकास के लिये इसके ऊपर एक विशेष ज़िम्मेदारी थी। इसको अपनी स्थापना के पांच वर्ष के अन्दर अन्दर १०० शाखायें खोलनी थीं, जिस कार्य को इसने बड़ी सरलता से पूरा कर दिया। ३१ मार्च १९२६ तक इसकी १०२ शाखायें खुल चुकी थीं। इस बैंक को जब मुद्रा बाज़ार में रुपये का अभाव होता था तब काग़ज़ी मुद्रा विभाग से १२ करोड़ रुपये तक का ऋण हुण्डियों अथवा बिलों की ज़मानत पर मिल सकता था। रिज़र्व बैंक स्थापित हो जाने पर यह कार्य भी इम्पीरियल बैंक से छीन कर रिज़र्व बैंक को सौंप दिया गया।

(३) व्यापारिक बैंक के कार्य—इस बैंक को उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त एक व्यापारिक बैंक के समस्त कार्यों को करने का भी अधिकार था। यह जनता से जमाएं ले सकता था तथा ट्रस्टी, सरकारी तथा अन्य प्रकार की प्रथम श्रेणी की प्रतिभूतियों, ऋण पत्रों, माल तथा माल के अधिकार पत्रों के आधार पर छः महीने की अवधि के लिये ऋण दे सकता था। यह बिलों तथा अन्य विनिमय साध्य पत्रों को लिखने, स्वीकार करने, भुनाने तथा उन्हें खरीदने व बेचने का भी कार्य करता था। यह सोने चांदी का भी क्रय विक्रय करता था और प्रतिभूतियों, आभूषणों, सोने चांदी तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुओं को सुरक्षित रखने के लिये लेने का भी कार्य करता था। परन्तु यह बैंक देश के बाहर न तो जमायें ही ले सकता था और न ऋण ही। इसको विदेशी विनिमय का कार्य करने की भी मनाही थी। यह बैंक एक स्थान से दूसरे स्थान

पर जहां इसकी शाखायें थीं रुपया भेजने की सुविधायें भी देता था।

सन् १९३४ के बाद इम्पीरियल बैंक सरकारी बैंक न रह कर केवल एक व्यापारिक बैंक रह गया। अतः बैंक के कार्यों पर जो सन् १९२१ के एक्ट के अन्तर्गत विभिन्न प्रतिबन्ध लगे हुए थे, वे हटा लिये गये और अब इम्पीरियल बैंक भारत के बाहर विदेशों से जमा प्राप्त कर सकता है और ऋण भी ले सकता है। यह विदेशी विनिमय का कार्य भी कर सकता है और सभी प्रकार के बिलों को क्रय-विक्रय कर सकता है। अब यह खेती की सहायता के लिये भी ९ महीने तक के लिये ऋण दे सकता है। १९३४ के संशोधित एक्ट के अनुसार यह निम्न कार्य कर सकता है:—

(१) यह बैंक निम्नलिखित जमानतों के आधार पर ऋण तथा नक़द साख दे सकता है:—

(क) स्थानीय सरकार अथवा सीलोन की सरकार अथवा अन्य संस्थाओं के स्टाक, ऋण पत्रों तथा ट्रस्टी सिक्योरिटियों तथा रिजर्व बैंक के अंशों पर।

(ख) केन्द्रीय सरकार द्वारा घोषित रेलवे की सिक्योरिटियों पर।

(ग) अन्य संस्थाओं, जैसे जिला अथवा म्युनिसिपल बोर्ड अथवा कमेटी द्वारा निकाले हुये या किसी सीमित दायित्व वाली कम्पनियों के ऋण पत्रों पर।

(घ) गिरवी रखे हुये माल अथवा माल के अधिकार पत्रों के आधार पर।

(ङ) स्वीकृति किये हुये बिलों के आधार पर और पाने वाले धनियों द्वारा बेचान किये गये प्रण-पत्रों के आधार

पर और दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों के अथवा फर्मों द्वारा लिखे हुये संयुक्त और पृथक प्रण पत्रों के आधार पर।

(च) सीमित दायित्व वाली कम्पनियों के पूर्ण रूप से भुगतान किये गये अंशों पर।

(२) यदि किसी ऋण के सम्बन्ध में कोई प्रण-पत्र, ऋण-पत्र, स्टाक, रसीद वाण्ड माल, माल के अधिकार पत्र तथा अन्य प्रतिभूतियां बैंक के हाथ में आ जाती हैं, तो ऋण की वापिसी न होने पर वह उन्हें बेच कर अपनी रक़म प्राप्त कर सकता है।

(३) स्थानीय सरकार की स्वीकृति से कोर्ट आफ़ वार्डस को कृषि तथा अन्य कार्यों के लिये ऋण दे सकता है और उसे व्याज सहित वसूल कर सकता है, परन्तु ऐसे ऋण कृषि कार्यों के लिये ६ महीने और अन्य कार्यों के लिये ६ महीने से अधिक के नहीं होने चाहिये।

(४) यह विनिमय बिलों और दूसरे विनिमय साध्य पत्रों को लिख, स्वीकृत भुना, क्रय और विक्रय कर सकता है।

(५) यह (क) से (ग) तक में दी हुई जमानतों में अपनी लागत लगा सकता है और उन्हें वहीं पर दी हुई अन्य प्रकार की जमानतों में बदल भी सकता है।

(६) यह मुद्रा के रूप में अथवा ऐसे ही सोना और चांदी क्रय-विक्रय कर सकता है।

(७) यह सोना-चांदी, सिक्योरिटियां, जवाहिरात, अधिकार पत्र अथवा अन्य मूल्यवान वस्तुओं को किसी भी शर्त पर धरोहर के रूप में रख सकता है।

(८) यह अपनी सम्पत्ति पर रुपया उधार ले सकता तथा अन्य बैंकिंग कार्य कर सकता है। यह जमा प्राप्त कर सकता है और जनता को उधार भी दे सकता है।

(९) यदि कोई चल अचल सम्पत्ति तथा उसके अधिकार पत्र इसके हाथ में आ जांय, तो उन्हें बेच सकता है या उन्हें अन्य प्रकार के प्रयोग में ले सकता है।

(१०) यह विदेशी बिलों को लिख तथा बेच सकता है, परन्तु यह बिल यदि कृषि सम्बन्धी है, तो नौ महीने और अन्य व्यवसाय सम्बन्धी हैं, तो छः महीने से अधिक अवधि के न होने चाहिये।

(११) यह विदेशों में देय विनिमय बिलों को लिख सकता है और साख-पत्र भी निकाल सकता है।

(१२) यह किसी सार्वजनिक कम्पनी के साख पत्रों और अंशों को कमीशन पर खरीद अथवा बेच सकता है या अपने पास रख सकता है। यह उनके मूल्य, न्याज या लाभ की बंटनी भी प्राप्त कर सकता है। यह उक्त रक़म को देश में अथवा देश के बाहर कहीं भी सार्वजनिक अथवा निजी बिलों द्वारा पहुँचा भी सकता है। यह किसी भी जायदाद की साधक (Executor) की, धरोहरी (Trurtee) की अथवा किसी अन्य स्थिति में व्यवस्था कर सकता है।

(१३) यह कमीशन पर कोई भी आढ़त का काम कर सकता है और जमानत तथा बिना जमानत किसी प्रकार की क्षति-पूर्ति का दायित्व ले सकता है।

(१४) यह अन्य कोई भी कार्य कर सकता है जो एक्ट द्वारा स्वीकृत हो और जिनके करने की आवश्यकता आ जाय।

इम्पीरियल बैंक तथा रिजर्व बैंक का सम्बन्ध—रिजर्व बैंक की स्थापना हो जाने के पश्चात् इम्पीरियल बैंक को एक समझौते के अनुसार १५ वर्ष के लिये उन सब स्थानों पर रिजर्व बैंक का एक मात्र आढ़तिया नियुक्त किया गया है, जहां इम्पीरियल बैंक की शाखा है, किन्तु रिजर्व बैंक के बैंकिंग विभाग का कोई दफ्तर नहीं था। यह बैंक रिजर्व बैंक के आढ़तिये के रूप में सरकारी कोष का कार्य और वह अन्य सरकारी कार्य, जो केन्द्रीय बैंक के आधीन है करता है। यह इस रूप में सरकारी राशि जमा करता है, सरकारी लेन देन करता है तथा सरकारी रुपया एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजता है। इन सब कार्यों के लिये इम्पीरियल बैंक को एक निर्धारित रकम कमीशन के रूप में दी जाती है। इसके अतिरिक्त रिजर्व बैंक १५ वर्ष में इम्पीरियल बैंक को अपनी उतनी शाखायें जितने कि रिजर्व बैंक के स्थापित होने के समय थीं बनाये रखने के लिये ६५ लाख रुपया देगा। इस प्रकार इम्पीरियल बैंक को अन्य व्यापारिक बैंकों की अपेक्षा कुछ अधिक अधिकार प्राप्त हैं और इस कारण इसके कार्यों पर कुछ प्रतिबन्ध लगाए गए हैं जिनके अनुसार यह निम्न कार्य नहीं कर सकता:—

(१) यह बैंक कृषि कार्यों के लिये ६ महीने तथा अन्य कार्यों के लिये ६ महीने से अधिक के लिए ऋण नहीं दे सकता। यह अपने स्वयं के अंशों पर भी ऋण नहीं दे सकता। कोर्ट आफ वार्ड्स को छोड़कर, यह अचल सम्पत्ति या उसके अधिकार पत्रों पर भी ऋण नहीं दे सकता।

(२) यह बैंक किसी व्यक्ति अथवा साझे को विनिमय साध्य पत्रों तथा अन्य अच्छा अधिकार देने वाले साख पत्रों की जमानत पर तब तक न तो नकद साख दे सकता है, न

ऋण दे सकता है और न इनको खरीद या भुना ही सकता है जब तक इन पर कम से कम दो स्वतन्त्र व्यक्तियों अथवा साझों के पृथक २ हस्ताक्षर तथा दायित्व न हों। कानून ने इम्पीरियल बैंक द्वारा व्यक्तिगत और साझेदारी के ऋणों की मात्रा को भी सीमित कर दिया है।

(२) बैंक केवल उन्हीं प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय तथा कटौती कर सकता और उनकी जमानत पर रुपया दे सकता है, जिनको ट्रस्ट ने अपने विनियोग के लिये स्वीकार कर रक्खा है।

(४) बैंक अब रिजर्व बैंक की बिना अनुमति के कोई भी नई शाखा नहीं खोल सकता।

इम्पीरियल बैंक को केन्द्रीय बैंक न बनाने के कारण

सन् १९३४ में जब रिजर्व बैंक स्थापित करने का प्रश्न उठा, तो यह भी प्रश्न आया कि इम्पीरियल बैंक को ही केन्द्रीय बैंक क्यों न बनाया जाय, परन्तु निम्न कारणों से ऐसा करना उचित नहीं समझा गया।

(१) केन्द्रीय बैंक की राष्ट्रीय दृष्टि होना आवश्यक है, तभी वह देश की भलाई कर सकता है, परन्तु इम्पीरियल बैंक की नीति इसके संचालक अधिकांश यूरोपियन होने के कारण अ-भारतीय थी। भारतीय बैंकों को यह प्रतियोगिता की दृष्टि से देखता था। यह देश की आवश्यकताओं को समझने और उनके अनुसार कार्य करने में असमर्थ था।

(२) यदि इम्पीरियल बैंक को केन्द्रीय बैंक बना दिया जाता, तो उसे अपनी अधिकाँश शाखाएं बन्द करनी पड़तीं, जिससे बैंकिंग व्यवस्था कमजोर पड़ जाती और बैंकिंग व्यवसाय को गहरा धक्का पहुंचता।

(३) इसे केन्द्रीय बैंक बनाने में इसके कार्यों में अदला

बदली करनी पड़ती, जो इसके हिस्सेदारों को पसन्द न था। सम्भव था इससे बैंक और राज्य के बीच मनमुटाव उत्पन्न हो जाता।

(४) इम्पीरियल बैंक १९३४ तक केन्द्रीय बैंक तथा व्यापारिक बैंक दोनों का ही कार्य कर रहा था। इसलिये इसके पूर्णतया केन्द्रीय बैंक बनाने पर इसकी कार्य पद्धति अधिक सुरक्षित नहीं हो सकती थी।

(५) इम्पीरियल बैंक एक मात्र लाभ कमाने के उद्देश्य से स्थापित किया गया था, किन्तु केन्द्रीय बैंक को देश के हित में लाभ का बलिदान करना पड़ता है, जो इसके द्वारा सम्भव नहीं था।

कुछ विद्वानों का कहना था कि फ्रांस में केन्द्रीय बैंक केन्द्रीय तथा व्यापारिक बैंकिग कार्य भी करता है। इस लिये इम्पीरियल बैंक भी दोनों कार्य कर सकता था। परन्तु सब देशों में एक सी स्थितियां नहीं है और यह भारत में सम्भव नहीं था।

कुछ लोगों का यह मत था कि बैंक को केन्द्रीय बैंक बनाने के लिये उसके व्यापारिक बैंक के कार्य छीन लिये जांय। परन्तु इसमें निम्न लिखित कठिनाइयां थीं:—

(१) बहुत से ऐसे स्थान थे, जहाँ केवल इम्पीरियल बैंक की ही शाखा थी। बैंक के व्यापारिक कार्य करने का अधिकार छीन लेने पर, ऐसे स्थानों की जनता को बहुत असुविधा होती।

(२) जिन स्थानों पर इसके अतिरिक्त और किसी बैंक की शाखा भी थी वहां इसके बन्द हो जाने पर उसका एकाधिकार हो जाता, जिससे खर्चा बढ़ जाता और जनता को हानि होती।

(३) जनता का इम्पीरियल बैंक पर इतना विश्वास था कि यदि इम्पीरियल बैंक केन्द्रीय बैंक बन जाता और जनता की

जमा वापिस कर देता तो, शायद बहुत से लोग और किसी बैंक में अपनी जमा न रखते। इससे देश की बैंकिंग प्रणाली को बड़ा धक्का लगता।

(४) इम्पीरियल बैंक की अपनी कार्य प्रणाली से व्यापारिक बैंकिंग का स्तर ऊंचा हो गया था, जो इसके व्यापारिक बैंकिंग के कार्य बन्द कर देने पर नीचा हो जाता और देश को बड़ी हानि होती।

इन्हीं कारणों से इम्पीरियल बैंक को केन्द्रीय बैंक बनाना उचित न समझा गया और रिजर्व बैंक स्थापित किया गया।

इम्पीरियल बैंक की वर्तमान स्थिति भारतीय मुद्रा बाजार में इम्पीरियल बैंक की स्थिति एक विशेष महत्व की है। यद्यपि यह एक साधारण सदस्य बैंक के समान है, फिर भी और बैंकों की अपेक्षा इसकी आर्थिक स्थिति काफी ठोस है। यह उन स्थानों में जहां रिजर्व बैंक की शाखाएं नहीं है, रिजर्व बैंक के आढ़तिये का काम करती है। इसकी वर्तमान आर्थिक स्थिति का ज्ञान अगले पृष्ठ पर दी गई तालिका से हो सकती है।

युद्ध काल में इसकी जमा में काफ़ी वृद्धि हुई और १९३९ की अपेक्षा ९७,८४ लाख रु० से बढ़कर १९४७ में २८६,५९ लाख हो गई। परन्तु १९४८ के बाद जमा में कमी आरम्भ हो गई है। सुरक्षित कोष भी बढ़ता चला जा रहा है। युद्ध काल में विनियोग भी बढ़े और कर्ज तथा अग्रिम में उतनी वृद्धि नहीं हुई। युद्ध के पश्चात जमा में घटौती और कर्ज और अग्रिम में युद्ध के बाद व्यवसाय के क्षेत्र खुल जाने से वृद्धि हो रही है। इन मांगों को पूरा करने के लिये सरकारी प्रतिभूतियों को बेचना पड़ा और उनमें घटौती हो रही है। १९५२ के दिसम्बर तक बैंक की कुल १९४ शाखायें तथा २०० छोटे कार्यालय (Sub-

इम्पीरियल बैंक :—दायित्व और संपत्तियां (लाख रु० में)

३१ दिसम्बर साल	पूंजी और सुरक्षित कोष — अदायकृत पूंजी	पूंजी और सुरक्षित कोष — सुरक्षित कोष	योग	कुल जमा	नकद अपने पास+अन्य बैंकों के पास	विनियोग सरकारी तथा अन्य	कर्ज अग्रिम तथा बिल	भारत में दफ्तरों की संख्या
१९३४	५,६२	५,३५	१०,९८	८,१००	१८,९७	४१,५६	२९,०२	
१९३५	,,	५,४७	११,१०	७,९१०	१९,५९	४६,८८	२०,५८	
१९३६	,,	५,५०	११,१३	७८,८०	८,५६	५२,५९	२६,७६	
१९३७	,,	५,५०	११,१३	८१,०८	१३,४३	४७,६२	२९,३७	
१९३८	,,	५,५५	११,१८	८१,५१	८९९	४३,७२	३८,३०	
१९३९	,,	५,६०	११,२३	८७,८४	११,००	३८,०२	४८,१८	
१९४०	,,	५,६२	११,२५	९६,०३	२४,८३	४८,५७	३२,३१	
१९४१	,,	,,	,,	१०८,९२	१५,२७	६४,३९	३८,८८	
१९४२	,,	५,७५	११,३८	१६३,४६	२३,००	११६,४१	३३,७९	
१९४३	,,	५,८५	११,४८	२१५,५३	५३,३६	१३०,२०	४४,६०	
१९४४	,,	६,००	११,६३	२३७,७८	२८,३१	१४८,६३	७०,२३	
१९४५	,,	६,०७	११,७०	२५९,३७	४१,६०	१५४,१८	७२,९१	
१९४६	,,	६,१७	११,८०	२७१६७	४२,४५	१५४५३	९४२७	
१९४७	,,	६,२५	११,८८	२८६५९	४२८९	१६४१९	८९१५	३५८
१९४८	,,	६,२७	११,९०	२८०२९	४३६७	१६१२५	९८००	३६१
१९४९	,,	६,३०	११,९३	२५०४६	५२४३	१०६८४	९०३१	३६७
१९५०	,,	६,३३	११,९६	२३१६५	३१४०	१२१५६	९८६६	३७७

Offices) थे । १६५० के वर्ष में १,२५,४५,६४४ रु० ८ आ० ६ पा० मुनाफा हुआ और गत वर्ष का लाभ ५४,६२,२७० रु० १३ आ० था अर्थात् कुल लाभ १,८०,३७,६१५ रु० ५ आ० ६ पा० हुआ।

इम्पीरियल बैंक की सेवायें इस बैंक ने गत तीस वर्षों में भारतीय वैंकिंग पद्धति को सुदृढ़ करने, वैंकिंग सुविधाओं को बढ़ाने तथा वैंकिंग प्रणाली का स्तर ऊंचा करने में बहुत कुछ कार्य किया है। इससे धीरे धीरे देश के आन्तरिक भागों में अपनी शाखायें खोलकर जनता को सुविधायें दी। सन् १६५२ में इस बैंक की ३६४ शाखायें भारत में थीं। इसमें जनता का अटूट विश्वास है और देश के व्यक्तियों में वैंकिंग की आदत डालने का बहुत कुछ श्रेय इसी को है। जिन स्थानों में इसने अपनी शाखायें खोलीं वहां के लोगों ने इससे ऋण भी पाया और वहां पर ब्याज की दर भी बहुत कम हो गई। इसकी बहुत सी शाखायें होने के कारण इसने जनता तथा बैंकों को मुद्रा इधर उधर भेजने में भी बड़ी सहायता की। यह माल उधार देकर, बिल भुनाकर और मांग पर देय ड्राफ्टों और टी० टी० क्रय कर कृषि के उपज के व्यापार में बहुत सहायता पहुँचाता है। इसने अपनी हुण्डी की दर और बाजार के ब्याज के दर में भी बहुत कुछ अन्तर मिटा दिया है। इसी प्रकार बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के बाजारों के ब्याज की दरों के अन्तर को भी कम कर दिया है। इसने प्रान्तीय और जिला सहकारी बैंकों में भी घना सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। इसने अपनी बड़ी बड़ी शाखाओं में निकास गृह स्थापित कर लिये हैं। इस बैंक ने भारतीय बैंकों की आर्थिक संकट के समय भी सराहनीय सहायता की है। जब एलायन्स बैंक आफ शिमला, ताता इंडिस्ट्र-

यल बैंक तथा बंगाल नेशनल बैंक पर संकट आया, तो इसने उसे दूर करने का भरसक प्रयत्न किया। इसने अपनी लंदन शाखा द्वारा भारतीय मुद्रा बाजार का लंदन के मुद्रा बाजार से सम्पर्क बढ़ाकर भारतीय कृषि, व्यापार तथा उद्योग को काफी सहायता पहुंचाई।

रिजर्व बैंक की स्थापना का इसकी उपयोगिता पर तनिक भी प्रभाव न पड़ा। वास्तव में यह भारतीय मुद्रा बाजार तथा रिजर्व बैंक के बीच में एक मध्यस्थ का कार्य करता है। सारांश में यह बैंक जनता के लिये, अपने ग्राहकों के लिये, सम्मिलित पूंजी वाले और सहकारी बैंकों के लिये तथा सरकार के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है।

यह अपनी साप्ताहिक स्थिति का विवरण भी प्रकाशित करता है, जिससे इसकी साख तथा प्रतिष्ठा और भी अधिक होती है।

इतना होते हुए भी इम्पीरियल बैंक की कार्य पद्धति की कड़ी आलोचना की गई है और उसमें निम्नलिखित दोष बतलाये गये हैं।

(१) बैंक की अधिकांश पूंजी विदेशी है उसका प्रबन्ध तथा संचालन भी विदेशियों द्वारा होता है। अतएव भारतीय वाणिज्य व्यवसाय के हितों का यह बैंक अधिक ख्याल नहीं रखता है। परन्तु अब बैंकिंग कम्पनीज़ ऐक्ट १९४९ के अनुसार कोई भी बैंक भारतीय वाणिज्य व्यवसाय में भेद पैदा नहीं कर सकता है। अतः इम्पीरियल बैंक भी भारतीय वाणिज्य व्यवसाय के अहित में कोई काम न कर सकेगा।

(२) ऋण नीति के सम्बन्ध में भी यह अभी पुरानी नीति ही काम में लाता है। किसी भी उद्योग धन्धे को कर्ज

देते समय यह ऋण पत्र पर दो हस्ताक्षर करवाता है। उसमें भी यह पक्षपात की नीति अपनाता है और विदेशियों को अधिक सुविधायें देता है।

(३) इसके अतिरिक्त, इम्पीरियल बैंक के विरुद्ध यह आरोप लगाया गया कि बैंक भारतीय उद्योग धन्धों के प्रति सहानुभूति नहीं दिखलाता है और उल्टे ही जाति का पक्षपात करता है। परन्तु जाति-पक्षपात के सम्बन्ध में कोई ठोस प्रमाण नहीं दिया जा सका है।

(४) कुछ विद्वानों का मत है कि इस बैंक ने व्यक्तिगत साख को ही अधिक महत्व दिया है और बिलों के प्रयोग को अधिक प्रोत्साहन नहीं दिया जिससे भारत में बिल-बाजार का विकास नहीं हो सका।

(५) इम्पीरियल बैंक भारतीयों को बैंकिंग शिक्षा के लिये सुविधा नहीं देता और बड़े बड़े पदों पर केवल विदेशियों को ही नियुक्त करता है। परन्तु आजकल बहुतसे भारतीय भी बड़े बड़े पदों पर नियुक्त किये गये हैं, वेतन के सम्बन्ध में भेद अभी भी मौजूद हैं।

(६) इस बैंक के रहते यहां के उद्योग धन्धों में मैनेजिंग एजेन्सी प्रणाली का अधिक प्रभुत्व है, क्यों कि यह तरल सम्पत्तियों के बन्धक प्राप्त करने पर भी द्वितीय हस्ताक्षर पर दबाव डालता है, जिसके लिये मैनेजिंग एजेन्ट्स की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु १९३४ के एमेण्डमेंट एक्ट के अनुसार बैंक को मालों के बन्धक के बदले सीधे कर्ज देने के अधिकार प्राप्त हैं, जिससे मैनेजिंग एजेण्टों की गारण्टी की आवश्यकता का अन्त हो गया है।

(७) इम्पीरियल बैंक रिजर्व बैंक का एक मात्र आढ़तिया होने के कारण अन्य बैंकों से अनुचित प्रति स्पर्धा करता है और उनकी उन्नति में वाधा डालता है।

कुछ विद्वानों का विचार है कि इम्पीरियल बैंक एक्ट को संशोधन करके इन दोषों को हटा देना चाहिये, परन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि इस बैंक का राष्ट्रीयकरण कर लेना चाहिये।

सन् १६४६ में जब रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण हुआ तब इस बैंक के राष्ट्रीयकरण करने का भी प्रश्न उठा। परन्तु उसका राष्ट्रीयकरण करना उचित न समझा गया। सन् १६५०-५१ तथा १६५१-५२ में भी इसके राष्ट्रीयकरण पर खूब वाद विवाद चला परन्तु भारत के दोनों ही वित्त मंत्रियों डा० मथाई तथा श्री देशमुख ने इसका राष्ट्रीयकरण उचित न समझा। अतः यह प्रश्न दुबारा टल गया है। ऐसी दशा में 'इसके दोष दूर करके तथा इसकी कार्य पद्धति में आवश्यक सुधार करके इससे अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिये। यह भारतीय बैंकिंग व्यवस्था का आधार स्तम्भ था और अभी तक एक सुदृढ़ अनुकरणीय बैंक है।

अभ्यास-प्रश्न

(१) इम्पीरियल बैंक कब और क्यों स्थापित किया गया ?

(२) इम्पीरियल बैंक आफ इंडिया के विधान तथा कार्यों को समझाइये।

(३) सन १६३५ में इम्पीरियल बैंक को ही भारत का केन्द्रीय बैंक क्यों नहीं बनाया गया ?

(४) इम्पीरियल बैंक आफ इंडिया और दूसरे भारतीय संयुक्त पूंजी

वाले बैंकों के बीच विधान क्रियाओं तथा रिजर्व बैंक आफ इंडिया से सम्बन्धों का क्या अन्तर है ? बताइये।

(५) इम्पीरियल बैंक का एक काल्पनिक साप्ताहिक चिट्ठा देकर उसकी मुख्यत् बातें समझाइये।

(६) भारतीय बैंकिंग पद्धति में इम्पीरियल बैंक आफ इंडिया के महत्व को समझाइये तथा उसके भविष्य पर प्रकाश डालिये।

(७) इम्पीरियल बैंक का देश में इतना विरोध क्यों है ? कुछ लोगों ने उसको भारत का नम्बर १ का शत्रु कहा है। क्या यह सही है ? भारत में इसकी बुराइयां दूर करने के लिये क्या क्या प्रयत्न किये गये ? संक्षेप में लिखिये।

नवां अध्याय

विनिमय बैंक

विनिमय बैंक वे बैंक हैं, जो विदेशी व्यापार को अर्थात् देश के आयात व निर्यात को आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं। इन बैंकों के प्रधान कार्यालय भारतवर्ष के बाहर हैं। वास्तव में विदेशी व्यापार को आर्थिक सहायता देना व्यापारिक बैंकों का भी एक काम है, परन्तु भारतवर्ष में स्थिति भिन्न है और यहां कोई भी मिश्रित पूंजी वाला बैंक विनिमय का कार्य नहीं करता। अतः यहां जो कुछ भी विनिमय तथा विदेशी व्यापार से सम्बन्धित कार्य होता है, वह सब विदेशी बैंकों द्वारा होता है और यही विदेशी बैंक, जो भारतवर्ष में विनिमय के कार्य में संलग्न हैं, विनिमय बैंकों के नाम से सम्बोधित किये जाते हैं।

भारतवर्ष के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सारा कार्य प्राचीन काल से इन्हीं बैंकों के हाथ में रहा है। उस समय प्रेसीडैन्सी बैंक यह काम कर नहीं सकते थे। अतः इन विदेशी बैंकों को इसमें विशिष्टता प्राप्त करने का अच्छा अवसर मिल गया। प्रारम्भ में जब देश में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का राज्य था, उस समय केवल एजेन्सी हाउस ही उक्त कार्य किया करते थे और किसी भारतीय बैंक को यह कार्य करने की आज्ञा ईस्ट इण्डिया कम्पनी देती ही न थी। १८५३ में स्थिति बदल

गई। एजेन्सी हाउस नष्ट हो गये और कम्पनी ने अपनी विरोध की नीति छोड़ दी। अतः सन् १८५३ में भारतवर्ष में दो प्रसिद्ध विनिमय बैंक स्थापित हुये। इनके नाम चारटर्ड बैंक आफ इण्डिया, आस्ट्रेलिया और चाइना तथा मरकैण्टाइल बैंक हैं। सन् १८८३ में एक बैंक कलकत्ता बैंकिंग कारपोरेशन के नाम से भी खुला जो बाद में नेशनल बैंक आफ इण्डिया के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके बाद और भी कई विदेशी बैंक फ्रांस, जर्मनी, हालैण्ड, जापान, अमरीका आदि देशों ने भारत में व्यापार बढ़ाने के उद्देश्य से खोले। सन् १८९९ में टामस कुक एण्ड सन्स, लायड बैंक, नेशनल बैंक आफ इण्डिया, ग्रिंडले एण्ड कम्पनी नामक अंग्रेजी बैंक तथा कई डच और अमरीकन तथा फ्रांसीसी बैंक स्थापित हुये। १९१४ के महासमर के समय Deutch Asiastische नामक जर्मन बैंक को अपना काम बन्द कर देना पड़ा। सन् १९४१ में जापान के एक शत्रु राष्ट्र घोषित हो जाने पर तीन जापानी बैंकों अर्थात् याकोहामा स्पीसी बैंक, मितसुई बैंक, तथा नैयात बैंक को भारत में अपना कार्य बन्द करना पड़ा।

वर्तमान स्थिति

इस समय देश में १५ विदेशी बैंक काम कर रहे हैं। उनके सब मिलाकर ८२ दफ्तर हैं—६२ भारत में और २० पाकिस्तान में। इनमें से सब से अधिक काम लायड्स बैंक के हाथ में है। इसके १८ दफ्तर हैं। ग्रिंडले बैंक के १४ दफ्तर हैं। नेशनल बैंक आफ इण्डिया के ११, चार्टर्ड बैंक आफ इण्डिया, आस्ट्रेलिया और चाइना के ९ तथा मर्केण्टाइल बैंक के ८ दफ्तर हैं। इसके अतिरिक्त चार्टर्ड बैंक आफ इण्डिया, आस्ट्रेलिया और चाइना ने इलाहाबाद बैंक से

सम्बन्धित होने के कारण, जिसके ७५ दफ्तर हैं, यहां का बहुत कुछ काम ले रखा है।

ये बैंक अपनी भारत में लगी हुई पूंजी तथा लागत के सम्बन्ध में कोई अंक प्रकाशित नहीं करते। अतः इनकी यहां की पूंजी और सुरक्षित कोष के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। परन्तु इनकी जमा के आंकड़ों को देखने से पता चलता है कि इनका भी भारतीय मुद्रा बाज़ार में एक महत्त्व-पूर्ण स्थान है।

भारतीय बैंकों के विनिमय कार्य न करने के कारण—

हमने ऊपर बताया है कि सन् १८५३ तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारतीय विनिमय बैंकों को स्थापित करने की आज्ञा ही न देती थी, परन्तु सन् १८५३ के बाद यह विरोध हट गया और स्थिति बदल जाने पर भी भारतीय बैंक इस कार्य में सफल न हो सके। इनकी असफलता के निम्न कारण थे:—

(१) भारतीय बैंकों के पास इतनी पूंजी नहीं थी कि वे विदेशों में अपनी शाखायें खोल सकें और वहां के मुद्रा बाज़ारों में अपनी धाक जमा सकें।

(२) विनिमय का कार्य करने के लिये बड़े कुशल कर्मचारियों की आवश्यकता होती है, जिनका भारत में अभाव था और इसी कारण भारतीय बैंक विनिमय का कार्य करने में असफल रहे।

(३) विदेशी विनिमय बैंकों की घोर प्रतिस्पर्धा भी भारतीय बैंकों की इस क्षेत्र में असफलता का एक मुख्य कारण था। कभी कभी तो यह प्रतिस्पर्धा बहुत ही अनुचित होती थी। इसके अतिरिक्त विदेशी बैंकों के कर्मचारी अधिक कुशल और दक्ष होते थे।

(४) भारतीय बैंकों के प्रधान कार्यालय भारत में होने के कारण वह लन्दन तथा न्यूयार्क जैसे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा बाजारों से दूर रहते थे और वे मुद्रा सम्बन्धी समुचित ज्ञान से वंचित रहते थे।

(५) जब कोई भारतीय बैंक विदेश में अपनी शाखा खोलना चाहता था, तो उसे यह सोचना पड़ता था कि उसे विदेशों में अधिक जमा पूंजी नहीं मिलेगी और इसलिये वह विदेशों में शाखा नहीं खोलता था।

(६) भारतीय बैंकों को विदेशों में आरम्भ में पर्याप्त जमा पूंजी न मिलने के कारण हानि उठाने की सम्भावना होती थी और वे यह हानि उठाने के लिये तैयार न होते थे।

(७) भारतीय बैंकों को विदेशों में वे वैधानिक व अन्य सुविधायें भी प्राप्त न थीं, जो दूसरे विदेशी बैंकों को यहां प्राप्त थीं।

(८) सरकार की नीति भी ऐसी ही थी, जिससे भारतीय बैंकों को विनिमय कार्य में कोई प्रोत्साहन नहीं मिला।

(९) भारत का विदेशी व्यापार सब विदेशियों के हाथ था, जो विदेशी बैंकों के द्वारा ही अपना कार्य करना पसन्द करते थे और भारतीय बैंकों से कोई सम्बन्ध रखना नहीं चाहते थे।

(१०) इम्पीरियल बैंक भी विनिमय कार्य को सन् १९३४ तक नहीं कर सकता था और रिजर्व बैंक के ऊपर भी विधानतः विदेशी बिलों के खरीदने तथा बेचने की मनाही थी। इस कारण यह बैंक भी यह काम न कर सके।

द्वितीय महायुद्ध काल में, विशेषकर १९४० के उपरान्त भारतीय बैंकों ने भी विदेशी व्यापार में भाग लेना आरम्भ

किया। सन् १९४७ में देश स्वतन्त्र हो गया और राष्ट्रीय सरकार बन गई। अतः भारतीय बैंकों की उन्नति अवश्यम्भावी है। देश के बैंकों की पूंजी, कोष तथा जमा युद्ध के समय में काफ़ी बढ़ गये हैं। देश में कुछ बड़े बड़े बैंक स्थापित भी हुये हैं। इम्पीरियल बैंक को भी विनिमय कार्य करने की आज्ञा मिल गई है। अतः यह आशा की जाती है कि स्थिति शीघ्र ही सुधर जायगी। सदस्य बैंकों, जैसे सेण्ट्रल बैंक आफ़ इण्डिया, बैंक आफ़ इण्डिया, एक्सचैंज बैंक आफ़ इण्डिया एण्ड अफ्रीका, ने भी विनिमय का कार्य आरम्भ कर दिया है।

विनिमय बैंकों के कार्य और उनके तरीके

विनिमय बैंक निम्नलिखित कार्य करते हैं:—

(१) विदेशी व्यापार को आर्थिक सहायता प्रदान करना,

(२) आयात-निर्यात से उत्पन्न विनिमय बिलों को खरीदना, बेचना तथा भुनाना,

(३) विदेशी व्यापारियों को अपने ग्राहकों की आर्थिक दशा का हवाला देना और आवश्यकता के समय उनके ऊपर होने वाले विनिमय बिलों की स्वीकृति कर देना,

(४) स्वर्ण तथा चांदी के आयात-निर्यात में सहायता प्रदान करना,

(५) देश के आंतरिक व्यापार में सहायता करना। यह बैंक बन्दरगाह से सामान देश के अन्दर शहरों तक पहुंचाने और मंडियों के सामान को बन्दरगाह तक लाने का भी कार्य करते हैं,

(६) भ्रमण के लिये आने जाने वाले व्यक्तियों को विदेशी करेन्सी के अदल बदल में सहायता देना, तथा

(७) अन्य साधारण बैंक के कार्य करना।

हम यहां केवल इन बैंकों के विदेशी व्यापार को सहायता देने के ढंग का विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे। विदेशी व्यापार की सहायता में दो काम आते हैं:—

(१) भारतीय बन्दरगाहों से विदेशी बन्दरगाहों और विदेशी बन्दरगाहों से भारतीय बन्दरगाहों के बीच जो व्यापार होता है उसमें आर्थिक सहायता प्रदान करना।

(२) भारतीय बन्दरगाहों से अन्दर के शहरों और अंदर के शहरों से भारतीय बन्दरगाहों के बीच जो व्यापार होता है उसमें सहायता प्रदान करना।

प्रथम से सम्बन्धित कुल काम और दूसरे से सम्बन्धित कुछ काम इन बैंकों के हाथ में है। इनकी देश के भीतर बहुत सी शाखायें हैं और इन्होंने कुछ भारतीय बैंकों को भी अपने अधिकार में कर लिया है, जिनके द्वारा यह अपना दूसरे प्रकार का कार्य कराते हैं।

भारत और विदेशों के बीच के व्यापार का हिसाब बिलों द्वारा चुकाया जाता है। जब यहां से माल बाहर भेजा जाता है, तब विदेश के आयात करने वाले व्यापारी पर एक बिल लिखा जाता है और यदि व्यापारी अपनी साख लंदन की किसी बिल स्वीकृत करने वाली कोठी में अथवा किसी बैंक में खोल लेता है तो बिल उस कोठी या बैंक पर लिखा जाता है। इस बिल को या तो कोई विदेशी विनिमय बैंक यहां पर खरीद लेता है अथवा उससे इसे भुना लिया जाता है। यह बिल प्रायः स्टर्लिंग में ही होते हैं और विनिमय बैंक इसका मूल्य उस दिन के विनिमय की दर से यहां की मुद्रा में दे देते हैं। प्रायः ये बिल दस्तावेजी तथा ६० दिन के दर्शनी बिल होते हैं। इनके साथ जहाजी रसीद, बीजक, बीमा

पालिसी आदि दस्तावेज़ नत्थी कर दी जाती हैं, जिससे विनिमय बैंक का हित सुरक्षित हो जाता है। कभी कभी ये बिल, बिल्कुल दर्शनी अथवा ६० दिनों से अधिक के दर्शनी भी लिखे जाते हैं। ये बिल प्रायः स्वीकृति पर अधिकार पत्र देने की शर्त के होते हैं और क्रेता को बिल की स्वीकृति करने पर सब अधिकार पत्र दे दिये जाते हैं। भारत में प्रायः सभी देशों के बैंक हैं, जो अपने यहां के व्यापारियों का हवाला देते हैं जिससे वे स्वीकृति पर अधिकार पत्र देने की शर्त पर आयात कर सकते हैं; और फिर जब यह व्यापारी किसी लन्दन की कोठी या बैंक में साख खोल लेते हैं, तो बिना हवाले के ही स्वीकृति पर अधिकार पत्र देने की शर्त के बिल लिखे जा सकते है। यदि व्यापारी ने न तो किसी कोठी या बैंक में साख ही खोली है और न अच्छा हवाला ही दिया है, तो उस स्थिति में यह बिल भुगतान होने पर अधिकार पत्र देने की शर्त पर लिखे जाते हैं और व्यापारी को बैंक तभी अधिकार पत्र देता है. जब व्यापारी बिल का भुगतान कर देता है। ऐसे बिल बहुत कम होते हैं। दर्शनी बिल की अपेक्षाकृत ३ महीनों की अवधि के बिलों की दर अधिक होती है। उनमें उतने दिन का ब्याज भी शामिल होता है।

विदेशी बैंक इन बिलों को खरीद कर माल के खरीददार के पास भेज देते हैं। या उस कोठी अथवा बैंक को दे देते हैं जहां उसने साख खोल रखी है। वहां पर बिल की स्वीकृति हो जाती है और अधिकारी बैंक इसे खुले बाजार में भुनाकर जितना रुपया उसने दिया है उसके बराबर का स्टर्लिंग प्राप्त कर लेता है। यदि अधिकारी बैंक को मुद्रा की आवश्यकता नहीं होती, तो वे बिल की रकम उसकी अवधि पूरी होने पर वसूल करते हैं।

आयात की भी दो प्रकार से सहायता की जाती है। एक तो भारतीयों के आयात करने पर और दूसरी विदेशियों के आयात करने पर होती है। भारतीयों के आयात करने पर विदेशी निर्यातकर्ता इस देश के आयातकर्ता पर ६० दिनों का दर्शनी बिल लिख कर उसे किसी ऐसे बैंक से भुना लेते हैं जिसका काम भारत में हो। विदेशी निर्यातकर्ता बैंकों को बिल भुनाते समय गिरवीं पत्र (Letter of Hypothecation) भी दे देते हैं, जिससे वे इन बिलों को अपनी शाखाओं द्वारा भारतीय आयातकर्ता के पास भेज देते हैं, जो उन्हें स्वीकार कर लेता है। परन्तु फिर भी भारतीय आयातकर्ता को अधिकार पत्र प्राप्त नहीं होते, क्योंकि उनको प्राप्त करने के लिये बिल की शर्त के अनुसार उनका भुगतान करना आवश्यक है। परन्तु माल को देरी से छुड़ाने पर क्षति (Demurrage) इत्यादि देनी पड़ती है। अतः आयातकर्ता अधिकार पत्रों को बैंकों से धरोहर पर ले लेते हैं और माल पाने पर उसे भी धरोहर की तरह बैंक में रख देते हैं। इसके लिये ये बैंकों को धरोहर की रसीद (Trust Receipt) दे देते हैं। बिलों का भुगतान करने के बाद माल बैंक से ले लिया जाता है और भुगतान के पूर्व माल बैंक का ही समझा जाता है। इस सुविधा के बदले बैंक आयातकर्ताओं से काफी लाभ उठा लेते हैं।

दूसरा तरीका प्रायः विदेशियों के साथ ही काम में लाया जाता है, क्योंकि भारतीयों का हवाला अच्छा न होने के कारण वे लन्दन की किसी कोठी अथवा किसी बैंक में बहुत कम साख खोल पाते हैं। जहां ऐसा हो जाता है, तो भारतीयों के साथ भी यही तरीका प्रयोग में लाया जाता है। इस तरीके

के अनुसार विदेशी निर्यातकर्ता लन्दन की उस कोठी अथवा बैंक पर बिल लिखते हैं, जिनके यहां आयातकर्ता साख खोल लेता है। यह साख किसी विनिमय बैंक में खोली जा सकती है। विदेशी निर्यातकर्ता के यहां जब माल का आदेश भेजा जाता है, तो उसके साथ साख खोलने की सूचना भी भेज दी जाती है। ऊपर वाला धनी माल सम्बन्धी अधिकार पत्र पा जाने पर इस पर अपनी स्वीकृति दे देता है और निर्यातकर्ता उसे अब भुना सकता है। आयातकर्ता भुगतान की तिथि के पहले बिल की रक़म ऊपर वाले धनी के यहां भेज देता है जिससे वह बिल का समय पर भुगतान कर देता है।

यहाँ के आयात सम्बन्धी बिल प्रायः स्टर्लिंग में ही होते हैं और उनमें लिखने की तिथि से आयातकर्ता के पास पहुंचने की सम्भावित तिथि तक का व्याज भी शामिल होता है। यदि वे लन्दन की किसी कोठी या बैंक के ऊपर होते है, तब उन्हें वहीं पर वहाँ की दर पर ही भुना लिया जाता है। डिस्काउन्ट की यह दर प्रथम तरह के बिलों में जो व्याज शामिल होता है उसकी दर की अपेक्षाकृत कम होती है। इससे यह स्पष्ट है कि विदेशी आयातकर्ता और वे भारतीय आयातकर्ता जो लन्दनमें साख खोल सकते हैं, अन्य भारतीय आयातकर्ताओं की अपेक्षा बहुत फायदे में रहते हैं। भारतीय आयातकर्ता को लंदनमें साख खोलने के लिये साख के धन का १५ से २० प्रतिशत तक पहले से देना पड़ता है और इस प्रकार वह विदेशी आयातकर्ता की अपेक्षाकृत हानि में रहता है।

हमारे प्रायः सभी बिल स्टर्लिंग में लिखे जाते हैं। केवल चीन के व्यापार सम्बन्धी बिल रुपयों में और जापान से व्यापार सम्बन्धी बिल येन (yen) में लिखे जाते हैं।

अधिकतर तो भारत के व्यापार का सन्तुलन (Balance of Trade) भारत के पक्ष में रहता है और वैंकों के पास स्टर्लिंग बच जाता है, जो रिजर्व वैंक खरीद लेता है। वह इनके आधार पर नोट निकालता है। परन्तु जब यह सन्तुलन भारत के विपक्ष में होता है तो रिजर्व वैंक स्टर्लिंग विनिमय वैंकों को वेचता है और नोट वापिस हो जाते हैं। रिजर्व वैंक से कभी भी कोई वैंक १०००० अथवा उससे अधिक पाउण्ड जब चाहे खरीद सकता है या उसको वेच सकता है। इधर स्टर्लिंग के स्थान पर अन्य मुद्रायें भी दी और ली जा सकती हैं।

आयात निर्यात से उत्पन्न विनिमय विलों को खरीदना व वेचना—विदेशी विनिमय वैंक विदेशी व्यापार का भुगतान करने व पाने के लिये विदेशी विनिमय विलों को खरीदते और वेचते हैं। जब इनके पास विलों की मात्रा वहुत होती है, तो यह वैंक इन विलों को रिजर्व वैंक के हाथ एक निश्चित दर पर वेच देते हैं और विलों की कमी होने पर रिजर्व वैंक से विल खरीद लेते है।

विदेशी व्यापारियों को अपने ग्राहकों की आर्थिक दशा का हवाला देना और आवश्यकता के समय उनके ऊपर होने वाले विनिमय विलों को स्वीकृत कर देना—ये वैंक अपने व्यापारियों का अच्छा हवाला देकर, उनको आयात करने में सहायता करते हैं और आयातकर्ता के ऊपर लिखे जाने वाले विलों को भी स्वीकार करते हैं, यदि आयातकर्ता ने वैंक में साख खोल ली है। परन्तु ये विदेशी वैंक भारतीय व्यापारियों का वहुत कम अच्छा हवाला देते हैं और भारतीय व्यापारियों को वैंक में साख खोलने में भी वहुत कठिनाई होती है। उन्हें धन

का १५ से २० प्रतिशत तक पहले से देना पड़ता है और इस प्रकार वे विदेशी आयातकर्ता की अपेक्षाकृत हानि में रहते हैं।

स्वर्ण तथा चाँदी के आयात-निर्यात में सहायता प्रदान करना—भारत के व्यापार का सन्तुलन भारत के ही पक्ष में रहने से विदेशी बैंक इस अनुकूल व्यापारका भुगतान प्राप्त करने के लिये दूसरे देशों से स्वर्ण, चाँदी के आयात का प्रबन्ध करते थे। परन्तु द्वितीय महायुद्ध के समय से सरकारने सोने चाँदी के क्रय-विक्रय तथा आयात निर्यात का कार्य रिजर्व बैंक को सौंप दिया है और विनिमय बैंकों का यह कार्य सीमित हो गया है।

देश के आंतरिक व्यापार में सहायता देना—ये बैंक देश में बन्दरगाह से सामान देश के अन्दर शहरों तक पहुंचाने और मंडियों का सामान बन्दरगाह तक लाने का भी कार्य करते हैं। इस कार्य को सुचारु रूप से करने के लिये इन्होंने अपनी शाखायें देश के आन्तरिक भागोंमें स्थापित कर ली है और कुछ भारतीय बैंकों पर अपना अधिकार कर लिया है। इसी उद्देश्य से पी० एन्ड ओ० बैंकिंग कार्पोरेशन ने इलाहाबाद बैंक से सम्बन्ध जोड़ा था और सन् १९२७ में चार्टर्ड बैंक आफ़ इण्डिया, आस्ट्रेलिया और चीन ने पी० एन्ड ओ० बैंकिंग कार्पोरेशन को ले लिया। यह अपनी जमा राशि का एक बहुत बड़ा हिस्सा देश के आन्तरिक व्यापार को सुविधा देने के काम में लगाते है। इस प्रकार ये बैंक ही दिल्ली और अमृतसर के कपड़े के व्यापार, कानपुर के चमड़े के व्यापार तथा बंगाल के जूट के व्यापार को आर्थिक सहायता देते हैं। अतः देश के आन्तरिक व्यापार का भी एक बहुत बड़ा भाग इन्हीं विदेशी बैंकों के हाथ में है।

भ्रमण के लिये आने जाने वाले व्यक्तियों को विदेशी करेन्सी के अदल वदल में सहायता देना और विदेशों को रुपये भेजने की सुविधा प्रदान करना—बहुत से व्यक्ति विदेशों में भ्रमण करने के लिये जाते हैं उन्हें अपनी करेन्सी को विदेशी करेन्सी में वदलने की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार जो लोग विदेशों से भारत आते हैं उन्हें विदेशी करेन्सी को भारतीय करेन्सी में वदलने की आवश्यकता होती है। यह करेन्सी की अदल वदल का कार्य विनिमयवैंकों के द्वारा आसानी से हो जाता है। ये वैंक एक देश की करेन्सी दूसरे देश की करेन्सी में उचित दर से वदल देते हैं। इस के अतिरिक्त ये वैंक, वैंक ड्राफ्ट, विदेशी विनिमय, विलों तथा तार द्वारा भी विदेशों में धन भेजने का प्रवन्ध करते हैं। ये वैंक संसार के प्रत्येक व्यापारिक केन्द्र पर तार की हुण्डी (Telegraphic Transfers) भी वेचते हैं।

अन्य साधारण वैंकिंग कार्य—ये विदेशी वैंक उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त और भी वैंकिंग कार्य करते हैं। यह जनता से सव प्रकार की जमा लेते हैं, ऋण देते हैं, आढ़त का कार्य करते हैं और देश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर रुपया भेजने का कार्य भी करते हैं। इनकी साख और प्रतिष्ठा अधिक होने से, ये व्याज भी कम देते हैं और फिर भी जनता का इन में अधिक विश्वास है। ये वैंक भारतीय वैंकों के कट्टर प्रतिद्वन्दी वन गये हैं और इन्होंने भारतीय मुद्रा वाजार में एक प्रभावशाली स्थान ग्रहण कर लिया है। यह वैंक भारतवर्ष में वहुत अधिक लाभ कमा रहे हैं और अपने हिस्सेदारों को वहुत ऊंची दरों पर लाभांश दे रहे हैं। इन वैंकों ने अपना ऐसा गुट्ट वना

लिया है कि भारतीय बैंकों को विनिमय कार्य में पूर्ण रूप से सफलता मिल ही नहीं सकती। परन्तु भारत को स्वतंत्रता मिलने के बाद इन बैंकों ने भी अपनी नीति में परिवर्तन करना आरम्भ कर दिया है।

विदेशी बैंकों के यहां के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की सहायता करने के तरीकों में दोष—

(१) हमारे निर्यात तथा आयात दोनों के बिल स्टर्लिंग में ही लिखे जाते हैं। अतः उन्हें लन्दन में भुनाना ही आवश्यक हो जाता है। यदि यह बिल रुपये में लिखे जांय तो भारतीय मुद्रा बाजार को काफी प्रोत्साहन मिल सकता है।

(२) विनिमय बैंकों के भारतीय आयातकर्ता का अच्छा हवाला न देने के कारण उनको प्रायः बिलों के भुगतान पर अधिकार पत्र मिलने की शर्त पर आयात करना पड़ता है, जिस से भारतीय आयातकर्ताओं को बहुत हानि होती है।

(३) पहले तो भारतीयों को लन्दन में साख खोलने में ही कठिनाई होती है, और यदि साख खोल भी लेते हैं, तो उन्हें १५ से २० प्रतिशत तक की रकम पहले ही देनी पड़ती है, जब विदेशी आयातकर्ताओं को ऐसा नहीं करना पड़ता।

(४) बिलों के साथ नत्थी किये हुये अधिकारपत्रों की जांच के लिये उन्हें विदेशियों के तो दफ्तर में ही भेज दिया जाता है, किन्तु भारतीयों को इस के लिये स्वयं बैंकों के दफ्तरों में जाना पड़ता है।

(५) विदेशी बैंक यहां के आयातकर्ताओं को अपने अपने देश के जहाजों द्वारा माल मंगाने को विवश करते हैं। बीमे के लिये भी वह भारतीयों को विदेशी कम्पनियों से बीमा कराने के

लिये कहते हैं।

(६) विनिमय के समझौते को पूरा करने में तनिक भी देर होने पर भारतीयों को दण्ड भुगतना पड़ता है।

विनिमय बैंकों के विरुद्ध आरोप—विभिन्न विद्वानों तथा बैंकिंग कमेटियों ने विदेशी विनिमय बैंकों के विभिन्न दोषों पर प्रकाश डाला है, और उन के ऊपर कई निम्नलिखित आरोप लगाये हैं :—

(१) विनिमयबैंक भारतीय व्यापारियों का काम ठीक ढंग से नहीं करते। जब कभी उनसे भारतीयों का हवाला या आर्थिक स्थिति के विषय में पूछ ताछ की जाती है, तो वह बड़ी गलत सूचना देते हैं। उनका कहना है कि भारतीय व्यापारी उनके पास अपना अंकेक्षण (Audit) करवा कर चिट्ठा नहीं भेजते। परन्तु भारत में इसकी प्रथा नहीं है। केवल सीमित उत्तरदायित्व वाली कम्पनियों के लिये ही चिट्ठा अंकेक्षण कराना आवश्यक है। अतः विनिमय बैंकों को अपनी इस नीति में परिवर्तन करना आवश्यक है।

(२) अच्छा हवाला न देने के कारण भारतीयों को माल प्रायः नकद ही खरीदना पड़ता है, जब कि विदेशियों को माल उधार ही मिल जाता है।

(३) जब कोई भारतीय व्यापारी सामान बाहर भेजता है, तो उसके बिल बिना अन्तर के और बिना जमानत के नहीं चुकाये जाते, परन्तु विदेशियों को न अन्तर ही देना पड़ता है और न जमानत ही।

(४) भारत में स्थित विदेशी विनिमय बैंक भारतीयों को विदेशों की आर्थिक स्थिति का उचित ज्ञान नहीं कराते और

इस कारण भारतीय व्यापारी ठीक से व्यापार नहीं कर पाते।

(५) यह बैंक भारतीय ग्राहकों को अपने देश की बीमा तथा जहाज कम्पनियों से काम लेने को बाध्य करते हैं। इस से देश को हानि होती है।

(६) इन बैंकों ने देश के अन्दर भी शाखायें खोल ली हैं और ये भारतीय बैंकों से अन्य साधारण बैंकिंग कार्यों में भी प्रतिस्पर्धा करते हैं जिस से देश को हानि होती है।

(७) विदेशी बैंकों की नीति के कारण भारत का सारा विदेशी व्यापार विदेशियों के हाथ में चला गया है। केवल १५ प्रतिशत व्यापार भारतीयों के हाथ में है।

(८) सन् १९४९ से पूर्व इन बैंकों पर भारत का कोई विधान लागू नहीं होता था और न इनकी पूंजी इनके विनियोग तथा इनकी नीति पर ही कोई प्रतिबन्ध था। यह अपनी आय-व्यय के आंकड़े भी नहीं छापते थे। इससे भारतीयों को बहुत हानि होती थी।

(९) इन बैंकों को भारत में कार्य करते हुये पर्याप्त समय हो गया है, परन्तु फिर भी इन्होंने किसी भारतीय को ऊंचे ऊंचे पदों पर नियुक्त नहीं किया है और न इन्होंने भारतीयों को बैंकिंग की उच्च शिक्षा ही देने का प्रबन्ध किया है।

(१०) इन के पास भारतीय जनता का काफी रुपया जमा रहता है, फिर भी इन पर को नियन्त्रण नहीं है।

(११) यह बैंक भारत में जमा किया हुआ रुपया भारत में बहुत कम लगाते हैं। इससे भारत के रुपये से विदेशियों को लाभ पहुँचता है।

(१२) यह बैंक भारत में प्राप्त किये हुये धन से ही विदेशी

व्यापार को सहायता प्रदान करते हैं और उसका लाभ विदेश ले जाते हैं। इस लिये हमारे ही रुपये से उपार्जन किया हुआ लाभ विदेशों में चला जाता है।

(१३) विनिमय बैंकों का संगठन जब चाहे अपने नियमों को बिना भारतीय व्यापारियों की सलाह के बदल देता है। इस से व्यापारियों को असुविधा भी होती है और हानि भी।

(१४) विदेशी विनिमय बैंकों ने भारत की राजनैतिक तथा आर्थिक उन्नति में भी रोड़े अटकाये हैं। उनका सदैव यही प्रयत्न रहा है कि न भारत को स्वतन्त्रता मिले और न भारत में स्वर्णमान ही स्थापित हो। यह सदैव इस बात की कोशिश में रहते हैं कि न तो भारतीय बैंकों को समाशोधन गृह का सदस्य बनाया जाय और न उन्हें विनिमय बैंक संघ ही में शामिल किया जाय। इन्हीं बैंकों के कारण भारत में सन् १६३५ तक कोई केन्द्रीय बैंक की स्थापना न हो सकी। इन्होंने सदैव ही भारत के आर्थिक हितों के विरुद्ध अपने प्रभाव का उपयोग किया है। विदेशी विनिमय बैंकों की कार्य पद्धति में अनेक दोष होते हुए भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इन्हीं बैंकों ने भारत में आधुनिक बैंकिंग प्रणाली की नींव डाली और विदेशी व्यापार को सहायता देकर पूर्ण रूप से बढ़ाया। परन्तु फिर भी इन बैंकों के दोषों को तो दूर करना ही होगा।

विदेशी बैंकों के काम करने के सम्बन्ध में सुझाव—
इन्हें भारतीय व्यापारियों के सम्बन्ध में भी वैसे ही ठीक हवाले देने चाहिये, जैसे कि वे विदेशियों के सम्बन्ध में देते हैं।

इन्हें भारतीयों की भी साख उन से बिना १५ या २० प्रतिशत पेशगी (Advance) लिये हुये ही खोलनी चाहिये

या इन्हें स्वयं ही उन के ऊपर लिखे हुए बिलों को स्वीकार कर लेना चाहिये।

इन्हें बिलों को रुपयों में लिखे जाने के लिये प्रोत्साहन देना चाहिये। इस से देश में बिल बाजार बनने में सुविधा होगी।

इन्हें भारतीयों को अच्छे अच्छे पदों पर नियुक्त करना चाहिये और उन की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध करना चाहिये। इस से इन के व्यापार में भी उन्नति होगी और भारतीयों से भी अच्छा सम्बन्ध स्थापित हो जायगा।

इन्हें भारतीयों के सहयोग से काम करना चाहिये और भारतीय बीमा और जहाज कम्पनियों को प्रोत्साहन देना चाहिये।

किन्तु फिर भी भारतीयों को विनिमय का व्यवसाय अपने हाथ में तो लेना ही पड़ेगा। सच तो यह है कि किसी देश के अपने ही बैंक उस देश के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सहायता पहुँचा सकते हैं। जर्मन और जापानियों का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी इसी प्रकार उन्नति कर सका था। केन्द्रीय बैंकिंग कमेटी का भी यही मत था और हमारा जो व्यापारिक मिशन सन् १९४६ में चीन गया था उसने भी यही कहा था कि वहां पर भारतीय बैंकों की बड़ी आवश्यकता है। इस कार्य में इम्पीरियल बैंक उचित सहायता दे सकता है। इस सम्बन्ध में उस पर जो प्रतिबन्ध लगा हुआ था वह सन् १९३४ से हटा भी लिया गया है।

केन्द्रीय बैंकिंग जांच कमेटी ने यह भी सिफ़ारिश की थी कि विदेशी विनिमय बैंकों को भारत में कार्य करने को पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं होनी चाहिये। उन्हें भारत में कार्य करने के

लिये भारत की केन्द्रीय बैंकिंग संस्था से अनुज्ञापत्र (Licence) प्राप्त करना चाहिये। कमेटी के अल्पमत ने यह सिफ़ारिश की थी कि इन बैंकों पर कड़ा नियन्त्रण होना चाहिये और यह बैंक भारत में केवल उतनी ही जमा लें जितनी भारतीय विदेशी व्यापार के लिये आवश्यक है, भारतीय उनके संचालक हों, इनकी शाखायें बन्दरगाहों तक ही सीमित रहें और यह अपनी वार्षिक रिपोर्ट तथा स्थिति विवरण रिजर्व बैंक को भेजा करें। परन्तु यह सिफारिशें बहुमत से अस्वीकृत कर दी गईं।

केन्द्रीय बैंकिंग कमेटी का सुझाव था कि यदि इम्पीरियल बैंक विनिमय का कार्य न करे, तो ऐसा करने के लिये एक सरकारी विनिमय बैंक की स्थापना की जानी चाहिये, जिसकी पूंजी भारतीय बैंकों द्वारा प्राप्त की जाय और कमी सरकार द्वारा पूरी हो। कुछ सदस्यों की राय थी कि इस बैंक के सब हिस्से सरकार द्वारा ही खरीदे जांय। कुछ लोग सरकार द्वारा विनिमय बैंक खोले जाने के पक्ष में नहीं थे। श्री मनु सूबेदार ने यह काम रिजर्व बैंक के एक विभाग द्वारा करवाने का सुझाव रक्खा था। उनका विचार था कि सरकार विनिमय बैंक न खोले, क्योंकि वे सरकार को कोई भी अधिकार देने के विरुद्ध थे।

इसके अतिरिक्त कमेटी का यह भी मत था कि भारतीयों तथा विदेशियों के सम्मिलित विनिमय बैंक स्थापित किये जांय।

एक यह भी मत था कि जिन ब्रिटिश बैंकों के हाथ में भारत के विनिमय का काम है, उन्हें यहीं रजिस्ट्री करा लेनी चाहिये और अपनी कुछ पूंजी रुपयों में कर लेनी चाहिये और साथ ही उन्हें अपना प्रधान कार्यालय भी यहीं खोलना चाहिये। किन्तु ब्रिटेन के लोगों को यह योजना अस्वीकार थी।

परन्तु वास्तव में इन विदेशी बैंकों का एकाधिकार तब ही समाप्त हो सकता है जब भारतीय बैंक विनिमय के काम को अपने हाथ में लें। कुछ बैंकों ने स्वतन्त्रता के बाद यह काम आरम्भ तो कर दिया है, परन्तु सबसे अच्छी बात तो यह होगी कि एक विनिमय बैंक सरकार की संरक्षणता तथा नियन्त्रण में खोला जाय, जिसके शेयर केवल भारतीय बैंक खरीदें। इससे भारतीय बैंक, भारतीय जनता तथा भारतीय सरकार में सीधा सम्बन्ध स्थापित हो सकेगा और विदेशी प्रतिस्पर्धा भी कम हो जावेगी।

युद्धकाल में विनिमय व्यवसाय

युद्धकाल में हमारे आयात और निर्यात दोनों पर नियन्त्रण लगा हुआ था। सरकार का पूर्ति विभाग (Supply Deptt. माल खरीदता और विदेशों को भेजता था। अतः विनमय व्यवसाय बैंकों के हाथ में न रहकर सरकार या रिजर्व बैंक के हाथ में आगया था। इसी प्रकार आयात भी सरकार द्वारा ही होता था। बहुत सा सामान संयुक्त राष्ट्र से उधार पट्टे समझौते (Lend Lease Agreement) के अन्तर्गत आता था और उसके भुगतान का तो प्रश्न ही न उठता था। परन्तु जहां भुगतान की आवश्यकता होती थी सरकार उसे अपने डालर कोष से करती थी। साम्राज्यान्तर्गत देशों (Commonwealth Countries) का भुगतान भी सरकार द्वारा निर्यात के बदले मिले हुये स्टर्लिंग से होता था। अतः युद्धकाल में विनिमय बैंकों के हाथ में बहुत कम काम रह गया था।

भारतीय बैंकिंग एक्ट १९४९ और विनिमय बैंक—१९४९ के बैंकिंग विधान के अनुसार सभी विदेशी बैंकों को

रिज़र्व बैंक से अनुज्ञापत्र (Licence) लेना अनिवार्य हो गया है। पुराने बैंकों के उचित व्यवहार न करने पर उनके अनुज्ञापत्र रद्द भी किये जा सकते हैं। इन बैंकों के लिये भारत में व्यवसाय करने के लिये १५ लाख रुपये की पूंजी और कोष रखना अनिवार्य कर दिया गया है और बम्बई और कलकत्ता में व्यवसाय करने के लिये २० लाख रुपये की पूंजी तथा कोष रखना अनिवार्य है। ये बैंक बिना रिजर्व बैंक की आज्ञा के कोई नया कार्यालय स्थापित नहीं कर सकेंगे। इनको भारतीय जमाओं के भुगतान के लिये कम से कम इन जमाओं की ७५ प्रतिशत पूंजी भारत में रखना आवश्यक है। इन बैंकों को अपनी मांग देनदारी (Demand Liability) का ५ प्रतिशत और समावधि देनदारी (Time Liability) का २ प्रतिशत रिजर्व बैंक के पास रखना पड़ेगा। इन बैंकों को अब प्रति वर्ष अपने लाभालाभ खाते और चिट्ठे (P. & L. A/C and Balance Sheet) को अंकेक्षण कराकर रिजर्व बैंक के पास भेजना पड़ेगा और इन्हीं विवरणों का प्रदर्शन अपने प्रधान कार्यालय और शाखाओं पर करना होगा। नये बैंकिंग विधान के अनुसार रिजर्व बैंक इनके ऊपर अन्य बैंकों की तरह अन्य कई नियन्त्रण भी लगा सकता है। आशा है रिजर्व बैंक विदेशी विनिमय बैंकों का नियन्त्रण अब अधिक सुदृढ़ता के साथ कर सकेगा और ये बैंक भविष्य में यहां के लोगों की कोई विशेष हानि नहीं कर सकेंगे।

अभ्यास-प्रश्न

१—भारत में विनिमय बैंक के कार्यों पर प्रकाश डालिये तथा यह समझाइये कि यहां उनकी आलोचना क्यों की जाती है ?

२—भारत में विनिमय बैंकिंग का कार्य अब तक विदेशी विनिमय बैंकों तक ही सीमित क्यों रहा ? भारतीय व्यापारिक बैंकों को इस कार्य में अधिक से अधिक हाथ बटाने के लिये क्या करना चाहिये ?

३—भारतीय विदेशी व्यापार में विनिमय बैंक आर्थिक सहायता किस प्रकार पहुंचाते हैं ? लिखिये।

४—विनिमय बैंक के मुख्य मुख्य कार्यों को विस्तारपूर्वक समझाइये तथा ऐसे पांच प्रमुख बैंकों का नाम दीजिये जो विनिमय बैंक का कार्य करते हों।

दसवां अध्याय

भारतीय व्यापारिक बैंक

भारतीय व्यापारिक बैंक वे संस्थायें हैं, जो भारतीय कम्पनी विधान के अन्तर्गत स्थापित की गई हैं। सर्व प्रथम आधुनिक बैंक मद्रास प्रान्त में स्थापित हुआ था, हालांकि बम्बई और कलकत्ते की आढ़ती कोठियों (Agency Houses) ने १८ वीं शताब्दी में आधुनिक बैंकिंग की नींव डाली थी। बैंकिंग कार्य इन कोठियों के मुख्य व्यवसाय के आधीन थे। इनके बाद जो संयुक्त पूंजी वाले बैंक स्थापित हुये, उनका दायित्व असीमित था और उनके प्रवन्धक यूरोपियन लोग थे। वे नोट चलाने का कार्य भी करते थे, परन्तु १८२६-३० के आर्थिक संकट ने इन आढ़ती कोठियों को समाप्त कर दिया और १८८० तक बैंकिंग प्रवृत्ति में अत्यन्त धीमी प्रगति रही। इसी बीच अनेक संयुक्त पूंजी वाले बैंक स्थापित हुये, परन्तु उनको भी अपना कार्य बन्द कर देना पड़ा। १८६० के लगभग सीमित दायित्व स्वीकार कर लिया गया। बंगाल, बम्बई और मद्रास के प्रेसीडेन्सी बैंक भी इसी काल में खुले। १८६२ से पूर्व यह बैंक सरकार के नियन्त्रण में थे और इनके कार्यों पर सरकार द्वारा प्रतिबन्ध लगे हुये थे। १८६२ में उन से नोट प्रकाशन का कार्य ले लिया गया और वे सरकार के प्रतिनिधि की हैसियत

से काम करते रहे। इसके पश्चात् उन पर लगे हुये प्रतिबन्ध भी ढीले कर दिये गये। परिणाम स्वरूप बम्बई बैंक १८६८ में फेल हो गया। इसी वर्ष बम्बई बैंक के नाम से एक और बैंक स्थापित किया गया और १८७६ में सरकार ने एक अधिनियम द्वारा इन बैंकों पर फिर पुराने नियन्त्रण लगा दिये। १९२१ में इन तीनों बैंकों को मिला कर इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया की स्थापना हुई।

१८८० तक आर्थिक परिस्थिति स्थिर थी तथा मूल्य गिर रहे थे। इस कारण उस समय में बैंकिंग में कोई उन्नति नहीं हुई। १८८० के पश्चात् बैंकों ने कुछ उन्नति की और अगली शताब्दि में उन को पर्याप्त लाभ हुआ। १८८१ में अवध कमर्शल बैंक पहला भारतीय बैंक खुला। इसके पश्चात् १८९४ और १९०१ में पंजाब नेशनल बैंक तथा पीपुल्स बैंक आफ इण्डिया स्थापित हुये। १९०५ के स्वदेशी आन्दोलन में भारतीय बैंकिंग की पर्याप्त उन्नति हुई और देश में बैंकों की बाढ़ सी आ गई। इसका कारण स्वदेशी आन्दोलन था और प्रत्येक विदेशी वस्तु का बहिष्कार किया जा रहा था। अतः भारतीय बैंकों के प्रति भी जनता की लोक प्रियता बढ़ गई। जनता भारतीय बैंकों के पास अधिक जमा कराने लगी और बहुत से बैंकों की स्थापना हुई जिस में बैंक आफ बर्मा (१९०४), बैंक आफ इंडिया, बैंक आफ मैसूर, बैंक आफ बड़ौदा, दी इण्डियन स्वदेशी बैंक और सेन्ट्रल बैंक आफ इण्डिया प्रमुख हैं। परन्तु इस काल में बैंकों की उन्नति केवल व्यापारिक केन्द्रों तक ही सीमित रही और बैंकिंग व्यवसाय कुछ ही बड़े बड़े बैंकों के हाथ में केन्द्रीभूत रहा। बैंकों ने १९१३ तक इतनी शीघ्रतापूर्वक उन्नति की कि जब भारतीय बैंकों पर संकट आया, तो भारत का

एक बड़ा व्यापारिक बैंक पीपल्स बैंक आफ इंडिया फ़ेल हो गया और उसके साथ कई और बैंक नष्ट हो गये।

प्रथम महा युद्ध के समय बैंकों में फिर कुछ बाढ़ सी आई और कुछ नये बैंक खुले। इस समय बैंकों की जमा में वृद्धि हुई परन्तु १६१३ से १६१६ के बीच में भारतीय संयुक्त पूंजी वाली बैंकों की जमा में कमी आयी और फिर १६१७ और १६२१ के बीच जमा में आम बढ़ौती हुई। किन्तु युद्ध के बाद भयंकर मन्दी आई और बहुत से बैंक फेल हो गये। इन में शिमले का अलायन्स बैंक बहुत पुराना और महत्वपूर्ण था। १६२६ के विश्व व्यापी अर्थिक संकट का भी भारतीय बैंकिंग पर गहरा प्रभाव पड़ा। अनेकों बैंक फेल हो गये, परन्तु अन्य देशों की अपेक्षा यहां पर आर्थिक संकट का प्रभाव अधिक गहरा न था। केवल १६३१ में बैंकों की जमा में आम गिरावट आई। उसके बाद जब आर्थिक पुनरुद्धार का युग आरम्भ हुआ, तो जमा में विशेष वृद्धि हुई और द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व तक धीरे धीरे वृद्धि होती गई। केवल १६३८ में एक और सकट आया और वह केवल दक्षिणी भारत तक ही सीमित रहा। इस समय वहां का एक सब से बड़ा बैंक ट्रावनकोर नेशनल एण्ड क्विलन बैंक फेल हो गया। इस काल में बैंकों की शाखाओं में भी वृद्धि हुई।

उपरोक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि भारतीय बैंकों ने भिन्न भिन्न संकटों का बड़ी वीरता से सामना किया। वे महायुद्ध में भी जीवित रह गये और विश्व व्यापी मन्दी के संकट को भी झेल गये। जो बैंक इस समय में फेल हुये उनकी असफलता के निम्न कारण थे :—

(१) *पूंजी की कमी तथा अल्प स्थिति*—असफल बैंकों में दो तिहाई ऐसे थे जिनकी आयु दस वर्ष से कम थी। उन

बैंकों की पंजी भी बहुत कम थी इसलिये उनको व्यापार करने के लिये अधिकतर जमाओं (Deposits) पर निर्भर रहना पड़ता था। जमा आकर्षित करने के लिये उन्हें अधिक सूद देना पड़ता था और अधिक सूद देने के लिये उन्हें सट्टे में भी रुपया लगाना पड़ता था, जो बैंकों की असफलता का मुख्य कारण था।

(२) *योग्य मैनेजरों का अभाव*—इन बैंकों के बहुत से मैनेजर अयोग्य थे और बैंकिंग के सिद्धान्तों को भली भांति नहीं समझते थे। संचालक मैनेजरों के प्रभाव में रहते थे और हिस्सेदारों (Shareholders) का भी संचालकों और मैनेजरों पर कोई नियन्त्रण न था। बहुत से संचालक बेईमान थे और अपने मित्रों और उन अन्य बैंकों को ऋण दिलवा देते थे जिन में वे स्वार्थ रखते थे। कुप्रबन्ध को छिपाने के लिये खाते अधूरे रखे जाते या जाली खाते तैयार किये जाते थे।

(३) *पूंजी का अनुपयुक्त समायोजना*—चुकता पूंजी, अधिकृत पूंजी तथा स्वीकृत पूंजी में भारी अन्तर था।

(४) पूंजी लगाने वालों को आकृष्ट करने के लिये बड़े बड़े नामों का उपयोग किया जाता था।

(५) अधिक लाभांश देने के लिये ये बैंक सट्टे में रुपया लगा देते थे और शेयर बाजार में शेयरों के क्रय-विक्रय के लिये ऋण दे देते थे, जिस के कारण वे अपनी सम्पत्तियों को शीघ्र ही बिना हानि के नक़द में परिणत न कर सके और वे फेल हो गये।

(६) यहां के बैंकर बैंकिंग के प्राथमिक सिद्धान्तों से भी अनभिज्ञ थे। व्यापारिक बैंकों के पास अल्पकालीन रकमें जमा की जाती हैं, जिनको दीर्घकालीन और औद्योगिक ऋणों में नहीं

लगाना चाहिये। परन्तु यहां के बैंकों ने १९०६–१३ के बीच खुल कर दीर्घकालीन ऋण देने आरम्भ किये और इसीलिये १९१३-१४ के संकट में पीपुल्स बैंक, अमृतसर बैंक, टाटा इण्ड स्ट्रियल बैंक, बैंक आफ बर्मा तथा इंडियन स्पीशी बैंक फेल हो गये।

(७) बैंकों की सम्पत्ति में तरल सम्पत्ति का अनुपात ऊंचा होना आवश्यक है। नकदी के कम अनुपात के कारण भी कई बैंकों का दिवाला निकल गया।

इस के अतिरिक्त कुछ बैंकों के आन्तरिक हिसाब किताब की जांच ठीक ठीक नहीं होती थी। कुछ बैंक सन्देह जनक ऋणों और अपकर्ष के लिये बिना कोष रखे ही लाभांश वितरण कर देती थी। बैंकों के विनियोग की नीति भी त्रुटिपूर्ण थी। बहुत से बैंक दीर्घकालीन प्रतिभूतियों में रुपया लगाते थे और सरकारी प्रतिभूतियों की अवहेलना करते थे। बहुत से बैंक उन कम्पनियों के अंशों में विनियोग करते थे जिनमें उनके संचालकों का स्वार्थ निहित था। बैंकों की ऋण नीति भी ठीक नहीं थी। कुछ बैंकों के ऋण उनके साधनों के अनुपात से बिल्कुल अधिक थे। उनके कर्जदारों की स्थिति का पता लगाने का ढंग दोषपूर्ण था। इकाई बैंकिंग (Unit Bankiug) की प्रथा की पद्धति का प्रचलन भी बैंकों की असफलता का एक कारण था, जिसके फलस्वरूप बैंक बहुत छोटे छोटे होते थे। बहुत से बैंक अपनी शाखाओं पर उचित नियन्त्रण नहीं कर पाते थे। पूंजी का मूर्खता पूर्वक व्यय कर देना भी बैंकों की असफलता का कारण था।

सब से मुख्य कारण बैंकों की असफलता का यह था कि उस समय बैंकिंग कानून भी ढीला था। १९३६ के संशोधित

कम्पनी विधान के पहले बैंक की कोई विशेष परिभाषा नहीं थी। अतः बहुत सी गैर-जिम्मेदार संस्थाओं ने अपने नामों के आगे बैंक लगा कर जमा प्राप्त करना आरम्भ कर दिया और भोली जनता को फंसाने लगीं। ये बैंक अन्य व्यापार भी करते थे और जब देश में बैंकिंग संकट आया, तो सर्व प्रथम ऐसे बैंक ही फेल हुये। इसके अतिरिक्त बैंकों में पारस्परिक मेल जोल भी न था।

इतना होते हुये भी भारतीय बैंक इन सब संकटों से मोर्चा लेने में समर्थ हो गये और असफल केवल वे ही बैंक हुये, जो बहुत छोटे थे और जिनकी कार्य पद्धति त्रुटिपूर्ण थी।

संयुक्त पूंजी वाले बैंकों के कार्य—

ये बैंक व्यापारिक होते हैं और उन सब कार्यों को करते हैं जो व्यापार से सम्बन्धित होते हैं। इन बैंकों का मुख्य कार्य भिन्न खातों, जैसे मुद्दती, चालू और बचत खातों में जमा प्राप्त करना है और अल्पकाल के लिये ऋण देना, बिलों को भुनाना या क्रय करना, सरकारी प्रतिभूतियों में रुपया लगाना, नक़द साख देना, खेती की उपज को गाँव से बन्दरगाहों तक और बन्दरगाहों से विदेशों से आये हुये माल को देश के आन्तरिक बाज़ारों तक पहुंचाने में आर्थिक सहायता देना है। भारतीय बैंक बिलों को भुनाने और क्रय करने का कार्य कम करते हैं, क्योंकि भारत में अभी बिल बाज़ार का उदय ठीक ढंग पर नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त ये और भी छोटे मोटे कार्य करते हैं, जैसे बैंक ड्राफ्ट तथा ऋण पत्रों (Letters of Credit) द्वारा रुपया एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना, कमीशन के आधार पर अपने ग्राहकों की ओर से अंशों को क्रय विक्रय करना, मूल्यवान वस्तुओं को सुरक्षित रखना इत्यादि।

गाँव वालों के अशिक्षित होने के कारण और उनकी जमानत के पर्याप्त तरल रूप में न होने के कारण ये बैंक कृषि व्यवसाय में बहुत कम भाग लेते हैं और कृषि के धन्वे को सीधी आर्थिक सहायता नहीं देते। पहिले तो ये बैंक मुद्दती जमा पर ४ से ५ प्रतिशत तक और चालू खाते पर ८½ से १½ प्रतिशत तक सूद दे दिया करते थे। परन्तु अब अधिकांश बैंक चालू खाते पर बिल्कुल सूद नहीं देते और मुद्दती खाते पर भी सूद की दर घटा कर २ या ३ प्रतिशत कर दी गई है।

बड़े बड़े औद्योगिक केन्द्रों में जहाँ स्टाक बाज़ार की प्रतिभूतियाँ सुविधा से मिल जाती हैं, ये बैंक उनकी ज़मानत, पर ऋण दे देते हैं, किन्तु अन्य स्थानों में जहाँ ये प्रतिभूतियाँ नहीं मिलतीं, खेती की पैदावार पर ऋण दिया जाता है। पैदावार रखने के लिये बैंकों को अपने गोदाम रखने पड़ते हैं या ग्राहक के गोदाम में ही ताला लगाना पड़ता है। ये बैंक सोना चाँदी कपड़े इत्यादि पर भी ऋण देते हैं। कारखानों को उनके तैयार माल पर भी ऋण दिया जाता है और कभी कभी ये बैंक इमारतों तथा अन्य स्थायी सम्पत्ति पर भी ऋण दे देते हैं, परन्तु बहुत कम मात्रा में।

ये बैंक व्यक्तिगत ज़मानत पर भी ऋण देते हैं, परन्तु ऐसी स्थिति में ऋण लेने वाले को एक प्रोमिसरी नोट लिखना पड़ता है, जिस पर दो और अच्छे हस्ताक्षर होते हैं। हुण्डी भी दो हस्ताक्षर वाला पत्र ही मानी जाती है, क्योंकि उस पर, देशी बैंकरों का बेचान होता है। व्यापार की मात्रा को देखते हुये ऐसे ऋण कम ही होते हैं।

ऋण का सबसे अधिक प्रचलित ढंग नक़दी साख (Cash Credit) खाता खोलना है, जो बैंक और ग्राहक दोनों के ही

लिये सुविधाजनक होता है।

ये बैंक देश के आन्तरिक व्यापार के लिये अल्पकालीन साख का भी प्रबन्ध करते हैं, परन्तु विदेशी व्यापार, उद्योग धन्धों तथा कृषि को यह बहुत कम साख देते हैं।

पिछले कुछ वर्षों से भारत के कुछ बड़े बड़े बैंकों ने विदेशी विनिमय का कारबार भी आरम्भ किया था, परन्तु वह नहीं के बराबर है। विदेशी विनिमय बैंकों की पूंजी तथा सुरक्षा निधि बहुत बड़ी होती है और भारतीय बैंक इनका मुक़ाबला नहीं कर सकते। उद्योग धन्धों को ये बैंक थोड़े समय के लिये नक़द साख अथवा ऋण के रूप में सहायता देते हैं। अधिक समय के लिये ये बैंक उन्हें ऋण नहीं देते।

भारतीय व्यापारिक बैंक सरकारी प्रतिभूतियों में अपना रुपया विनियोग करना (invest) अधिक पसन्द करते हैं।

इनके अतिरिक्त भारतीय बैंक अन्य सहायक कार्य भी करते हैं। वे अपने ग्राहकों को आर्थिक प्रश्नों पर सलाह देते हैं, उन्हें व्यापार सम्बन्धी जानकारी कराते हैं, अपने ग्राहकों के लिये रुपया चुकाते और वसूल करते हैं और अपने ग्राहकों के प्रतिनिधि का काम करते है। कुछ बैंक सरकारी कम्पनियों तथा कारपोरेशनों द्वारा निकाले हुये ऋण का भी अभिगोपन (issue) करते हैं। वे अपने ग्राहकों को साख तथा आर्थिक स्थिति का ज्ञान अन्य व्यापारियों का कराते हैं।

बैंकों का वर्गीकरण

भारत में व्यापारिक बैंक चार वर्गों में विभक्त किये जा सकते हैं:—

(१) जिनकी पूंजी व सुरक्षित कोष ५ लाख रुपये या उससे अधिक है। इस वर्ग में सदस्य अथवा गैर सदस्य दोनों ही प्रकार के बैंक सम्मिलित हैं। सदस्य बैंकों की संख्या सन्

१६४८ के अन्त में १०० थी, जिसमें से ५ पाकिस्तान में थे। गैर सदस्य बैंकों की संख्या सन् १६४५ के अन्त में ६८ थी।

(२) जिनकी पूंजी और सुरक्षित कोष मिला कर एक लाख और पाँच लाख के बीच में है।

(३) जिनकी पूंजी और सुरक्षित कोष मिलाकर ५०,०००) और एक लाख रुपये के बीच में है।

(४) जिनकी पूंजी और सुरक्षित कोष ५०,०००) से कम है।

दूसरे, तीसरे और चौथे वर्गों में केवल असदस्य बैंक ही सम्मिलित हैं। इनमें से प्रथम दो की संख्या १६४५ में १७४ और ११४ थी और तीसरे की संख्या २४४ थी। चौथे वर्ग के बैंक वही हैं, जो १६३६ के कम्पनी विधान के पास होने से पहले स्थापित हो चुके थे।

द्वितीय महायुद्ध का वैंकिंग पर प्रभाव—

द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ का वैंकिंग पर यह प्रभाव पड़ा कि यहां बैंकों की बाढ़ सी आई और बहुत से नये बैंक स्थापित हुये और पुराने बैंकों ने अपनी शाखायें बढ़ाईं, क्योंकि बैंक स्थापित करने के लिये केवल अल्प-कालीन कोष की आवश्यकता थी जो यहाँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध था। यदि सरकार नई संयुक्त पूंजी वाले बैंकों के स्थापन पर रोक न लगाती, तो शायद यहाँ बैंकों की भरमार हो जाती। फिर भी जहाँ १६३६ में इम्पीरियल बैंक और विनिमय बैंकों को मिला कर, जो सदस्य बैंकों की संख्या ५१ थी वह १६४४ में बढ़ कर ७६ और १६४७ में ६४ हो गई। शाखाओं की संख्या बढ़ कर ३५१६ हो गई। इस वृद्धि के न होने पर भी प्रति शाख बड़े बैंकों में १५ लाख रुपये और साधारण छोटे बैंकों में ३ लाख रुपये से जमा का औसत कम

नहीं हुआ। इन बैंकों की १९४१ तक स्थिति पूर्ववत ही रही, परन्तु जापान के युद्ध में सम्मिलित होते ही, विनिमय बैंकों की आनुपातिक जमा गिरने लगी। उसी समय इम्पीरियल बैंक ने विनिमय का कार्य आरम्भ कर दिया और विनिमय बैंकों की हानि इम्पीरियल बैंक के लिये लाभदायक सिद्ध हुई। १९४३ में भारतीय व्यापारिक बैंकों की जमा का अनुपात तेजी से बढ़ गया। वह १९४३ में १९३९ की अपेक्षा ७ प्रतिशत बढ़ कर ४६ प्रतिशत हो गया। 'बड़े पाँच' की जमाओं का अनुपात १९४२ में ८० प्रतिशत हो गया, किन्तु १९४३ में नये बैंक खुल जाने के कारण यह ६० प्रतिशत रह गया।

युद्धकाल में बैंकों की जमाओं में भी पर्याप्त वृद्धि हुई। इम्पीरियल बैंक, विनिमय बैंक तथा अन्य सदस्य बैंकों की कुल जमा, युद्ध आरम्भ होने के समय २३८ करोड़ रुपये थी। वह १९४४ में ७८२ करोड़ रुपये हो गई और जनवरी १९४८ में १०८० करोड़ रुपये के लगभग हो गई। परन्तु पोस्ट आफिस बचत बैंकों और कैश-सर्टिफिकेटों में कमी हो गई। बैंकों में जमा की वृद्धि का कारण मुद्रा का विस्तार और बैंकों का नई शाखायें खोलकर नये क्षेत्रों में प्रवेश करना था। पोस्ट आफिस बचत बैंकों की जमा में कमी का कारण मँहगाई था, जिसके कारण मध्यम वर्ग के व्यक्ति कुछ बचा नहीं सकते थे। युद्धकाल में मुद्दती जमा तो कम बढ़ी, परन्तु चालू जमा बहुत अधिक बढ़ गई, क्योंकि जनता मंहगाई के कारण अपनी बचत को तरल रूप में रखना चाहती थी और व्यापारी अपनी बचत को अपने कारखानों की कार्यशील पूंजी को बढ़ाने में लगाते थे, जिससे वे उन्हीं कारखानों से अधिक उत्पादन कर सकें।

युद्धकाल में बैंकों की चुकता पूंजी और रक्षित कोष जमाओं की अपेक्षा बहुत घट गये। इम्पीरियल बैंक की पूंजी और रक्षित कोष १२-८ प्रतिशत से घट कर ४-५ प्रतिशत रह गये। फलस्वरूप बैंको को अपनी पूंजी बढ़ानी पड़ी।

उद्योग धन्धों और व्यापार के लिये ऋण की माँग में युद्ध काल में कमी आगई, परन्तु सरकार ने ऋण निकालने आरम्भ कर दिये। बैंक जो १६३६ में ५८ प्रतिशत इन ऋणों में लगाते थे, १६४५ में उन्होंने अपनी कुल जमाओं का केवल २० प्रतिशत इस रूप में लगाया। युद्ध के साथ साथ व्यापार और उद्योग धन्धों की ऋण की माँग कम होती गई और बैंकों ने अपने कोष को सरकारी प्रतिभूतियों में अधिक लगाना आरम्भ कर दिया। वे नक़द कोष का परिमाण भी बढ़ाने लगे और उनकी तरल सम्पत्ति का अनुपात बढ़ गया। फलस्वरूप बैंकों को सूद की आय घट गई और उन्होंने जमाओं पर भी सूद की दर घटा दी।

युद्धकाल में बैंकों की कुछ त्रुटियाँ भी दृष्टिगोचर हुईं और भारत सरकार ने कम्पनी एक्ट में कुछ सुधार भी किये। बैंकों की वृद्धि के कारण बैंकों के लिये अनुभवी और योग्य कर्मचारियों की भी कमी पड़ गई। नये बैंकों ने पुराने बैंक के कर्मचारियों को अधिक वेतन देकर अपने यहाँ रख लिया। बैंकिग शिक्षा के प्रचार की आवश्यकता प्रतीत होने लगी।

युद्ध समाप्त हो जाने पर भी देश में मुद्रा स्फीति की स्थिति बनी रही। बैंकों के साधन अत्यधिक बढ़ गये। उनके पूंजी विनियोग, ऋण तथा शाखाओं, सभी में असाधारण गति देखने में आई। बैंकों की सामयिक जमायें (Time Deposits) १६४८ में ३४४ करोड़ तक पहुँच गईं, परन्तु उसके बाद स्थिति

खराब हो गई। इसका मुख्य कारण देश का विभाजन था। पंजाब, सीमा प्रान्त तथा सिंध इत्यादि में हत्याकाड हुआ और उत्तर पश्चिम भारत के बैंकों को बहुत हानि उठानी पड़ी। वहाँ का व्यापार चौपट हो गया और बहुत सा रुपया डूब गया। बहुत से बैंकों ने अपनी शाखायें पाकिस्तान में बन्द कर दीं और अपने प्रधान कार्यालय भारत में ले आये।

बैंकों की अमानतों में १९४९ में भारी कमी हो गई और अगाऊ धन की माँग के कारण मुद्रा बाज़ार में धन की भी कमी हो गई। इनके निम्न लिखित कारण थे:—

(अ) भारतीय व्यापार तथा उद्योग धन्वे अपनी पिछली बचत से काम लेने लगे और उन्होंने बैंक से अपनी जमा निकाल ली।

(ब) युद्ध के कारण आय का विभाजन ऐसे कम सम्पन्न व्यक्तियों के हाथ में आ गया, जो अपनी बचत बैंक में नहीं रखते थे।

(स) पाकिस्तान से आने वाले शरणार्थियों की बुरी दशा थी और उन्होंने अपनी आवश्यकताओं के लिये बचत को बैंकों से निकालना आरम्भ कर दिया।

(द) आयातों का मूल्य चुकाने तथा रुई पटसन खरीदने के लिये बैंकों द्वारा दिये ऋणों में वृद्धि हुई।

(इ) विभाजन के बाद दूसरा संकट बैंकों पर पश्चिमी बंगाल में आया, जिसके फलस्वरूप १९५० में तीन बैंकों—नाथ बैंक, बैंक आफ हिन्दुस्तान तथा पायोनियर बैंक को भुगतान बन्द करना पड़ा। इस कारण जनता का बैंकों पर से विश्वास उठ गया और वह दूसरे बैंकों से भी रुपया निकालने लगी

जिससे एक अजीब परिस्थिति उत्पन्न हो गई। रिजर्व बैंक ने इस समय अन्य बैंकों की सहायता की।

भारतीय बैंक ने इन सब परिस्थितियों का भली प्रकार से सामना किया। विस्तार का युग अब जाता रहा है और बैंक अब अपने आपको ठोस बनाने की ओर अधिक ध्यान दे रहे हैं, जिसकी देश में बड़ी भारी आवश्यकता है।

भारतीय व्यापारिक बैंकों के दोष तथा उनकी कठिनाइयाँ

सर्व प्रथम तो इन बैंकों को भारत के स्वतन्त्र होने से पूर्व सरकार से कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। प्रान्तीय रियासती तथा अन्य स्थानीय सरकारों ने अपना रुपया इन बैंकों में नहीं रक्खा, जिसके कारण जनता का विश्वास उनमें नहीं जमने पाया।

(२) सन् १९३५ के पूर्व देश में कोई केन्द्रीय बैंक न होने कारण बैंकों को संकट के समय न तो ठीक नेतृत्व तथा सहायता मिल सकती थी और न उनमें पारस्परिक सहयोग ही स्थापित हो पाता था। किन्तु रिज़र्व बैंक की स्थापना के बाद यह कठिनाई दूर हो गई।

(३) विदेशी विनिमय बैंकों तथा इम्पीरियल बैंक की प्रतिस्पर्द्धा भी इनकी उन्नति के मार्ग में एक बाधा थी। यह बैंक विदेशी विनिमय बैंकों की प्रतियोगिता में नहीं ठहर सके, क्योंकि उनके पास विशाल पूंजी और विशाल साधन थे।

(४) बहुत से भारतीय धन्धे तथा भारतीय व्यापार विदेशियों के हाथ में थे और वे विदेशी बैंकों को ही प्रोत्साहन देते थे। परन्तु अब स्थिति बदल गई है और यह कठिनाई भी शनैः शनैः दूर हो रही है।

(५) यही नहीं कि विदेशी व्यापारी स्वयं अपना सम्बन्ध विदेशी बैंकों से करते बल्कि ये उन भारतीय व्यापारियों को भी

जो उनके एजेन्ट का काम करते थे और जिनका विदेशी बीमा तथा जहाज़ी कम्पनियों से कारबार होता था, विदेशी बैंकों से कारोबार करने पर विवश करते थे।

(६) भारतीय बैंकों को विदेशी व्यापार से तो हाथ धोना ही पड़ा। इसके अतिरिक्त उन्हें देश के आन्तरिक व्यापार में भी विदेशी बैंकों को प्रतियोगिता सहनी पड़ी। इन विदेशी बैंकों ने देश के अन्दर भी अपनी शाखायें खोल लीं और अपनी सुदृढ़ आर्थिक स्थिति के कारण सफलतापूर्वक देश के आन्तरिक व्यापार में भारतीय बैंकों से प्रतिस्पर्द्धा करने लगे।

(७) पिछले बैंक संकट के कारण, जो भारत में बहुत से बैंक फेल हो गये थे, उससे उनमें से जनता का विश्वास उठ गया और उनकी उन्नति में रुकावट पड़ी।

(८) भारत की आर्थिक उन्नति न होने के कारण भी बैंकों की उन्नति में बाधा पड़ी।

(९) इनके अतिरिक्त भारत में हिन्दू तथा मुसलमानों के पैतृक सम्पत्ति के उत्तराधिकार सम्बन्धी क़ानून इतने उलझे हुये हैं कि बैंक उस सम्पत्ति की ज़मानत पर ऋण देने से हिचकते हैं।

(१०) भारतीय जनता में बैंकिंग आदत का अभाव है और वह अपनी बचत को अधिकतर जमीन जायदाद अथवा सोने चाँदी के आभूषणों में लगाना अधिक पसन्द करती है। आगामी शिक्षा के साथ साथ यह कमी भी दूर हो जावेगी।

(११) भारतीय बैंकों को विदेशी बैंकों के प्रभाव के कारण समाशोधन गृह के सदस्य बनने में बहुत कठिनाई पड़ती है, परन्तु यह कठिनाई भी अब धीरे धीरे दूर हो रही है।

(२२) भारतीय व्यापारिक बैंकों ने अधिकतर अपनी शाखायें बड़े बड़े व्यापारिक केन्द्रों में ही खोल रखी हैं और वे नये स्थानों पर शाखायें नहीं खोलना चाहते, जिससे आपस में गला घोंट प्रतियोगिता (Cut-throat Competition) होती है और बहुत से स्थान बैंकिंग सुविधायें से वंचित रह जाते हैं। भारत के बड़े बड़े ग्रामों में भी बैंकों की शाखायें नहीं हैं। इसीलिये भारतीय ग्रामीण बैंकिंग जांच कमेटी (Rural Banking Enquiry Committee) ने ग्रामों में व्यापारिक बैंकों को शाखायें खोलने का सुझाव रक्खा है।

उपर्युक्त कठिनाइयों और दोषों को दूर करने के लिये निम्न सुझाव दिये जाते हैं। बिना इन दोषों को दूर किये हुये न तो भारतीय बैंक उन्नति कर सकते और न भारत का कृषि व्यापार व उद्योग धन्धे ही।

(१) देश की सरकार को व्यापारिक बैंकों को अपनाना चाहिये और उन्हें करों में सुविधा देकर, उनसे लेन देन का सम्बन्ध स्थापित कर तथा अन्य सुविधायें देकर उन्हें प्रोत्साहन देना चाहिये।

(२) विदेशी बैंकों के खुलने और काम करने पर प्रतिबन्ध लगा देने चाहिये जिससे वे भारतीय बैंकों के साथ प्रतिस्पर्द्धा न कर सकें।

(३) इम्पीरियल बैंक को भारतीय बैंकों के साथ होड़ न करके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को आर्थिक सहायता पहुँचानी चाहिये।

(४) भारत सरकार को हिन्दू तथा मुसलमान के पैतृक सम्पति के उत्तराधिकार (Inheritance of Ancestoral

Property) सम्बन्धी कानून में परिवर्तन कर देने चाहिये ताकि अचल संपत्तियों पर ऋण दिये जा सकें। अधिकतर शहरों में सादे रेहन की आज्ञा दे देनी चाहिये।

(५) इन बैंकों को मितव्ययता से काम लेना चाहिये। उन्हें अपने नियम के पालन में बहुत सख्ती नहीं करनी चाहिये और बिना सोचे विचारे बहुत सी शाखायें भी नहीं खोलनी चाहिये।

(६) भारतीय बैंकों को अपनी कार्य पद्धति में भी सुधार करना चाहिये। उनको उन्हीं भाषाओं में काम करना चाहिये जो उनके ग्राहक जानते हैं। देशी बैंकरों से अधिक सम्पर्क बढ़ाना चाहिये और आधुनिक यन्त्रों का प्रयोग करना चाहिये।

(७) भारतीय बैंकों को जनता की सुविधा का पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिये। इनको कृषि तथा व्यापार बिलों के प्रयोग को प्रोत्साहन देना चाहिये। इनको वैयक्तिक ऋण अधिक देने चाहिये और जनता में चैक द्वारा ही लेन देन की भावना उत्पन्न करनी चाहिये। इन्हें अपने ब्याज दरों में भी अधिक परिवर्तन नहीं करने चाहिये।

(८) भारतीय बैंकों को आपस में सहयोग से कार्य करना चाहिये। छोटे छोटे बैंकों का एकीकरण कर लेना चाहिये और समस्त बैंकों को संगठित होकर एक अखिल भारतीय बैंक संघ स्थापित करना चाहिये, जिसकी सारी बैंकिंग संस्थायें सदस्य बनें।

(९) भारतीय बैंकों को केवल अनुभवी ईमानदार तथा योग्य कर्मचारियों की ही नियुक्ति करना चाहिये। संचालक भी वे ही व्यक्ति होने चाहिये, जो बैंकिंग सिद्धान्तों को समझते

हों। देश में उचित वैंकिंग शिक्षा का प्रचार होना चाहिये। विश्वविद्यालयों में जो वैंकिंग की शिक्षा दी जाती है, उसे अधिक व्यवहारिक (Practical) बनाने की आवश्यकता है।

(१०) रिजर्व वैंक को आवश्यकता पड़ने पर बिना किसी दुविधा के वैंकों की सहायता करनी चाहिये।

(११) रिजर्व वैंक की संरक्षण में इन वैंकों को ग्रामों में अपनी शाखायें खोलनी चाहिये और रिजर्व वैंक को इस सम्बन्ध में वैंकों को रुपया भेजने व मंगाने तथा कृषि बिलों की पुनः कटौती की सुविधायें प्रदान करनी चाहिये।

(१२) भारत में भी 'एक व्यक्ति एक वैंक' का सिद्धान्त पालन करना चाहिये। इंग्लैंड की सियेद (Syed's) और अमरीका की ब्रैड स्ट्रीट (Brad Stret's) तथा डून (Dun's) जैसी संस्थायें स्थापित कर वैंक और ग्राहकों को एक दूसरे के निकट लाना चाहिये।

(१३) वैंकों को ग्रामों में वैंकिंग पद्धति के प्रति जागृति पैदा करनी चाहिये, जिससे वहां का धन वैंकों में जमा हो और देश की उन्नति हो। रिजर्व वैंक के कृषि साख विभाग की सहायता से इन्हें गांवों में नई नई शाखायें खोलनी चाहिये और वहां वैंकिंग का प्रचार करना चाहिये।

रिजर्व वैंक तथा व्यापारिक वैंकों का सम्बन्ध

इनका सम्बन्ध रिजर्व वैंक विधान १९३४ और भारतीय वैंकिंग एक्ट १९४४ के द्वारा निश्चित होता है। रिजर्व वैंक एक्ट के अनुसार देश की वैंकों को दो वर्गों में विभक्त कर दिया गया है। प्रथम तो सदस्य वैंक, जो दूसरी तालिका में रखे गये हैं और जिनकी प्राप्त पूंजी तथा कोष ५ लाख

रुपये से कम नहीं है। द्वितीय असदस्य बैंक, जिनका नाम इस तालिका में नहीं है। सदस्य बैंकों को अपनी मांग दायित्व का, ५ प्रतिशत और समावधि दायित्व का २ प्रतिशत रिजर्व बैंक के पास जमा करना आवश्यक है और प्रति सप्ताह अपनी स्थिति का विवरण रिजर्व बैंक के पास जमा करना पड़ता है। रिजर्व बैंक इन बैंकों को संकट काल में उधार देता है, उनका रुपया निशुल्क एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजता है, बिलों की पुनः कटौती करता है, सलाह देता है और अन्य सुविधायें प्रदान करता है। असदस्य बैंकों को भी रिजर्व बैंक कुछ सुविधायें देता है। परन्तु १९४९ के नये कानून के अनुसार रिजर्व बैंक को सब बैंकों के नियन्त्रण का अधिकार मिल गया है। भविष्य में कोई भी बैंक रिजर्व बैंक से अनुज्ञापत्र (Licence) लिये बिना न कोई बैंकिंग कार्य कर सकेगा और न कोई शाखा खोल सकेगा। रिजर्व बैंक इन बैंकों का पूरी तरह निरीक्षण कर सकेगा और इसको उनके पर्यवेक्षण एकीकरण तथा विलीनीकरण का भी अधिकार मिल गया है। संकट के समय यह उनकी सहायता करेगा।

अभ्यास-प्रश्न

१—भारतीय बैंकिंग की पिछड़ी हुई दशा के कारण बताइये। इसको अधिक लोक प्रिय बनाने के लिये भारतीय संयुक्त पूंजी वाले बैंकों ने अब तक क्या किया।

२—भारतीय बैंकिंग के दोषों का विवेचन कीजिये तथा उनको दूर करने के लिये अपने सुझाव दीजिये।

३—द्वितीय महायुद्ध का भारतीय बैंकिंग पर क्या प्रभाव पड़ा? बतलाइये।

४—सन् १९४० के बाद भारत में इतने अधिक बैंकों की स्थापना क्यों हुई? भारत में बैंकों की बाढ़ हितकर सिद्ध हुई या अहितकर?

५—'भारत में आधुनिक बैंकों की उन्नति बीसवीं सदी से ही आरम्भ हुई।' इस कथन की पुष्टि कीजिये।

६—भारत में बैंकों पर समय समय पर संकट आने के क्या कारण हैं? विस्तार पूर्वक लिखिये।

ग्यारहवां अध्याय

व्यापारिक बैंकों के कार्य

व्यापारिक बैंकों के तमाम कामों को चार शीर्षक में बांटा जा सकता है :—

(१) जमा लेना (२) ऋण देना (३) आढ़त के काम करना (४) अन्य कार्य।

जमा लेना

व्यापारिक बैंक जनता का रुपया भिन्न भिन्न प्रकार के खातों में जमा करती हैं। इससे जनता में मितव्ययिता का प्रचार होता है। खातों में चालू खाता और स्थायी खाता मुख्य हैं। पहले पहल जो जमा होती थी स्थायी खातों में होती थी। स्थायी खाता वह खाता है, जिन में रकम एक निश्चित अवधि के लिये जमा की जाती है और उस अवधि के पूर्व नहीं निकाली जा सकती। कभी कभी यह सूचनादेकर अवधि के पूर्व भी निकाली जा सकती है। ऐसी जमायें अमरीका में समय के लिये प्राप्त जमा कहलाती हैं। इन पर समय के अनुसार व्याज दिया जाता है और इन जमाओं का बैंकर अच्छा उपयोग

कर सकता है, क्योंकि वह जानता है कि निश्चित अवधि से पहले उसे उनका रुपया नहीं लौटाना पड़ेगा। चालू खाता वह खाता हैं जिसमें रकम कभी भी जमा हो सकती है और जब चाहे निकाली जा सकती है। चालू खाते में से रकम चैक द्वारा निकाली जाती है, और ऐसी जमा को मांग पर वापस होने वाली जमा कहते हैं। चालू खाते व्यापारियों के बड़े काम के हैं। बड़े बड़े बैंक चालू खातों की रकम पर यदि वह एक निश्चित रकम से नीचे चली जाती है, तो कोई सूद नहीं देते। बल्कि बैंक ग्राहकों से कमीशन लेते हैं, जो प्रासंगिक व्यय (Incidental Charges) कहलाता है।

कुछ देशों में व्यापारिक बैंक बचत खातों में भी रुपया जमा करते हैं, यद्यपि यह काम उनके उपयुक्त नहीं है। इसका उद्देश्य थोड़ी आय वाले व्यक्तियों में मितव्ययिता का प्रचार करना है। इन खातों में एक निर्धारित रकम से अधिक रकम जमा नहीं करते। कोई भी व्यक्ति अपने नाम से या किसी नाबालिग के नाम से या किसी ऐसे व्यक्ति के नाम से जिसका वह अभिभावक नियुक्त हुआ हो, बैंक में बचत खाता खोल सकता है। कभी कभी निर्धारित रकम से अधिक रकम निकालने के लिये कुछ दिनों की सूचना देनी पड़ती है।

गोलक खाता (Home-Safe Account) भी एक प्रकार का बचत खाता है। इसमें जमा कराने वाले को एक गोलक दे दी जाती है, जिस में वह समय समय पर पैसे डालता रहता है। गोलक भर जाने पर वह उसे बैंक के पास ले जाता है जो उसे खोलकर रकम को निकाल कर ग्राहक के खाते में जमा कर देती है, और गोलक ग्राहक को वापस कर दिया जाता है।

जमा के भेद

बैंक में जमा कई प्रकार से प्राप्त होते हैं। ग्राहक बैंक में नक़दी भी जमा करा सकते हैं और नक़दी मिलने के अधिकार भी, जैसे बिल, चैक इत्यादि। बैंक इनका भुगतान प्राप्त कर लेने पर इनको ग्राहकों के खातों में जमा कर लेते हैं। जमा ऋण देने और बिलों को भुनाने से भी सृजन की जाती है। आज कल सृजित जमा की रकम अन्य प्रकार से उत्पन्न हुई जमा से अधिक होती है। जमा की रकम जो बैंक के चिट्ठे में होती है यह नहीं बतलाती कि बैंक को कितनी नकदी प्राप्त हुई परन्तु यह इस बात का द्योतक है कि बैंक ने कितना व्यवसाय किया है और उसका कितना उत्तरदायित्व है। यह जमा की रकम में केवल उस साख की द्योतक हैं, जो बैंकों ने उस नकद विनिमय के बिलों और ऋण के बदले में उत्पन्न कर ली है, जो उसके चिट्ठे में सम्पत्ति और पाउने की तरफ दिखलाई गई हैं। जब ग्राहक को अल्पकाल के लिये ऋण की आवश्यकता होती है' तो वह इस को अधिनिकास (overdraft), नक़द साख (Cash credit) द्वारा अथवा बिल भुना कर लेता है। बैंक इन ऋणों की रकम ग्राहक को नक़द नहीं देता है, परन्तु उसको चैक काटने का अधिकार देता है और इस प्रकार जमा सृजन हो जाती है। जब ग्राहक नकदी जमा करता है, तो वह इस अधिकार को स्वयं प्राप्त करता है और जब बैंक उसे ऋण देता है, तो यह अधिकार उसे बैंक द्वारा प्राप्त होता है। परन्तु बैंक की जमा सृजन करने की शक्ति उसकी नक़दी के अनुसार सीमित रहती है। कीन्स के अनुसार ऋण जमा के बच्चे हैं और जमा ऋण

के बच्चे हैं। * पाश्चात्य देशों में केवल १० प्रतिशत जमायें नक़दी के रूप में होती हैं। बैंक की जमा सृजन करने की शक्ति नकदी के ऊपर निर्भर तो रहती है, फिर भी वह नकदी से कई गुनी रकम तक जमा सृजन कर सकती हैं, क्योंकि वह जानती है कि नक़द रुपये की माँग बहुत कम होती है और अधिकतर लेन देन चैक द्वारा होते हैं। रुपये को एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजने में भी जमा प्राप्त हो जाती है, क्योंकि रुपया भेजने वाले को बैंक में रुपया जमा कराना पड़ता है। इस तरह बैंक की जमा बढ़ जाती है। रुपया पाने वाला भी बहुधा रुपया बैंक में ही छोड़ देता है और इस प्रकार जमा बढ़ा देता है।

ऋण देना

व्यापारिक बैंकों का दूसरा मुख्य कार्य ऋण देना है। व्यापारिक बैंक दीर्घकालीन ऋण नहीं देते। वे केवल अल्पकाल के लिये ही ऋण देते हैं क्योंकि उनकी जमायें थोड़े समय के लिये ही होती हैं। इनके ऋण भी अधिकांश ग्राहकों को चेक काटने के अधिकार के रूप में होते हैं। वे प्रायः नक़द ऋण नहीं देते। ऋण निम्न तरीकों से सूद पर दिये जा सकते हैं:—

(अ) मुद्दती उधार खाता (Loans and Advances)—यह ऋण एक तरफ तो ग्राहकों के खातों में डेबिट कर दिये जाते हैं और दूसरी ओर उनके चालू खाते में क्रेडिट कर दिये जाते हैं, जिससे ग्राहकों को चैक काटने का अधिकार मिल जाता है। इस ऋण पर पूरी रकम पर ब्याज लगाया जाता

* Loans are children of deposits & deposits are the children of loans.

है और यह ऋण उन चीजों की जमानतों पर दिये जाते हैं, जो सुरक्षित हैं, बाजार में आसानी से बिक सकती हैं और जिनके भुगतान की अवधि थोड़ी है। यह जमानतें निम्न लिखित हो सकती : सोना चाँदी अथवा अन्य बहुमूल्य पदार्थ, स्टाक बाजार की प्रतिभूतियाँ, सरकारी प्रतिभूतियाँ, जीवन बीमा इत्यादि। कभी कभी ऋण लेने वालों की वैयक्तिक जमानत भी ले ली जाती है अथवा एक संयुक्त प्रण पत्र अथवा दो नाम वाला साख पत्र भी स्वीकार कर लिया जाता है।

(ब) अधिविकर्ष—(Overdraft) इसमें ग्राहकों को जमा किये हुये धन से अधिक धन निकालने की आज्ञा मिल जाती है। निकाली जाने वाली रकम और उसकी अवधि पहले से ही तय हो जातो है। रकम चैक द्वारा निकाली जाती है और ब्याज केवल निकाले हुये धन पर ही देना पड़ता है। अतः यह पद्धति मुद्दती उधार खाते की अपेक्षा अधिक लाभप्रद है। परन्तु इस पर ब्याज की दर ऊँची होती है। ऋण जमानत तथा बिना जमानत दोनों ही प्रकार से लिया जा सकता है।

(स) नक़द साख—(cash credit)— यह प्रणाली सर्व प्रथम स्काटलैंड में चालू की गई थी और वह उत्पादन बढ़ाने वाली सिद्ध हुई। हमारे देश में भी यह प्रणाली बैंकों को बहुत प्रिय है। परन्तु यहाँ पर बैंक ऋण केवल वैयक्तिक जमानतों पर न देकर, ऐसे प्रतिज्ञा पत्रों पर देते है, जिन पर ऋण लेने वाले के हस्ताक्षर हों और जो हिस्सों, माल तथा स्टाकों से सुरक्षित हो। ऋण देते समय उचित छूट रख ली जाती है। इसमें भी अधिविकर्ष की तरह उसी रकम पर ब्याज देना पड़ता है जितनी के लिये वह ऋणी है और किसी भी

समय वह अपना ऋण न्यूनतम ब्याज देकर चुका सकता है। नक़द साख में एक उलट चालू खाता (Inverse current account) खोला जाता है परन्तु अधिविकर्ष में पुराने खाते में ही सब काम हो जाता है।

(द) बिलों को भुनाना (Discounting of bills)

बिल भुनाना भी ऋण प्राप्त करने का एक उत्तम तरीका है। इसका अधिकारी जब चाहे बिल भुना सकता है और बैंक से बिल का वर्तमान मूल्य प्राप्त कर सकता है। बिल के मूल्य और उसके वर्तमान मूल्य का अन्तर बैंक का लाभ हो जावेगा। व्यापार में बिलों द्वारा भुगतान से बहुत लाभ हैं। प्रथम तो, इनके कारण मुद्राओं और नोटों की कम आवश्यकता पड़ती है। दूसरे, भुगतान की तिथि निश्चित हो जाती है और यह एक प्रकार के साक्षी का काम देते हैं। कर्ज़दार ऋण से नहीं मुकर सकता। बिल स्वयं ही ऋण का द्योतक हो जाता है। इसके अतिरिक्त बिल को इसका अधिकारी अपने ऋणदाता को भुगतान में दे सकता है और यदि उसे रुपये की आवश्यकता है, तो बैंक से भुना सकता है। यह एक ऐसा तरीका है, जिसमें ऋण कोई अन्य जमानत के बिना ही प्राप्त हो जाता है, केवल लिखने वाले और ऊपर वाले धनी की वैयक्तिक जमानत रहती है।

बिलों पर ऋण देना बैंकों के लिये बहुत ही लाभप्रद है:—

(१) बिल की रकम हमेशा निश्चित रहती है। अन्य जमानतों की रक़में गिर भी जाती हैं और बैंक को हानि हो सकती है।

(२) बिल की अवधि पूरी होने पर उसका रुपया निश्चित ही मिल जाता है। यदि ऊपर वाला धनी बिल का

भुगतान न भी करे, तो दूसरे धनी, जो उत्तरदायी होते हैं उनसे रकम वसूल हो जाती है।

(३) अच्छे बिल आवश्यकता के समय केन्द्रीय बैंक से फिर भुनाये जा सकते हैं।

(४) इनमें ब्याज बैंक को बिल भुनाते समय ही प्राप्त हो जाता है, जब कि अन्य ऋणों में वह कुछ समय व्यतीत होने पर मिलता है।

(५) यदि बैंक मैनेजर बिलों को इस प्रकार लेता है कि उनमें से कुछ का भुगतान बराबर होता रहे, तो उसे बराबर रक़म मिलती रहती है।

परन्तु बिलों के लेन देन में बैंक को बहुत सावधानी से काम करना चाहिये। बैंक को केवल वास्तविक तिजारती बिलों में ही लेन देन करना चाहिये। बनावटी बिलों से जहाँ तक हो सके, दूर रहना चाहिये, क्योंकि यह वर्तमान सम्पत्ति के ऊपर नहीं वरन् भविष्य में उत्पन्न होने वाली सम्पत्ति पर किये जाते हैं और भविष्य में आशा-पूर्ण न होने पर बैंकर को हानि होने की सम्भावना रहती है।

(६) बैंक अपने ग्राहकों के लिये आढ़त के काम भी करते हैं। वे उनके चैक, बिल, प्रण पत्र, लाभ की बंटनी के पत्रों, चन्दे, किराया, आयकर, बीमा का प्रीमियम आदि की वसूली व भुगतान करते हैं। वे अपने ग्राहक का साख परिचय भी देते हैं और उनकी तरफ से स्टाक तथा अन्य प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय करते हैं। वे उनके बिलों पर स्वीकृति कर देते हैं, उन्हें बैंक ड्राफ्ट और साख पत्र लिख कर देते हैं और धन राशि को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं। वे अपने ग्राहकों को नये व्यापारियों की आर्थिक स्थिति का

ज्ञान कराते हैं, धरोहर का कार्य करते हैं और कम्पनियों के हिस्से इत्यादि बेचने में सहायता देते हैं।

(४) अन्य कार्य—उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त व्यापारिक बैंक कुछ अन्य कार्य भी करते हैं, जैसे मूल्यवान वस्तुओं, सम्पत्ति, गहने इत्यादि को सुरक्षित रखना। कभी कभी यह बैंक विदेशी व्यापार में भी बिलों के द्वारा आर्थिक सहायता देते हैं।

अभ्यास-प्रश्न

(१) एक व्यापारिक बैंक क्या क्या कार्य करता है? भली प्रकार समझाइये।

(२) एक व्यापारिक बैंक का काल्पनिक चिट्ठा देकर उसकी मुख्य मुख्य बातों पर प्रकाश डालिये।

(३) भारतीय संयुक्त पूंजी वाले बैंक किस प्रकार का व्यापार करते हैं? उनकी कठिनाइयाँ और दोष बतलाते हुये, उनको दूर करने के सुझाव दीजिये।

(४) एक स्वदेशी बैंक और आधुनिक बैंक में क्या अन्तर है? पूरी तरह समझाइये।

(५) भारत में व्यापारिक बैंकों का वर्गीकरण किस प्रकार किया गया है? प्रत्येक का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

(६) व्यापारिक बैंकों का रिजर्व बैंक से क्या सम्बन्ध है? क्या बैंकिंग के नये विधान से इसमें कोई परिवर्त्तन आ गया है? समझाइये।

बारहवां अध्याय

औद्योगिक अर्थ व्यवस्था तथा औद्योगिक बैंक

हमारे देश में उद्योग धन्धों की उन्नति की बहुत आवश्यकता है। बिना औद्योगिक उन्नति के जनता का जीवन स्तर ऊंचा होना और देश का समृद्धिशाली होना असम्भव है। परन्तु औद्योगिक उन्नति और प्रगति के लिये पूंजी की आवश्यकता है। साधारणतया संगठित उद्योगों के लिये दो प्रकार की पूंजी की आवश्यकता होती है—(१) स्थायी पूंजी (Fixed or Block capital) और (२) कार्य शील पंजी (Working-Capital). स्थायी पूंजी की आवश्यकता ज़मीन खरीदने, मकान बनाने तथा मशीनें और अन्य टिकाऊ वस्तुयें खरीदने या बनाने के लिये होती है। यह पूंजी पुराने कारखानों तथा उद्योग धन्धों के प्रसार तथा पुनः स्थापन के लिये भी काम में आती है। यह पूंजी प्रायः अचल स्थायी और टिकाऊ होती है और उत्पादन में इससे बार बार काम लिया जा सकता है। यह पूंजी उद्योग-धन्धों की दीर्घकालीन आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। कार्य शील पूंजी कच्चे माल को पक्के माल में बदलने के काम आती है। यह कच्चे माल तथा अन्य आवश्यक वस्तुयें खरीदने, माल तैयार को बाज़ार तक पहुँचाने मजदूरी और अन्य खर्चों के देने के लिये होती है। यह पूंजी

प्रायः चल तथा अस्थिर होती है और उत्पादन में केवल एक ही बार काम आती है। यह पूंजी उद्योग धन्धों की अल्पकालीन आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन आवश्यकताओं अथवा स्थायी पूंजी और कार्य शील पूंजी के बीच का अनुपात धन्धों के अनुसार भिन्न भिन्न होता है। उत्पादन जितना ही जटिल (Complicated) होगा उतना ही अधिक उसे स्थायी पूंजी की आवश्यकता होगी। पाट, रुई, लोहे और स्टील आदि के उद्योग धन्धों के लिये बहुत अधिक स्थायी पूंजी की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत औषधियां, प्लास्टिक, शीशे, चद्दरों और विशेषतः घरेलू धन्धों में बहुत कम स्थायी पूंजी, किन्तु अत्यधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है।

इनके अतिरिक्त उद्योग धन्धों को प्रायः एक वर्ष से पांच वर्ष तक की अवधि के लिये मध्य-कालीन साख की भी आवश्यकता पड़ती है। अतः उद्योग धन्धों को दीर्घकालीन, मध्यकालीन और अल्पकालीन, तीन प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पूंजी की आवश्यकता होती है।

भारत में पूंजी प्राप्त करने की समस्यायें यूरोपियन देशों से बिल्कुल भिन्न हैं। यहां सिर्फ दीर्घकालीन साख की ही समस्या नहीं है, परन्तु कार्य शील पूंजी प्राप्ति के अधिक खर्च की भी समस्या है। भारतीय औद्योगिक अर्थ समस्या को सुलझाने के लिये विभिन्न कमीशन तथा कमेटियों ने अपने अपने सुझाव रक्खे हैं। १६१६-१८ में औद्योगिक कमीशन ने इस समस्या को हल करने के लिये औद्योगिक बैंकों की स्थापना की सिफारिश की थी। कमीशन का सुझाव था कि जब तक औद्योगिक बैंकों की स्थापना न हो व्यापारिक बैंक ही

उद्योगपतियों की सहायता सरकार की गारण्टी या अन्य जमानत पर करें। कमीशन ने छोटे तथा घरेलू उद्योग धन्धों को विशेष आर्थिक सहायता देने, औद्योगिक मंत्रणा देने, औद्योगिक उच्च शिक्षा दिलाने इत्यादि, के लिये प्रत्येक प्रान्त में उद्योग विभाग की स्थापना की सिफारिश की थी। पंजाब, मद्रास, बिहार, उड़ीसा आदि प्रान्तों तथा कुछ रियासतों में उद्योग धन्धों की सहायता के लिये विधान बनाये गये, परन्तु इन से कुछ अधिक लाभ न हुआ और अर्थ समस्या पहले जैसे ही बनी रही।

इस समस्या के हल पर केन्द्रीय बैंकिंग जांच कमेटी ने भी विचार किया। इस कमेटी के सम्मुख उपस्थित होने वाले यूरोपियन विद्वानों का तो यह मत था कि जो धन्धे सुदृढ़ तथा सुव्यवस्थित रूप में स्थापित हुए हैं, उन्हें आर्थिक पूंजी प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होती, परन्तु भारतीय विद्वानों और उद्योगपतियों का मत इसके बिल्कुल विपरीत था। उनका कहना था कि यहां अंशों और ऋण पत्रों द्वारा पूंजी इकट्ठा करने का ढंग बिल्कुल असंतोषप्रद है। उनका यह कहना था कि भारतीय जनता अपना रुपया उद्योग धन्धों में लगाना पसन्द नहीं करती। इसके निम्नलिखित कारण हैं :—

(१) भारत में मुद्रा तथा पूंजी बाजार के सुसंगठित अथवा सुव्यवस्थित न होने के कारण उद्योग धन्धों के लिये वहां पर्याप्त मात्रा में पूंजी इकट्ठी नहीं हो पाती।

(२) भारत में औद्योगिक विकास न होने के कारण जनता उद्योग धन्धों में धन नहीं लगाना चाहती। यहां का विनियोगी वर्ग (Investing Class) इस सम्बन्ध में अधिक

क्रियाशील नहीं है। इसलिये यहां की पूंजी को लज्जाशील (Shy) तथा भीरु कहा गया है।

(३) अज्ञान तथा अशिक्षा के कारण यहां की विनियोगी जनता अधिकतर सरकारी सिक्यूरिटिज़, पोस्ट आफिस सेविंग्स बैंक, कैश सर्टिफिकेट, भूमि, इमारत तथा आभूषणों में ही अपना धन लगाना पसन्द करती है।

(४) इस मनोवृत्ति का कारण ग्रामों तथा छोटे छोटे शहरों में बैंकिंग तथा विनियोग करने की सुविधाओं की कमी होना है।

(५) बैंकों की नीति के कारण भी उद्योग धन्धों को प्रचुर मात्रा में पूंजी नहीं मिल पाती है।

(६) भारतीय जनता की आय कम होने के कारण उसकी बचाने की शक्ति भी कम है। अतः जब बचत ही सम्भव नहीं तो विनियोग का प्रश्न ही नहीं उठता।

(७) आर्थिक मंदी के काल में बहुत सी बैंकों और औद्योगिक संस्थाओं की असफलता के कारण जनता उद्योग धन्धों में धन लगाने से हिचकिचाती है।

(८) भारत में सरकार की राजकोषीय नीति भी भारत के उद्योग धन्धों के हित में नहीं रही। इसलिये भी जनता को भारतीय उद्योग धन्धों में कोई विशेष दिलचस्पी नहीं रही।

(९) अभिगोपन-कार्यालयों, (Underwriting Houses) निर्गमन कार्यालयों (Issue Houses), विनियोग प्रन्यास (Investment Trusts) आदि संस्थाओं के अभाव के कारण भी भारत में औद्योगिक प्रतिभूतियों का अधिक प्रचार न हो सका।

(१०) स्कन्ध विनिमय बाज़ारों (Stook Exchanges) के अभाव और दोषों के कारण भी यहां औद्योगिक संस्थाओं के अंश और ऋण पत्र लोक प्रिय न हो सके।

इन सब कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुये, केन्द्रीय बैंकिंग जांच कमेटी ने एक अखिल भारतीय औद्योगिक प्रमण्डल (All India Industrial Corporation) की स्थापना की सिफारिश की थी, परन्तु कुछ लोग प्रान्तीय औद्योगिक प्रमण्डलों की स्थापना के पक्ष में थे। उनकी निम्नलिखित दलीलें थीं:—

(१) उद्योग धन्धों का विषय प्रान्तीय है; अतः इनसे सम्बन्धित सभ योजनायें प्रान्तीय सरकारों के नियन्त्रण में होनी चाहिये।

(२) प्रान्तीय सरकारें अपने प्रान्तीय प्रमण्डलों को आसानी से सहायता दे सकेंगी।

(३) प्रान्तीय सरकारें आसानी से अपने अपने प्रमण्डलों के लिये प्रान्तीयता का लाभ उठाकर पूंजी एकत्रित कर सकेंगी।

(४) प्रान्तीय प्रमण्डल अपने अपने प्रन्तों के उद्योग धन्धों की आवश्यकता भली प्रकार समझ सकेंगे और अपने कार्य में अधिक सफल होंगे।

(५) प्रान्तीय प्रमण्डलों के पास उनके अपने अपने प्रांतों के धन्धे जानने वाले विशेषज्ञ होंगे, जिनका एक अखिल भारतीय प्रमण्डल के पास होना असम्भव है।

अखिल भारतीय प्रमण्डल की स्थापना के लिये निम्न दलीलें दी गई:—

(१) प्रान्तीय सरकारों की ऐसी आर्थिक स्थिति नहीं है कि वे अपने अपने प्रान्तों में अलग अलग प्रमण्डल स्थापित कर

सकें परन्तु केन्द्रीय सरकार ऐसी स्थिति में है कि वह एक अखिल भारतीय अर्थ प्रमण्डल स्थापित कर सके।

(२) अखिल भारतीय प्रमण्ड के हिस्सों और ऋण पत्रों पर जनता का अधिक विश्वास होगा और इसके निकाले हुये साख-पत्र विदेशों में भी बिक सकेंगे। इसके अतिरिक्त इसके संचालक योग्य और अनुभवी व्यक्तियों में से देश के किसी भी भाग से चुने जा सकेंगे।

(३) अखिल भारतीय प्रमण्डल की रक़म देश के भिन्न भिन्न धंधों में लगी होगी। अतः संकट के समय उसे कम जोखिम उठानी पड़ेगी।

(४) इस प्रमण्डल का प्रभाव केन्द्रीय सरकार पर भी होगा और वह देश भर के धन्धों को उचित सहायता दिलवा सकेगा।

(५) अखिल भारतीय प्रमण्डल के कर्मचारी समस्त भारतवर्ष से चुने जा सकेंगे इसलिये वे अधिक अनुभवी होंगे और एक प्रान्त के अनुभवी व्यक्तियों का दूसरे प्रान्त के व्यक्तियों को भी लाभ हो सकेगा।

(६) अखिल भारतीय प्रमण्डल सब से पहले उन्हीं कार्यों को हाथ में लेगा, जो देश के सब से अधिक हित में होंगे।

परन्तु अन्त में इस विषय पर दोनों पक्षों का एक मत हो गया और वह यह था कि प्रत्येक प्रान्त में एक प्रान्तीय औद्योगिक अर्थ प्रमण्डल (Provincial Industrial Finance Corporation) होना चाहिये और उन सब के ऊपर एक अखिल भारतीय प्रमण्डल होना चाहिये जो प्रान्तीय प्रमण्डलों

में सहयोग स्थापित कर सके। इसके निम्न लिखित कार्य रहेंगे:—

(१) प्रान्तीय प्रमण्डलों को उनके हिस्से और ऋण-पत्र बेचने में सहायता देना।

(२) प्रान्तीय प्रमण्डलों में सहयोग स्थापित कराना और यह देखना कि वे सर्व प्रथम उपयोगी धन्धों को ही आर्थिक सहायता देते हैं।

(३) प्रान्तीय प्रमण्डलों के पथ-प्रदर्शन के लिये कुछ सिद्धान्त निर्धारित करना।

(४) केन्द्रीय सरकार से इन्हें सुविधायें दिलाना।

यद्यपि कुछ प्रान्तीय सरकारों ने इस ओर कुछ ध्यान दिया और उत्तर प्रदेश तथा बंगाल आदि प्रान्तों में औद्योगिक अर्थ प्रमण्डलों की स्थापना हुई, परन्तु वे सफल न हो सके।

अब हम उन साधनों का विश्लेषण करेंगे, जिनके द्वारा विभिन्न प्रकार के धन्धों के लिये पूंजी प्राप्त की जाती है।

(१) *हिस्सों के द्वारा*—अन्य देशों की भाँति यहाँ भी प्रारम्भिक या स्थायी पूंजी हिस्सों द्वारा प्राप्त की जा सकती है। परन्तु यह हिस्से केवल सार्वजनिक सीमित दायित्व वाली कम्पनियाँ ही निकाल सकती हैं। ये हिस्से कई प्रकार के होते हैं। ये कई प्रकार के हिस्से विभिन्न प्रकार के विनियोगकों (Investers) को आकर्षित करने के लिये निकाले जाते हैं। पूर्वाधिकार अंश (Preference Shares) उन विनियोगकों के लिये होते हैं, जो ज्यादा जोखिम उठाना नहीं चाहते। इन पर लाभांश सब से पहले दिया जाता है और कम्पनी का कार्य होने पर पूंजी भी सब से पहले अदा की जाती है। साधारण अंश वे होते हैं, जिन पर लाभांश पूर्वाधिकार अंशों के बाद

दिया जाता है। यह विशेषकर मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों के लिये होते हैं। अस्थगित अंश (Deffered Shares) वे अंश हैं जिन पर लाभांश सब के अन्त में दिया जाता है। यह सटोरियों को आकर्षित करने के लिये निकाले जाते हैं। सब प्रकार के अंश अधिकतर संस्थापकों (Founders) द्वारा लिये जाते हैं और इसलिये ये संस्थापकों के अंश भी कहलाते हैं। अधिकतर पूंजी का हिस्सा साधारण अंशों द्वारा ही प्राप्त किया जाता है। पूर्वाधिकार अंशों का महत्व अभी कम है। इसके अतिरिक्त इस साधन से पूंजी तभी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त की जा सकती है, जब इन कम्पनियों के प्रबन्धकर्ता योग्य तथा ईमानदार हों और जनता का उनमें विश्वास हो।

(२) ऋण-पत्रों के द्वारा—ऋण-पत्र कम्पनियों द्वारा दीर्घकालीन ऋण की प्राप्ति के लिये निकाले जाने वाली उत्तमर्ण-प्रतिनिधिक प्रतिभूतियाँ होती हैं। ऋण पत्र वे पत्र हैं जिनके द्वारा कम्पनी के लिये हुये ऋण की स्वीकृति होती है तथा जिनमें ऋण के भुगतान करने की विभिन्न शर्तें, ढंग, अवधि, ब्याज दर आदि का वितरण रहता है। यह ऋण पत्र भी कई प्रकार के होते हैं ' नग्न ऋण पत्र अथवा अरक्षित ऋण पत्र वह होते हैं, जिनका निर्गमन कम्पनी की सम्पत्ति को बिना बन्धक रक्खे हुये किया जाता है। प्राधि-ऋण पत्र (Mortgage Debentures) वे होते हैं जो कम्पनी की सम्पत्ति को बन्धक रख कर निर्गमन किये जाते हैं। इनका निर्गमन दो प्रकार से किया जाता है। एक वे ऋण पत्र जिनका भुगतान केवल कम्पनी के समापन के समय होता है। ऐसे ऋण पत्रों को अशोध्य ऋण-पत्र (Irredeemable Debentures) कहते हैं, दूसरे वे जिनका भुगतान कम्पनी के समापन के पहले ही

हो सकता है। वे शोध्य ऋण-पत्र (Redeemable Debentures) कहलाये जाते हैं। ऋण-पत्र पंजियत भी होते हैं तथा वाहक भी। पंजियत (Registered) ऋण पत्र वे होते है जिनके धारकों का नाम ऋण पत्र पंजी (Register) में लिखा जाता है और उन्हीं व्यक्तियों को उनकी पूंजी और व्याज का भुगतान होता है। इनका हस्तांतरण ऋण पत्र-निर्गमन की शर्तों के अनुसार हस्तांतरण संलेख द्वारा होता है। वाहक ऋण-पत्रों का हस्तांतरण किसी भी समय हो सकता है और कोई भी संधारक उनकी पूंजी और व्याज प्राप्त कर सकता है।

भारतवर्ष में ऋण-पत्र अधिक लोक प्रिय नहीं हैं और इनके द्वारा उद्योगों के लिये बहुत कम पूंजी एकत्रित की जाती है जैसा कि निम्न लिखित तालिका से स्पष्ट है:—

(१९२७-२८)	साधारण अंश	पूर्वाधिकार अंश	ऋण-पत्र
(भारतीय केन्द्रीय जांच-कमेटी की रिपोर्ट से)	७५%	१६%	९%

भारत में ऋण-पत्रों के लोक प्रिय नहीं होने के कारण

(१) यहाँ विनियोगी वर्ग को फटका व्यवसाय से अधिक मोह है, उनके सामने पूंजी बढ़ाने (Capital Appreciations) का प्रश्न है, न कि उस पर स्थायी आमदनी प्राप्त करने का। ऋण-पत्रों के द्वारा पूंजी बढ़ाने का ढंग उनके लिये आकर्षित सिद्ध नहीं हुआ।

(२) यहाँ विनियोगी वर्ग को औद्योगिक कम्पनियों के ऋण-पत्रों पर विश्वास नहीं है। जहां अच्छी ज़मानतें दी जाती हैं वहां विश्वास पैदा हो जाता है, जैसे कलकत्ते की जूट मिलों

के ऋण-पत्रों पर विनियोगी वर्ग का काफी विश्वास जम चुका है।

(३) ऋण-पत्रों पर अधिक स्टाम्प ड्यूटी का चुकाया जाना भी इसकी अप्रियता का एक मुख्य कारण है।

(४) इनकी अप्रियता का मुख्य कारण तो यह है कि यहाँ ऋण-पत्र अथवा अंश प्रकाशन के लिये कोई नियमित प्रकाशन गृह नहीं है और ऋण-पत्रों में रुपया लगाने वाली कोई विनियोगी संस्था भी नहीं है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर मिश्रित पूंजी वाले बैंक भी ऋण-पत्रों में विनियोगी नहीं करते, क्योंकि यहाँ उन्हें बेच देने के लिये कोई क्रियाशील बाजार नहीं है।

(५) यहाँ ऋण-पत्रों की कुल राशि का विभाजन भी बहुत बड़े बड़े मूल्यों में होता है, इसलिये इनका खरीदना साधारण जनता की शक्ति के बाहर है। उदाहरण के लिये बम्बई काटन मिलों के अधिकांश ऋण पत्र भारतीय नरेशों और बड़े बड़े सेठों द्वारा खरीद लिये गये।

(६) ऋण-पत्र इसलिये भी अप्रिय थे कि जो कम्पनियाँ ऋण-पत्र निर्गमन करती थीं, बैंक उनकी साख की स्थिति को सन्देह की दृष्टि से देखते थे और ऋण-पत्र प्रकाशन करने वाली कम्पनियों की कर्ज माँगने की क्षमता जाती रहती थी।

(७) औद्योगिक कम्पनियों को ऋण-पत्रों पर अधिक सूद देना पड़ता है तथा अन्य व्यय करना पड़ता है। अतः ऋण-पत्रों के द्वारा ऋण लेने का तरीका अधिक खर्चीला था। इसलिये कम्पनियाँ बैंकों की आँखों में अपनी साख की स्थिति बनाये रखनेके लिये बैंक से ही कर्ज लिया करती थीं और ऋण-पत्र नहीं प्रकाशन करती थीं।

(३) प्रवन्ध-अभिकर्ता (Managing Agents)—प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली देश के अन्दर वर्तमान औद्योगिक अर्थनीतिक व्यवस्था का एक मुख्य आधार है। भारत में जो कुछ भी औद्योगिक विकास हो सका है, उसका श्रेय प्रबन्ध-अभिकर्त्ता प्रणाली को है। यह प्रबन्धकों की एक ऐसी संस्था है, जो अपने प्रबन्ध के अन्दर बहुत सी औद्योगिक संस्थाओं को हर प्रकार से अर्थनीति तथा प्रबन्ध के मामले में सहायता पहुंचाती है। प्रवन्ध अभिकर्त्ताओं की फर्मस, साझेदारी, निजी सीमित कम्पनी तथा कभी कभी सार्वजनिक सीमित कम्पनी के रूप में भी कार्य करती हैं। भारतवर्ष में अधिकांश प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओं के फर्मस साझेदारी रूप में कार्य कर रही हैं। ये संस्थायें उद्योग स्थापित करने का प्रारम्भिक कार्य करती हैं, उसका स्थापन करती हैं, उसे आर्थिक सहायता देती हैं अथवा उसको पूंजी देने का दायित्व लेती हैं और प्रायः सारी पूंजी की व्यवस्था करती हैं। संक्षेप में प्रबन्ध अभिकर्त्ता तीन प्रकार के कार्य करते है: वे एक साथ (१) व्यवसायी (२) पूंजीदाता तथा (३) प्रवन्ध का कार्य करते हैं। औद्योगिक अर्थदाता के रूप में प्रबन्ध-अभिकर्त्ता उद्योग-धन्धी के लिये केवल प्रारम्भिक या स्थायी पूंजी का ही प्रबन्ध नहीं करते, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर उनके पुनर्निर्माण पुनः संगठन, आधुनिकरण और वैज्ञानीकरण के लिये भी उचित अर्थनीति तथा दीर्घकालीन कार्यशील पूंजी की भी व्यवस्था करती हैं। वे निम्न लिखित तरीकों से उद्योग धन्धों के लिये पूंजी का प्रबन्ध करती हैं:—(१) कम्पनियों के हिस्से खरीद कर, (२) ऋण-पत्र खरीद कर, (३) बैंक से अपनी जमानत पर ऋण दिलवा कर, (४) जनता से सार्वजनिक जमायें प्राप्त करा कर, (५) अपनी पूंजी

तथा अन्य व्यक्तिगत सम्पत्तियों से ऋण देकर। वर्तमान काल में वे अपनी कम्पनियों के अंशों तथा ऋण-पत्रों के अभिगोपन का कार्य भी करने लगे हैं।

इतना होते हुये भी, इस प्रणाली में कई प्रकार के दोष हैं जिनके कारण इसके विरुद्ध आवाज़ उठाई जा रही है। अपनी व्यवस्थापित कम्पनियों की राशि का अन्तर्विनियोग इस पद्धति का बड़ा दोष है, क्योंकि इस प्रकार आर्थिक सहायता देने से एक तो विनियोगित कम्पनियों की राशि उनकी आवश्यकता के समय काम में नहीं लाई जा सकती, दूसरे, उन कमज़ोर कम्पनियों का जिनका समापन आवश्यक है अस्तित्व अनावश्यक बढ़ जाता है। एक ही प्रबन्ध अभिकर्त्ता कई कम्पनियों की व्यवस्था करता है; इसलिये उसके आर्थिक साधन सब कम्पनियों के लिये सीमित होते हैं। कम्पनियों की आर्थिक निर्भरता प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओं पर होने के कारण कम्पनियाँ उनके प्रभुत्व में रहती हैं और औद्योगिक कार्यक्षमता को इससे हानि पहुँचती है। प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा होने वाली आर्थिक पूर्ति बहुत मँहगी तथा हानिकर भी होती है, क्योंकि अपने ऋणों पर ये बहुत अधिक व्याज लेते हैं तथा अपने ऋणों को ऋण-पत्रों में भी परिणित कर लेते हैं। ये अपना कमीशन तथा प्रतिफल बहुत अधिक निर्धारित करा लेते हैं और अपने लाभ को बढ़ाने के लिये हिसाब में भी गड़बड़ करते हैं।

सन् १९३६ के भारतीय कम्पनी संशोधित विधान ने इन में से कुछ दोषों को तो दूर कर दिया है। अब प्रबन्ध अभिव्यक्ति बिना अंशधारियों की स्वीकृति के नियुक्त नहीं हो सकते। वे बीस वर्ष से अधिक समय के लिये नियुक्त नहीं

किये जा सकते। लाभ की, जिसके आधार पर इन्हें कमीशन मिलता है, परिभाषा निश्चित कर दी गई है। ये लोग अब कम्पनी का धन ऋण-पत्रों आदि के क्रय करने में बिना संचालकों की सर्व सम्मति के नहीं लगा सकते। वे कम्पनी से ऋण भी नहीं ले सकते। इन संशोधनों से यह आशा की जाती है कि अब प्रबन्ध अधिकर्ता प्रणाली भारतीय औद्योगिक उन्नति में पूर्ण सहायक हो सकेगी। परन्तु युद्धोन्तर काल में इस प्रणाली के अनेक दोष जनता के सामने आये जिनके कारण फिर इस वर्ग के विरुद्ध आवाज़ उठाई जा रही है। इस उद्देश्य से कम्पनी विधान में फिर कुछ संशोधन १९५१ में किये गये, परन्तु इनकी आर्थिक सहायता पर से कम्पनियां अपनी निर्भरता तब तक नहीं छोड़ सकतीं जब तक देश में सुसंगठित मुद्रा-मण्डी तथा विनियोग-विपणि (Investment market) का समुचित विकास नहीं होता जिनकी, इन कार्यों के लिये अत्यन्त आवश्यकता है।

(४) जन-निक्षेप (Public Deposits)—हमारे देश में बहुत सी कम्पनियां अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये जनता से जमायें (Deposits) भी स्वीकार करती हैं। जनता बैंकों के ऊपर विश्वास न होने के कारण अपना रुपया इन कम्पनियों के पास जमा करती है। अतः कम्पनी अपनी कार्यशील पूंजी का पर्याप्त भाग इन जमाओं द्वारा प्राप्त कर लेती है। यह पद्धति बम्बई और अहमदाबाद के वस्त्र व्यवसाय में विशेष रूप से प्रचलित है, जिसकी कुल पूंजी का क्रमशः ११ प्रति शत तथा ३९ प्रति शत जननिक्षेपों से आता था। आरम्भ में ये निक्षेप साधारणतः ६ से १२ मास तक के लिये रखे जाते थे, जिनका नवीनकरण हो सकता था परन्तु कुछ

वर्षों से इनकी अवधि ५ वर्ष से १२ वर्ष तक हो गई है। इन पर व्याज की दर साधारणतः ४½ प्रतिशत से ६½ प्रतिशत तक भिन्न भिन्न कारखानों में भिन्न भिन्न रहती है। ये निक्षेप कम्पनियों को बिना सम्पत्ति गिरवी रखे मिल जाते हैं। अहमदाबाद के वस्त्र कारखानों में इन निक्षेपों का उपयोग स्थायी रूप से भी किया गया है। परन्तु स्थायी पूंजी की अथवा औद्योगिक अर्थ पूर्ति की यह पद्धति खतरे से खाली नहीं है, क्योंकि अल्पकालीन निक्षेपों का उपयोग दीर्घकालीन कार्यों में करने से आर्थिक मन्दी के समय कम्पनियों की स्थिति खतरे में पड़ जाती है और इस अर्थ व्यवस्था से कम्पनी में आर्थिक सुदृढ़ता भी नहीं आ पाती। जन निक्षेपर्ता केवल अच्छे समय के मित्र हैं। इसके अतिरिक्त निक्षेपों पर व्याज की दर कम होने के कारण, कभी कभी कम्पनियां उन्हें अपनी आवश्यकता से अधिक व्यापार विस्तार करने के लिये भी ले लेती हैं, जिस से लाभ होने की अपेक्षा हानि हो जाती है। कभी कभी कम्पनियां इस रकम से परिकाल्पनिक व्यवहार (Speculation) भी करने लगती हैं। निक्षेप पद्धति के कारण विनियोग विपणि के विकास में भी बाधायें पहुँचती हैं। फिर भी यह पद्धति यशस्वी ही प्रमाणित हुई है और अर्थ पूर्ति का एक लोचदार साधन रही है। परन्तु इतना होने पर भी इस पद्धति द्वारा औद्योगिक अर्थ पूर्ति खतरे से खाली नहीं है। अतः इनका उपयोग समुचित रूप से करना चाहिये जिससे कम्पनियों की आर्थिक स्थिति कमजोर न होने पाये।

(५) स्वदेशी बैंकर—स्वदेशी बैंकरों ने भी निम्न तथा मध्यम श्रेणी के उद्योग धन्धों को पर्याप्त मात्रा में सहायता पहुँचाई है। कोयले की कम्पनियां बैंकों के ऋण देने के तरीकों

से घबरा कर स्वदेशी बैंकरों से ही १२ से १८ प्रतिशत ब्याज की दर पर अपनी उत्पत्ति बढ़ाने के लिये ऋण लेती हैं। चमड़े के कारखाने, तेल की मिलें, चावल की मिलें आदि भी इन्हीं बैंकरों से २४ प्रतिशत ब्याज की दर पर अपनी सम्पत्ति के आधार पर ऋण लेते हैं।

(६) व्यापारिक बैंक—व्यापारिक बैंक उद्योग धन्धों की सहायता, बिलों को भुनाकर, अल्पकालीन सुरक्षित ऋण देकर नकद साख खाता खोल कर तथा व्यक्तिगत साख पर उधार दे कर करते हैं। ऋण बहुधा कच्चे माल, तैयार माल, अन्य अच्छी प्रतिभूतियां व दो अच्छे हस्ताक्षरों वाले प्रतिज्ञा-पत्रों पर दिये जाते हैं। ऐसा करते समय ३० प्रतिशत की छूट (Margin) रख ली जाती है। ऋण एक वर्ष से अधिक समय के लिये नहीं होते। इम्पीरियल बैंक तो केवल ६ मास की अवधि तक ही ऋण दे सकता है। इन कारणों से मिल मालिक बैंकों से ऋण नहीं लेते। अतः व्यापारिक बैंकों का देश की औद्योगिक अर्थ पूर्ति में बहुत थोड़ा हाथ है। इस में सुधार करने के दो ही मार्ग हैं:—(१) देश के वर्तमान व्यापारिक बैंकों में कुछ ऐसा परिवर्तन किया जाय जिससे वे अधिकाधिक औद्योगिक आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति कर सकें, तथा (२) उद्योगों को दीर्घकालीन ऋणों से आर्थिक सहायता देने के हेतु अन्य देशों की भांति भारत में भी औद्योगिक बैंकों की स्थापना की जाय।

१ (अ) वर्तमान आर्थिक व्यापारिक बैंक जर्मनी के व्यापारी बैंकों की तरह उद्योगों की आर्थिक सहायता कर सकते हैं और उन्हें स्थायी पूंजी दे सकते है। जर्मन बैंकों की पद्धति अगले पृष्ट पर है।

(i) कोई भी उद्योग बैंक में चालू खाता खोल लेता है जिसका संतुलन (Balancing) सामयिक विशेषतः छमाही होता है। इस समय में जो भी देनदेन बैंक और उद्योग विशेष के बीच होते हैं, सब इसी खाते में लिखे जाते हैं। इस लेखे पर लिखे हुए ऋणों से दीर्घकालीन पूंजी की पूर्ति होती है। इन ऋणों के लिये प्रतिभूति आदि समय समय पर निश्चित होती रहती है।

(ii) जर्मनी के व्यापारिक बैंक उद्योगों को प्रारम्भिक स्थायी पूंजी देने की दृष्टि से उनके अंश व ऋण-पत्र आदि भी खरीद लेते हैं, जिनसे उद्योगों को स्थायी पूंजी मिल जाती है। बाद में ये अंश ऋण-पत्र आदि जनता को बैंक द्वारा वेच दिये जाते हैं। कम्पनियों के अंशन विक सकने पर हानि होने के खतरे से बचने के लिये कन्सोर्टियम पद्धति (Consortium model) पर अनेक बैंक मिलकर उद्योगों को आर्थिक सहायता इसी प्रकार देते थे और हानि होने पर हानि सब बैंकों में बंट जाती थी। इस कार्य के करने के लिये बैंक एक प्रथक उद्योग-विभाग रखते थे जिसकी विनियोग पूंजी भी पृथक होती थी। इस विभाग के संचालन के लिये विशेषज्ञों की नियुक्ति की जाती थी। बैंक अपने प्रबन्धक व प्रतिनिधि उद्योगों की संचालक समिति में भी उनके कार्यों के नियन्त्रण के लिये भेजते थे।

(ब) व्यापारिक बैंकों को कुछ ऐसे अंशों का निर्गमन (Issue) करना चाहिये जिनकी पूंजी से केवल उद्योगों को ही सहायता दी जाय।

(स) बैंकों को आर्थिक सुविधायें वैधानिक साख पर भी उद्योगों को देनी चाहिये जिससे उनको कार्यशील पूंजी मिलती रहे।

(द) उद्योगों को स्थायी सम्पत्ति प्राप्त करने के लिये तथा पुनर्निर्माण के समय अच्छी अच्छी कम्पनियों द्वारा निकाले जाने वाले अंशों अथवा ऋण-पत्रों का अभिगोपन कार्य (Underwriting of Shares) भी बैंकों को करना चाहिये, परन्तु यह कार्य परिकाल्पनिक व्यवहारों की दृष्टि से न हो।

(ध) व्यापारिक बैंकों को अपने यहां उद्योगों को आर्थिक सुविधायें देने के उद्देश्य से ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति करना चाहिये, जो भिन्न भिन्न उद्योगों का ज्ञान रखते हों और अर्थ सुविधायें आसानी से दिला सकते हों।

२—*औद्योगिक बैंक*—यह औद्योगिक अर्थ पूर्ति का दूसरा मार्ग है। क्योंकि यदि उपरोक्त सुझाव काम में भी आने लगें तो भी व्यापारिक बैंक पूर्ण रूप से औद्योगिक अर्थ सुविधायें नहीं दे सकते। इसलिये देश में औद्योगिक बैंकों की स्थापना करना आवश्यक है। केन्द्रीय बैंकिंग जांच कमेटी ने भी सन् १९३१ में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय औद्योगिक बैंकों की स्थापना की सिफारिश की थी। यहां कुछ औद्योगिक बैंक स्वदेशी आन्दोलन के प्रारम्भिक वर्षों में स्थापित भी हुये। इनमें टाटा औद्योगिक बैंक १९१७, कलकत्ता औद्योगिक बैंक १९१९, भारतीय औद्योगिक बैंक १९१९, मैसूर औद्योगिक बैंक १९२० तथा लक्ष्मी औद्योगिक बैंक १९२३ मुख्य हैं। परन्तु ये सब औद्योगिक सिद्धान्तों को न अपनाने के कारण असफल हो गये। इस समय देश में केवल एक ही इस प्रकार की संस्था है जो गत २५ वर्षों से काम कर रही है। इसका नाम 'कनारा इण्डस्ट्रियल एण्ड बैंकिंग सिंडिकेट लि०' है, जो 'उदीपी' स्थान पर है। परन्तु केवल एक बैंक से काम नहीं चल सकता। अतः औद्योगिक

बैंकों की स्थापना आवश्यक है। ऐसे बैंकों को पर्याप्त मात्रा में पूंजी अंशों तथा ऋण-पत्रों के निर्गमन से करनी चाहिये। इन को केवल औद्योगिक अर्थ सुविधायें ही देनी चाहिये। इनको अपने विनियोग एक ही उद्योग में न करते हुये भिन्न भिन्न उद्योगों में करने चाहिये, जिससे एक उद्योग के डूबने से उनकी अधिक राशि न डूब सके। उनको अपनी संचालक सभा में ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करना चाहिये, जिन्हें देश के विभिन्न उद्योगों का एवं अर्थ व्यवस्था का समुचित ज्ञान हो। ऐसे बैंकों को विशेषज्ञों की नियुक्ति की आवश्यकता पड़ेगी, जो तांत्रिक विषयों (Technical Matters) पर सलाह दे सकें।

औद्योगिक अर्थ प्रमंडल (Industrial Finance Corporation)—भारत में १६४६ में 'औद्योगिक अर्थ प्रमंडल विधेयक' विधान सभा में प्रस्तुत किया गया था, जो फरवरी १६४८ में स्वीकृत हो गया तथा १ जुलाई १६४८ से यह 'औद्योगिक अर्थ प्रमण्डल' कार्य कर रहा है।

उद्देश्य—इसका मुख्य उद्देश्य भारतीय उद्योग धन्धों को मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन साख प्रदान करना है, विशेषतः उस समय जब उन्हें साधारण बैंकों की सुविधायें अपर्याप्त हों तथा पूंजी प्राप्त करने के लिये अन्य साधन दुर्लभ हों।

विधान के अनुसार औद्योगिक संस्थाओं में केवल सार्वजनिक सीमित उत्तरदायित्व वाली कम्पनियां तथा सहकारी समितियां ही आ सकती हैं, जो उत्पादन, खान खोदाई तथा बिजली और किसी अन्य शक्ति के उत्पादन तथा वितरण का कार्य करती हों। इस प्रकार प्रमंडल का क्षेत्र बहुत सीमित है।

पूंजी—प्रमंडल की अधिकृत पूंजी १० करोड़ रुपये है, जो २०००० अंशों में विभाजित है। प्रत्येक अंश का मूल्य

५,०००) है। अंशों की मूल राशि तथा २½ प्रतिशत लाभांश की प्रत्याभूति (Guarantee) केन्द्रीय सरकार ने दी है। इन में से केवल ५ करोड़ रुपये के १०,००० अंश निम्न प्रकार खरीदे गये हैं :—

	राशि	अंश
रिजर्व बैंक आफ इंडिया	१ करोड़ रु०	२,०००
केन्द्रीय सरकार	१ ,, ,,	२,०००
सदस्य बैंक	१'२५ ,, ,,	२,५००
बीमा कम्पनियां	१'२५ ,, ,,	२,५००
सहकारी बैंक	०'५० ,, ,,	१,०००
	५ करोड़ रु०	१०,००० अंश

अंश अधिकार के सम्बन्ध में कुछ विशेष नियम बनाये गये हैं, ताकि किसी विशेष संस्था के पास अधिक अंश जमा न हो जांय। कोई भी संस्था अपने वर्ग के निश्चित कोटा के १० प्रतिशत से अधिक अंश नहीं खरीद सकती। न बिके हुये अंशों को रिजर्व बैंक तथा केन्द्रीय सरकार खरीद सकेगी। बाद में रिजर्व बैंक तथा सरकार इन अंशों को सदस्य बैंकों, बीमा कम्पनियों, सहकारी बैंकों तथा विनियोग प्रन्यासों (Investment Trusts) के हाथ बेच सकती है। इसके अतिरिक्त प्रमंडल अपनी पूंजी ऋण-पत्र और बांड बेचकर प्राप्त कर सकता है। १९४९–५० में ७½ करोड़ रुपये के ३½ प्रतिशत प्रति वर्ष ब्याज देने वाले बंधक (Bonds) बेचे भी गये हैं, जिनका भुगतान १९६४ ई० में किया जायगा। जन-निपेक्षों द्वारा भी पूंजी प्राप्त की जा सकती है। प्रमंडल केवल पांच वर्षों के लिये जमा प्राप्त कर सकता है परन्तु जमा की राशि १० करोड़ से अधिक नहीं हो सकती।

कार्य (१) यह सार्वजनिक समिति कम्पनियों तथा सहकारी समितियों को २५ वर्ष की अधिकतम अवधि के लिये ऋण दे सकेगा।

(२) औद्योगिक संस्थाओं द्वारा निर्गमित किये हुये अंशों, ऋणपत्रों आदि का अभिगोपन (Underwrite) करना और यदि इन्हें जनता ने तुरन्त न खरीदा हो तो इन्हें इनकी प्राप्ति से अधिक से अधिक सात वर्ष की अवधि के अन्दर रख कर बेचना।

(३) औद्योगिक संस्थाओं को इस प्रकार के ऋण देना अथवा उनके ऐसे ऋण-पत्रों को खरीदना जिनका भुगतान २५ वर्ष के अन्दर होगा।

(४) उपरोक्त कार्यों के लिये निश्चित किया हुआ कमीशन प्राप्त करना।

(५) उन कार्यों का करना जो उपरोक्त कार्यों से सम्बन्धित हैं और प्रमण्डल के लिये अपना कार्य भली प्रकार करने के लिये आवश्यक हैं।

(६) यदि उद्योग को विदेशी मुद्रा में ऋण लेने की आवश्यकता पड़े तो प्रमण्डल केन्द्रीय सरकार की अनुमति से अन्तर्राष्ट्रीय बैंक अथवा अन्य किसी स्रोत से ऋण दिलवा सकता है।

(७) प्रमण्डल ऋण लेने वाले उद्योग की संचालक सभा में अपना प्रतिनिधि भी भेज सकता है और किसी निर्बन्ध के उल्लंघन करने पर उद्योग को अपने अधिकार में ले सकता है।

(८) प्रमंडल जनता से ५ वर्ष की न्यूनतम अवधि के लिये निक्षेप स्वीकार कर सकता, है परन्तु इनकी राशि परिदत्त

पूंजी (Paid-up Capital) तथा निधि के योग के दुगने से अधिक न होनी चाहिये।

(६) प्रमण्डल किसी उद्योग को तांत्रिक सलाह देने के लिये सलाह समितियां भी नियुक्त कर सकता है।

ऋण देने की शर्तें—ऋण निम्नलिखित निर्बन्धों पर दिये जाते हैं:—

(१) विशेषत: स्थायी एवं अचल सम्पत्ति खरीदने के लिये ही, तथा अचल सम्पत्ति की प्रथम प्राधि (First Mortgage) पर ऋण दिया जाता है। यह अर्थ प्रमण्डल कच्चे अथवा पक्के माल के उप-प्राधायन पर कार्यशील पूंजी के लिये ऋण नहीं देता।

(२) ऋण की रकम का उचित प्रवन्ध हो रहा है, यह जानने के लिये यह अर्थ प्रमण्डल उद्योगों के संचालकों से ऋणों के लिये उनकी वैयक्तिक तथा सामूहिक प्रतिभूति, उनकी व्यक्तिगत हैसियत से लेता है, जिससे उद्योग का प्रवन्ध ठीक तरह हो।

(३) प्रमण्डल ऋणी उद्योगों की संचालक सभा में दो अपने संचालक भी नियुक्त कर सकता है, जो उद्योग का निरीक्षण करते रहें।

(४) जब तक ऋणोंका भुगतान न हो जाय, कोई उद्योग ६ % से अधिक लाभांश नहीं दे सकता, परन्तु इस दर में दोनों की परस्पर सम्मति से परिवर्तन हो सकता है।

(५) ऋण के भुगतान की अवधि १२ वर्ष की है, परन्तु अधिकतम अवधि, जो अभी तक दी गई है वह १५ वर्ष है।

यह अवधि उद्योग के व्यापारिक स्वरूप एवं उनके भविष्य के अनुसार निश्चित की जाती है।

(६) ऋणों का भुगतान साधारणतया बराबर बराबर किश्तों में होना चाहिये, जो दोनों की सम्मति से निश्चित हो सकती हैं।

(७) सम्पत्ति का, जिसकी प्रतिभूति (Security) पर ऋण प्राप्त किया जाता है, अग्नि, साम्प्रदायिक कलहों, विद्रोह आदि से सुरक्षा करने के लिये किसी अच्छी कम्पनी से बीमा कराना अनिवार्य है।

प्रबन्ध—प्रमण्डल का प्रबन्ध संचालक सभा द्वारा होता है जिसमें निम्नलिखित व्यक्ति होते हैं:—

(१) तीन संचालक जिनको केन्द्रीय सरकार नामजद करती है;

(२) दो संचालक जिनको रिजर्व बैंक की केन्द्रीय बोर्ड नामजद करती है;

(३) दो संचालक जिनका निर्वाचन प्रमण्डल के अंशधारी सदस्य बैंकों द्वारा होता है:

(४) दो संचालक जिनका निर्वाचन केन्द्रीय सरकार, रिजर्व बैंक, सदस्य बैंक तथा सहकारी बैंकों को छोड़ कर अन्य अंशधारियों द्वारा होता है;

(५) दो संचालक जिनका निर्वाचन प्रमण्डल के अंशधारी सहकारी बैंकों द्वारा होता है;

(६) एक प्रबन्ध संचालक जिसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती है;

साधारणतयः निर्वाचित संचालकों की अवधि ४ साल की होगी और नामज़द संचालकों की अवधि केन्द्रीय सरकार की इच्छा पर निर्भर करेगी। ये संचालक अन्य औद्योगिक तथा अर्थनीतिक संस्थाओं के भी संचालक हो सकते हैं, परन्तु उन कम्पनियों के सम्बन्ध में उन्हें मत देने का अधिकार नहीं होगा। प्रमण्डल की सामान्य नीति का संचालन केन्द्रीय सरकार नई सभा की नियुक्ति कर सकती है। संचालक सभा अपने कार्यों को सफल बनाने के लिये सलाहकार समितियां भी नियुक्त कर सकती है। केन्द्रीय सरकार अन्य अंशधारियों के अंश भी खरीद सकती है। केन्द्रीय सरकार को प्रमण्डलों के ऋणों का, विनियोगों का, अभिगोपन अनुबन्धों का वर्ष में न्यूनतम एक बार परीक्षण करने तथा उनकी वार्षिक सम्पत्ति एवं देय का स्थिति विवरण लाभालाभ लेखा आदि लेने का भी अधिकार है। इस प्रकार सरकार का इस प्रमण्डल पर पूर्ण नियंत्रण है।

कार्य सफलता—प्रमण्डल की द्वितीय वार्षिक रिपोर्ट ३० जून १९५० से यह स्पष्ट है कि अपनी बुनियाद मज़बूत करने की सीढ़ी को पार करके प्रमण्डल ने अब उद्योग-धन्धों को काफ़ी दिलेरी के साथ सहायता देना आरम्भ किया है। इसके अतिरिक्त यह अपने ऋणियों की संस्थाओं के प्रबन्ध तथा संगठन के विषय में भी जांच करने लगी है।

३० जून १९५० को प्रमण्डल का कुल लाभ ३,०३,४३८ रुपया था, जब कि गत वर्ष अर्थात् ३० जून १९४९ को लाभ केवल ८५,५०८ रु० ही था। इस लाभ में से ५०,००० रु० सुरक्षित कोष के लिये अलग रख कर शेष अंशधारियों में बांट दिया गया है। जून १९५० के वर्ष में प्रमण्डल के पास ८७६

करोड़ रुपए के लिये ६५ आवेदन-पत्र आये जिनमें ३·७७ करोड़ रुपये के २३ आवेदन-पत्र स्वीकृत किये गये और १·८४ करोड़ रुपये के १६ आवेदन-पत्र विचाराधीन थे। आर्थिक सहायता केवल सार्वजनिक कम्पनियों तथा सहकारी समितियों तक ही सीमित रही। फण्ड की आवश्यकता होने के कारण प्रमंडल ने ७·३० करोड़ के ३½% बोन्ड (१९६४) प्रकाशित किये। केन्द्रीय सरकार इनकी असल रकम तथा व्याज की गारंटी देती है।

गत वर्षों में प्रमंडल को यहां के उद्योग धन्धों के संगठन तथा प्रबन्ध के बारे में काफ़ी अनुभव प्राप्त हुआ है। प्रमंडल की रिपोर्ट से प्रकट होता है कि यहां की औद्योगिक संस्थाओं ने सावधानी पूर्वक उत्पादन तथा कुल लागत का हिसाब नहीं किया।

प्रमण्डल की कठिनाइयां—प्रमंडल के उद्देश्यों को क्रियान्वित करने में अनेक बाधायें जो आती हैं वे भारतीय औद्योगिक कलेवर की सदोषता के कारण आती हैं। वे कठिनाइयां निम्नलिखित हैं:—

१—उद्योगों द्वारा अर्थ प्रमंडल को आवेदन-पत्रों पर विचार करने के लिये उनकी भावी योजनाओं का पूर्ण विवरण नहीं दिया जाता।

२—प्रमंडलों की स्थायी सम्पत्ति के प्राधीयन के समय भी अनेक बाधायें आती हैं, क्योंकि भूमि पर प्रबन्ध अभिकर्ताओं का स्वत्व होता है और उस पर बनी इमारत पर कम्पनी का।

(३) आवेदन पत्रों के साथ जो योजनायें आती हैं समुचित तांत्रिक सलाह से नहीं बनाई जातीं और न यंत्रादि की ठीक क़ीमतें ही दी जाती हैं और न उन योजनाओं की पूर्ति के

लिये आवश्यक साधनों का ही उल्लेख किया जाता है।

(४) बहुत से उद्योगों के पास कार्यशील पूंजी भी पर्याप्त नहीं होती, जिससे भावी योजनाओं की पूर्ति के लिये उन पर कम साधन होते हैं।

(५) बहुत से उद्योग ऋण स्वीकृत हो जाने पर भी वैधानिक कार्यवाही पूरी नहीं करते।

अतः औद्योगिक कम्पनियों को उपरोक्त दोषों को निवारण करना चाहिये, जिससे अर्थ प्रमंडल उनकी पूरी पूरी सहायता कर सके।

प्रमंडल ने अभी तक अंश एवं ऋण-पत्रों के अभिगोपन तथा प्रत्याभूति का कार्य नहीं किया है। इसका कारण स्कन्ध विपणि की मन्दी तथा मुद्रा बाजार की परिस्थिति है। यह मानना ही पड़ेगा कि इतनी अल्प-आयु में भी प्रमंडल ने अर्थ-क्षेत्र में बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया है। प्रमंडल ने चार वर्षों में १०३ भिन्न भिन्न उद्योगों में लगी हुई संस्थाओं को अक्टूबर ३१, १६५२ तक लगभग १५-२२ करोड़ का ऋण दिया है। यह इसकी सफलता का द्योतक है। परन्तु वास्तविक सफलता की आशा तभी की जा सकती है जब उद्योग उस राशि का समुचित उपयोग करें और औद्योगिक कलेवर सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न करें। दिसम्बर १६५२ में औद्योगिक अर्थ प्रमण्डल संशोधन बिल केन्द्रीय विधान सभा में पास हुआ, जिसका उद्देश्य प्रमंडल की कार्य सीमा को बढ़ाना है। बिल का उद्देश्य प्रमण्डल को अन्तर्राष्ट्रीय बैंक से ऋण लेने का अधिकार भी देना है। बिल के अनुसार जहाजी कम्पनियाँ भी प्रमंडल से आर्थिक सहायता ले सकती हैं। बिल के अनुसार कम्पनियाँ ५० लाख रुपया

के ऋण के स्थान पर १ करोड़ रुपये तक प्रमंडल से ऋण ले सकेगी। सरकार को अन्तर्राष्ट्रीय ऋण और विदेशी करेन्सी द्वारा हानि के लिये गारंटी देनी होगी। प्रमण्डल के ५ प्रतिशत से अधिक का लाभ सरकार को मिल जायगा। इसके कार्यों को ध्यान में रखते हुये प्रमंडल को विशेषज्ञों की संख्या बढ़ानी पड़ेगी। प्रमंडल रिजर्व बैंक से भी अल्प-कालीन ऋण ले सकेगा। प्रमंडल की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने के लिये एक विशेष कोष बनाया जायगा, जिसमें सरकार और रिजर्व बैंक के अंशों का लाभ जमा किया जायगा, जब तक कि यह २० लाख रुपया न हो जाय। सरकार के संचालकों की संख्या तीन से चार रहेगी। अंकेक्षण का कार्य अधिकतर भारत के आडिटर जनरल के हाथ में दे दिया जावेगा और प्रत्येक अंकेक्षक रिपोर्ट संसद के सदस्यों के सामने रखी जायगी। इन संशोधनों से प्रमंडल के कार्य में बहुत कुछ सुधार हो जायगा और औद्योगिक कम्पनियां उससे पूर्ण लाभ उठा सकेंगी।

(७) *उद्योगों को राजकीय सहायता सम्बन्धी क़ानून*—औद्योगिक कमीशन की सिफ़ारिशों के अनुसार विभिन्न प्रान्तों में छोटे छोटे तथा घरेलू उद्योगों को सहायता देने के कानून बनाये गये। इनके अन्तर्गत उद्योग विभागों की स्थापना हुई जो प्रान्तीय औद्योगिक संस्थाओं को ऋण दे सकते थे तथा उनकी अन्य प्रकार से सहायता कर सकते थे। परन्तु यह कानून अधिक सफल नहीं हुये। अप्रैल १९५१ में भारतीय संसद में छोटे तथा मध्यम श्रेणी के उद्योग धन्धों को सहायता देने के उद्देश्य से प्रान्तीय औद्योगिक अर्थ प्रमंडल स्थापित करने के लिये एक बिल पेश किया गया। इस प्रमण्डल की पूंजी दो करोड़ रुपये तक होगी और इसका संगठन भारत के औद्योगिक

अर्थ प्रमण्डल के आधार पर ही होगा और इसका कार्य छोटे छोटे तथा घरेलू उद्योग-धन्धों को मध्य कालीन तथा दीर्घ-कालीन सहायता देना होगा। आशा की जाती है कि प्रान्तीय अर्थ-प्रमण्डलों की स्थापना से भारतीय छोटे व मध्यम श्रेणी के उद्योगों के लिये पर्याप्त ऋण प्राप्त हो सकेंगे, जिससे देश का औद्योगिक विकास होगा।

(८) *स्कन्ध विनिमय बाज़ार* (Stock Exchange Market) —यह बाजार भी औद्योगिक प्रतिभूतियों को खरीदने और बेचने की सुविधायें देकर उद्योगों को आर्थिक सहायता पहुंचाता है। यहां केवल वे ही प्रतिभूतियां बेची और खरीदी जा सकती है जो इन बाजारों की सूची में शामिल हैं और इन बाजारों की शर्तों को पूरी करती हैं। इन बाजारों के द्वारा कम्पनियां और सरकार थोड़े ही समय में अपनी प्रति-भूतियां बेच कर रुपया इकट्ठा कर लेती हैं। ये संस्थायें कुछ सीमा तक वर्तमान औद्योगिक जोखिम को भी कम करती है। केवल अच्छी कम्पनियां ही अपने अंशों इत्यादि को स्कन्ध विनिमय बाजारों में बेच सकती है। भारत में बम्बई, कल-कत्ता और मद्रास के स्कन्ध विनिमय बाजार सबसे प्रमुख हैं।

(९) *विनियोग प्रन्यास* (Investment Trusts)— ये बहुत विशाल पूंजी वाली सार्वजनिक सीमित दायित्व वाली कम्पनियां हैं, जो अपने अंश जनता को बेच कर पूंजी एकत्रित करती हैं। इस पूंजी को यह दूसरी सुव्यवस्थित और साख वाली कम्पनियों के अंश और ऋण पत्र खरीदने में लगाती हैं। यह प्रन्यास अपना विनियोग विभिन्न औद्योगिक संस्थाओं में करती हैं, जिससे उनकी जोखिम कम हो जाती हैं। इन

विभिन्न संस्थाओं से इन्हें जो लाभांश मिलता है उसमें से व्यय घटाकर वे उसे अपने अंशधारियों में वितरण कर देती हैं। ये प्रतिभूतियों को बेच कर भी लाभ कमाती हैं। यह प्रन्यास अभिगोपन तथा नई कम्पनियों के अंश स्वयं क्रय करके भी औद्योगिक संस्थाओं की सहायता करती हैं। ये संस्थायें अल्प साधनों वाले विनियोजकों को बहुत सहायता पहुंचाती हैं और जनता में विनियोग करने की भावना जागृत करती हैं। इनका नियंत्रित रूप में विकास तथा प्रसार देश के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार की संस्थायें द्वितीय महायुद्ध तथा युद्धोत्तर काल में काफ़ी संख्या में स्थापित हुईं जिनमें से टाटा इनवेस्टमेंट कारपोरेशन आफ़ इंडिया, इण्डस्ट्रीयल इनवेस्टमेंट ट्रस्ट लि०, वर्डस इनवेस्टमेंट लि०, ओरिएण्टल इनवेस्टमेंट ट्रस्ट लि०, और जे० के० इनवेस्टमेंट ट्रस्ट लि० प्रमुख विन्यास हैं।

(१०) *अन्य संस्थायें*—इंग्लैंड, अमेरिका, जापान आदि विदेशों में बीमा कम्पनियाँ, निर्गमन कार्यालय, अभिगोपन कार्यालय, औद्योगिक बन्धक बैंक, विनियोग अधिकोष, कटौती कार्यालय भी औद्योगिक अर्थ समस्या को हल करने में काफ़ी हाथ बटाते हैं। परन्तु भारत में प्रतिभूतियों के अंशों एवं ऋण-पत्रों के अभिगोपन आदि के लिये ऐसी विशेष संस्थायें नहीं हैं। बीमा कम्पनियों को अपनी कुल देनदारियों का ५५% सरकारी तथा सर्वश्रेष्ठ प्रतिभूतियों में लगाना पड़ता है। कतिपय वर्षों से यह कार्य करने के लिये कुछ संस्थायें हमारे यहां स्थापित की गई हैं।

(११) *विदेशी पूंजी*—भारत में जो औद्योगिक प्रगति हुई है उसका एक विशेष कारण है विदेशी पूंजी का प्रभुत्व।

रिजर्व बैंक ने हाल ही में भारत जून १९४८ तक संपूर्ण विदेशी पूंजी का अनुमान ५९६ करोड़ रुपये बताया है, जिसमें से इंग्लैंड के ५७६ करोड़ रुपये हैं, अमरीका के ३० करोड़ रुपये, पाकिस्तान के २१ करोड़ रुपये और कैनेडा के ९ करोड़ रुपये है।

विदेशी पूंजी से कई लाभ हैं। जब देश में पूंजी की कमी होती है तो देश की आर्थिक प्रगतियों का संचय करने के लिये उसे मुक्त भी नहीं किया जा सकता। अमरीका और जापान ने अपने प्राकृतिक साधनों का उपयोग करने के विदेशों से ही पूंजी ऋण ली थीं। विदेशी पूंजी देश की सम्पत्ति को बढ़ाती है। लाभ बाहर तो जाते ही हैं, परन्तु पगारों का भी एक महत्वपूर्ण लाभ होता है। विदेशी पूंजी ऐसी सम्पत्ति की रचना कर देती है जो पूंजी और ब्याज दोहों से अधिक हो जाती है। विदेशी पूंजी से बनी रेलें, नहरें आदि पूंजी के भुगतान के बाद आय का स्थायी स्रोत बन जाती हैं। विदेशी पूंजीवादी शुरू शुरू में हानियां उठाते हैं, जो देश को लाभ के समान है। भारत में शीशा और लोहा और इस्पात के उद्योग प्रारम्भ में असफल हुये और हानि विदेशियों को उठानी पड़ी। विदेशी पूंजीवादी योग्य संगठन की स्थापना कर नवीन कला को जारी करता है, जो यदि धीरे धीरे प्राप्त करके देश के साहसी व्यवसाइयों को सौंपा जाय, तो निश्चय ही बहुत लाभदायक हो।

विदेशी पूंजी के साथ कुछ दोष भी होते हैं। सबसे बड़ी बुराई राजनीतिक चलन की है। जो देश विदेशी पूंजी उपयोग में लाता है वह शीघ्र विदेशियों के प्रभुत्व में चला जाता है। मिस्र और चीन ने इस प्रकार की हानि उठाई है। भारत में

भी स्वार्थी हितों की रचना की गई, जो देश के उद्योग धन्धों आदि के लिये हानिकर सिद्ध हुये। इससे देश के प्राकृतिक साधनों का भी विदेशी हितों के लिये शोषण हो सकता है और उससे देश को चिरकाल तक हानि उठानी पड़ती है। विदेशी नियन्त्रण के साथ विदेशी पूंजी 'मूल' उद्योगों (Key Industries) और राष्ट्रीय रक्षा से सम्बन्धित उद्योगों के मामलों में खतरनाक होती है। विदेशी व्यवसायों में ऊंचे और महत्वपूर्ण स्थान वे अपने नागरिकों के लिये सुरक्षित कर देते हैं और भारतीयों को केवल छोटे काम सौंप दिये जाते हैं। कला-कौशल की विधियों को छिपाकर रखा जाता है। ऐसी दशा में देश को हानि सहन करनी पड़ती है। परन्तु यह दोष विदेशी नियन्त्रण के हैं, विदेशी पूंजी के नहीं। विदेशी प्रबन्ध और विदेशी नियन्त्रण के बिना विदेशी पूंजी का स्वागत किया जा सकता है, जो देश के हित में होगा।

६ अप्रैल १९४८ के अपनी औद्योगिक नीति के वक्तव्य में भारत के प्रधान मन्त्री ने साफ साफ शब्दों में घोषित कर दिया कि भारतीय पूंजी का अनुपूरण करने के लिये विदेशी पूंजी की आवश्यकता है। यह कहा गया है कि नियम रूप में व्यवसाय के नियंत्रण और स्वामित्व में अधिकांश भाग भारतीयों के हाथ में होगा देश का जीवन मान उन्नत करने के लिए हमें आर्थिक प्रगतियों को विस्तृत करना होगा। आधार-मूलक उद्योगों (Key Industries) का निर्माण करना होगा। इन सबको पूंजी की आवश्यकता है, जिसका हमारे यहां पूर्ण अभाव है, जो विदेशी पूंजी के बिना पूरा नहीं हो सकता। विदेशी पूंजी देश में केवल हमारी क्षीण पूंजी की पूरक ही न होगी, परन्तु अपने साथ ज्ञान, कुशल व्यापारिक अनुभव और संगठन के

भी लाएगी। १६५१ में रिज़र्व बैंक ने तीन निष्कर्ष निकाले—(१) गैर सरकारी तौर पर विदेशी पूंजी केवल इंग्लैंड से प्राप्त हो सकती है; (२) सरकारी तौर पर विदेशी पूंजी अमरीका से आसकती है, और (३) भारत को दक्षिण-पूर्व एशिया में अपने विनियोजनों को पुनः जारी करने की उचित योजना बनानी चाहिए। अप्रैल १६४६ में प्रधान मन्त्री ने विधान सभा में विदेशी पूंजीपतियों की शंकाओं का समाधान इस प्रकार किया था: (१) सामान्य औद्योगिक नीति को लागू करने में विदेशी और भारतीय व्यवसायों के बीच कोई भेद-भाव नहीं किया जायगा, (२) विदेशी विनिमय की स्थिति के अनुकूल लाभों को भेजने और पूंजी को निकालने की उचित सुविधायें दी जांयगी, और (३) राष्ट्रीयकरण होने पर उचित और समान क्षतिपूर्ति की जायगी।

विदेशी पूंजी के लिये निम्न उपयोगी क्षेत्र हैं:—(१) सार्वजनिक योजनायें, जिनमें विदेशी सामग्री और टेकनिकल ज्ञान की आवश्यकता है, (२) नये उद्योग जिनमें देशी साहस आगे नहीं बढ़ रहा है, (३) जहां घरेलू उत्पादन घरेलू मांग के लिये संतोषप्रद नहीं और देशी उद्योग पर्याप्त रूप में विस्तार नहीं कर रहा है। संयुक्त व्यवसाय भी आरम्भ किये जा सकते हैं, जिसमें विदेशी औद्योगिक और भारतीय व्यापारी को परस्पर मिलने का अवसर मिले।

पूंजी की समता के अतिरिक्त अमरीका के अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं प्रगतिकारी बैंक तथा आयात-निर्यात बैंक जैसी सरकारी और अर्द्ध सरकारी संस्थाओं से भी पूंजी प्राप्त हो सकती है।

घरेलू उद्योग-धन्धों को पूंजी की समस्याः—

हमारे देश में घरेलू उद्योग धन्धों को पूंजी देने की समस्या भी महत्वपूर्ण है अभी तक घरेलू उद्योग धन्धों में संलग्न कारीगर अपनीआवश्यकतानुसार महाजन दूकानदारों से ऋण लेते हैं। ये दूकानदार कारीगरों को कच्चा माल भी देते हैं। परन्तु यह सब इस शर्त पर होता है कि कारीगर बना हुआ माल दूकानदार के हाथ ही बेचेगा। माल तैयार होने पर दूकानदार सूत या अन्य कच्चे माल का दाम काट कर शेष मूल्य कारीगर को दे देता है। ऐसा करने में दूकानदार अपने कच्चे माल का अधिक मूल्य और तैयार माल का कम मूल्य आंकता है। यह काम इतने छोटे हैं और इतने दूर दूर फैले हुए हैं कि कोई भी बैंक इन्हें ऋण देना पसन्द नहीं करता। अतः इन्हें सहायता देने के लिये औद्योगिक सरकारी समितियों की स्थापना आवश्यक है जो इन लोगों को ऋण दे सकें, सस्ते मूल्य पर कच्चा माल दिलवा सकें और उनके बने हुये माल के बेचने का प्रबन्ध कर सकें। अभी तक हमारे देश में ऐसी कुछ इनी गिनी समितियां ही हैं। हमारे देश में जुलाहों की कुछ सहकारी समितियां हैं। उद्योग एक प्रान्तीय विषय है, अतः प्रान्तीय सरकारें भी विभिन्न प्रकार से इन छोटे धन्धों की सहायता करती हैं। वे थोड़े ब्याज पर इन्हें ऋण देती हैं अथवा किराये और खरीद पर मशीन, भूमि इत्यादि देती हैं। ये प्रचार करती हैं, धन्धों का क्रम क्रियात्मक रूप में दिखाती हैं और उनके सम्बन्ध की मन्त्रणा देती हैं। परन्तु सरकार जो सहायता करती है, वह तो आटे में नमक के बराबर है और उससे इन उद्योग धन्धों को उतना लाभ नहीं होता। इनकी सहायता तो सहकारी समितियां ही पूर्ण रूप से कर सकती हैं।

अतः उनकी स्थापना आवश्यक है।

अन्त में यह बात स्पष्ट है कि देश में चतुर्मुखी उन्नति की आवश्यकता है। औद्योगिक बैंकों के खुलने की और आवश्यकता है। प्रान्तीय कारपोरेशन भी खुलने चाहिये और भारतीय अर्थ प्रमण्डल की नीति में भी अनुभव के अनुसार परिवर्तन करने चाहिए। इम्पीरियल बैंक और दूसरे बैंकों को भी उद्योग धन्धों की आर्थिक सहायता करनी चाहिये। औद्योगिक बैंक, व्यापारिक बैंक तथा प्रान्तीय कारपोरेशन किसी उद्योग धन्धे को केवल उसके प्रारम्भ से उसके एक स्तर तक पहुंच जाने के काल में ही सहायक होते हैं। अन्त में तो इसका बोझ जनता को ही उठाना पड़ेगा। अतः इसके लिये हिस्से और ऋण पत्र अधिक प्रचलित करने चाहिये, जिनके लिये सुदृढ़ स्कन्ध विनिमय बाजारों और निर्गमन कार्यालय, अभिगोपन कार्यालय, विनियोग विन्यास जैसी संस्थाओं का होना आवश्यक है। उद्योग धन्धों की सहायता के लिये विदेशी पूंजी भी काम में ली जा सकती है, क्योंकि अब भारत स्वतन्त्र हो गया है और विदेशी पूंजी से होने वाली हानियों का डर दूर हो गया है। घरेलू उद्योग धन्धों की सहायता के लिये तो सहकारी समितियों को प्रोत्साहन देना पड़ेगा। वे इनकी आर्थिक सहायता पूर्ण रूप से कर सकती हैं।

अभ्यास-प्रश्न

१—भारत में औद्योगिक बैंकों की इतनी धीमी गति से वृद्धि होने के कारण लिखिये।

२—औद्योगिक बैंकों से क्या समझते हो? उनके क्या क्या कार्य हैं तथा वे इनको किस प्रकार सम्पन्न करते हैं।

३—हमारे देश में उद्योग-धन्धों की दीर्घ-कालीन पूंजी की आवश्यकतायें किस प्रकार पूरी की जाती हैं? इसमें क्या त्रुटियां हैं तथा इनको दूर करने के लिये क्या करना चाहिये?

४—विदेशों में उद्योग-धन्धों को आर्थिक सहायता पहुंचाने के लिये क्या क्या सुविधायें दी जाती हैं? भारत में इन सुविधाओं को कहां तक अपनाया जा सकता है?

५—भारतीय अर्थ प्रमण्डल की स्थापना कब और क्यों हुई? इसके कार्यों पर प्रकाश डालिये।

६—भारतीय अर्थ प्रमण्डल की स्थापना देश की औद्योगिक अर्थ व्यवस्था में कहां तक हितकर सिद्ध हुई है? इसकी पूंजी और संचालन के विषय में संक्षेप में वर्णन कीजिए।

७—भारतीय प्रबन्ध अभिकर्ता प्रणाली पर एक छोटा सा निबन्ध लिखिए तथा समझाइए कि भविष्य में इनके दोषों को दूर करने के लिए क्या किया जाय।

८—हमारे देश में घरेलू उद्योग-धन्धों की पूंजी की समस्या का सिंहावलोकन करते हुए उसको सुलझाने के उपाय बतलाइए।

तेरहवां अध्याय

कृषि अर्थ समस्या और उसकी व्यवस्था

कृषि अर्थ व्यवस्था भारत में एक बहुत महत्वपूर्ण समस्या है, क्योंकि यहां की जनता बहुत गरीब है और उसके रहन-सहन का स्तर बहुत नीचा है। केन्द्रीय बैंकिंग कमेटी के अनुसार, एक भारतीय कृषक की औसत आय ४२ रुपये हैं जब कि कुल ग्रामीण ऋण का परिमाण ९०० करोड़ रुपये है, जो बढ़ कर १९४० में १७०० करोड़ हो गया। ग्रामीण ऋण ग्रस्तता (Rural Indebtedness) के कारण इस प्रकार हैं :—

(१) भारतवर्ष में कृषि योग्य भूमि कम है और खेतों पर काम करने वाले अधिक। अतः भूमि और जनसंख्या के बीच समयोजन ठीक नहीं है।

(२) भारत में किसान का खेत एक इकाई नहीं होता परन्तु कई टुकड़ों में विभक्त होता है। उसे प्रकृति की दया पर भी निर्भर रहना पड़ता है। उसके औजार थोड़े होते हैं। इन सब बातों के लिये उसे ऋण लेना पड़ता है।

(३) उसके पशु कमजोर होते हैं। उन्हें पूरा चारा नहीं मिलता और वे अकाल तथा बीमारी के कारण मर जाते

हैं। इसलिये किसान को नये जानवर खरीदने के लिये ऋण लेना स्वाभाविक है।

(४) फसल की टिड्डियों, बाढ़ तथा अन्य कारणों से असुरक्षा के कारण भी किसान की फिजूल खर्ची की आदत को प्रोत्साहन मिलता है। उसे मुकदमेबाजी का भी शौक़ होता है जिसमें वह काफी धन बरबार कर देता है।

(५) घरेलू उद्योगों का नष्ट होना और खाली समय में सहायक धन्धों की कमी भी उसको ऋण लेने पर बाध्य करती हैं।

(६) किसान का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। मलेरिया आदि उसे घेरे रहते हैं।

(७) यह घिसाई (Depreciation) के लिये कोई प्रबन्ध नहीं करते। अतः इनकी अचल सम्पत्ति धीरे धीरे समाप्त हो जाती है।

(८) किसान का विवाह तथा अन्य उत्सवों पर फिजूल खर्ची करना उसके ऋण के परिमाण को और भी बढ़ा देता है।

(९) किसान के ऊपर उसके पुरखों का ऋण भी काफी रहता है, जिसे उसे चुकाना पड़ता है।

(१०) ऋण देने वालों के दुष्टतापूर्ण तरीके भी किसान को एक बार पंजे में फंसा कर, फिर उसे वहां से निकलने नहीं देते।

(११) छोटे छोटे खेत वालों के लिये मालगुजारी चुकाना कठिन होता है और इसके लिये उन्हें ऋण की आवश्यकता होती है।

(१२) भूमि का मुद्रा प्रसार के कारण बढ़ा हुआ मूल्य किसान को अधिक ऋण लेने और महाजन को अधिक ऋण देने के लिये उकसाता है।

ऋणत्व के परिणाम—उत्पादक कार्यों के लिये लिये हुये ऋण से समृद्धि बढ़ती है, परन्तु अनुत्पादक ऋण किसान के लिये अभिशाप होता है। आर्थिक, सामाजिक तथा नैतिक सभी प्रकार से बुरा प्रभाव पड़ता है।

आर्थिक परिणाम—किसान के ऋणी होने से खेती अपूर्ण रह जाती है और उसमें कोई सुधार नहीं हो पाता। इसलिये जनता गरीब रह जाती है और उनके रहन-सहन के स्तर में कोई उन्नति नहीं हो पाती। जब किसान अपनी मेहनत का पूरा फल नहीं पाता तो वह अपने आप को भाग्य पर छोड़ देता है और अपनी स्थिति को सुधारने में रुचि नहीं लेता है। इससे उत्पादन कम हो जाता है और उसे अपनी भूमि को बेचना या बंधक रखना पड़ता है। उसे अपनी उपज को भी साहूकार के हाथ कम मूल्य पर बेचना पड़ता है और हानि उठानी पड़ती है। इस प्रकार कृषि की उन्नति सम्भव नहीं हो पाती।

सामाजिक परिणाम—ऋणदाता तथा ऋणी में बहुधा झगड़ा हो जाता है। भूमि रहित वर्ग बढ़ता है और उनके पास आजीविका का कोई साधन न होने के कारण सामाजिक असंतोष फैलता है तथा राजनैतिक आन्दोलन को गति मिलती है।

नैतिक परिणाम—किसान की सम्पत्ति छिन जाती है और उसके साथ उसकी आर्थिक स्वतन्त्रता भी। जिससे उसका

नैतिक पतन हो जाता है और उसे जन्म भर दासता में बिताना पड़ता है।

इसलिये किसान को सस्ती साख (Cheap Credit) की आवश्यकता है, जो वह आसानी से वापस कर सके। किसान को खेती का काम चलाने के लिये तीन प्रकार की साख की आवश्यकता होती है अर्थात् दीर्घकालीन, मध्यकालीन और अल्पकालीन।

दीर्घकालीन साख (Long term Credit) की आवश्यकता—

(१) कुयें, तालाब, बंद नाली बनवाने, जंगलों को साफ करवाने, सिचाई और भूमि में सुधार करवाने आदि, के लिये पड़ती है।

(२) मध्यकालीन साख (Intermediate Credit) की आवश्यकता मंहगे औजारों, पशु मोल लेने तथा मकान खड़े करने के लिये पड़ती है।

(३) अल्पकालीन साख (Short term Credit) की आवश्यकता किसान को अपनी वर्तमान आवश्यकताओं जैसे बीज, खाद, भोजन सामग्री इत्यादि, की व्यवस्था के लिये पड़ती है।

किसान अपनी आवश्यकतायें निम्न साधनों से पूरी करता है :—

(१) सरकारी सहायता द्वारा
(२) गांव के साहूकार द्वारा
(३) देशी बैंकर द्वारा
(४) सहकारी साख समितियों द्वारा
(५) भूमि प्रबन्धक बैंक द्वारा

सरकार—सरकार १८८३ में भूमि सुधार अधिनियम (Land Improvement Act) पास हो जाने से कुयें आदि स्थायी सुधार कार्यों के लिये दीर्घकालीन ऋण देती है और कृषक ऋण अधिनियम (Agriculturists Loans Act) १८८४, के अनुसार बीज, औजार खाद आदि, के लिये अल्प-कालीन ऋण भी देती है। इन ऋणों से अकाल इत्यादि के समय पर्याप्त सहायता मिली है।

तकावी ऋण, जैसा कि इन ऋणों का नाम है, लोक प्रिय नहीं है। प्रथम तो, ये विशेष कार्यों के लिये ही दिये जाते हैं, जब कि महाजन किसी भी कार्य के लिये ऋण दे देता है। इसलिये किसान महाजन से ही ऋण लेना पसन्द करता है। द्वितीय, इन ऋणों के लेने में बहुत समय लगता है और तृतीय, उनकी वसूली बहुत कठोरता से की जाती है। इसलिये वह किसान को प्रिय नहीं हैं। इनके दोषों को दूर करने के लिये प्रस्ताव किया गया था। अब विभाजन के बाद से सरकार नें इनके सम्बन्ध में अधिक उदार नीति अपना ली है, जिससे १९४८-४९ में इनकी रकम केवल भारत में ही ९२२ लाख रुपये थी, जब कि १९३७-३८ में इनकी रकम समूचे भारत अर्थात् भारत और पाकिस्तान दोनों में मिला कर केवल ७५ लाख रुपये थी।

गांव का साहूकार—गांव का साहूकार गांव की कृषि की साख का अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है। ये दो वर्ग के होते हैं : (१) अन्यवसायी और (२) व्यवसायी

अन्यवसायी साहूकारों के अन्तर्गत विशेषतया मद्रास के चेटी, राजपूताना, बंगाल, बम्बई तथा मध्यप्रदेश के वैश्य, जैन

मारवाड़ी, निधि, सर्राफ, कोठीवाल, मुल्तानी आदि आते हैं। सर्राफ सोने चांदी के व्यापार के साथ साथ ऋण देने का कार्य भी करते हैं। कोठीवाल प्रायः जमींदार होते हैं। व्यवसायी साहूकारों के विरुद्ध कठोर कानून बन जाने से अब जमींदार का महत्व बढ़ रहा है।

व्यवसायी साहूकारों में, फेरी वाले किश्तिये, काबुली पठान जो कपड़े के व्यापार के साथ ऋण भी देते हैं आते हैं। ये लोग अल्पकालीन आवश्यकताओं के लिये ऋण देते हैं। गांव का व्यवसायी साहूकार छोटी रकम के ऋणों को केवल अपनी वही में लिखकर बिना किसी गवाही के दे देता है। परन्तु अधिक रकम के ऋणों के लिये वह प्रामिसरी नोट लिखवा लेता है। वह किसान को बिना जमानत के ऋण इस आशा में देता है कि वह अपनी फसल उसके हाथ या उसके द्वारा बेचेगा। ऋण की रकम अधिक होने पर और ऋण दीर्घकाल के लिये होने पर वह भूमि, जेवर या मकान बंधक (Mortgage) रखवा लेता है। वह किसान की ऋण लेने की आवश्यकताओं के कारणों की जांच पड़ताल नहीं करता और ऋण उत्पादक तथा अनुत्पादक दोनों कार्यों के लिये बिना किसी हिचकिचाहट के दे देता है। वह सूद दर सूद लगाता है जिससे शीघ्र ऋण की रकम बढ़कर एक बहुत बड़ी रकम हो जाती है। इनके अतिरिक्त देश में कुछ महाजन ऐसे भी हैं, जो एक स्थान पर लेन देन न करके कई जगह यह कार्य करते हैं। वे गांवों में समय समय पर आते रहते हैं और लेन देन का कार्य करते हैं। इनमें पठान, काबुली, उत्तर प्रदेश के किश्तवाले, मध्य प्रदेश के रोहिला और बिहार उड़ीसा के गोसाईं और नागा मुख्य हैं। ये महाजन ऋण

देकर ऋण लेने वाले के अंगूठे का निशान अपनी वही पर ले लेते हैं और प्रति मास एक रुपया वसूल करते रहते हैं। सूद की दर भिन्न भिन्न प्रान्तों में भिन्न होती है। बैंकिंग कमेटियों के मतानुसार सुरक्षित ऋणों पर सूद की १२ प्रतिशत से ३७½ प्रतिशत तक होती है। अरक्षित ऋण पर यह दर ७५ प्रतिशत व १५० प्रतिशत तक भी होती है। कहीं कहीं तो ३०० प्रतिशत तक ब्याज की दर चली जाती है। इस ऊंची ब्याज की दर के निम्न लिखित कारण हैं:—

(१) कहीं कहीं साहूकार के अतिरिक्त और कोई सूद पर ऋण देने वाला नहीं होता। इसलिये वह मनमाना सूद लेते हैं।

(२) किसी किसी गाँव में साहूकार भी नहीं होते और वहां के लोगों को आस पास के गाँव के महाजन के पास ऋण के लिये जाना पड़ता है। आपस में अच्छी जान पहचान न होने के कारण साहूकार ऊँची ब्याज की दर लेते हैं।

(३) गाँव की अपेक्षा साहूकार के पास कम पूंजी रहती है, इसलिये भी वह अधिक ब्याज दर लेता है।

(४) गाँव वाले अनपढ़ और अशिक्षित होते हैं। वे इस बात का पता लगाने की ही कोशिश नहीं करते कि ऋण कहां कम सूद पर मिलेगा। वे तो अपने गाँव के साहूकार से ही ऋण ले लेते हैं, चाहे वह कितना ही ब्याज ले।

(५) उधार लेने वालों पर उपयुक्त ज़मानत न होने के कारण भी उन्हें अधिक ब्याज देना पड़ता है।

(६) साहूकार छोटी छोटी रकम बहुत से लोगों को देता है। अतः उसके नियन्त्रण, वसूली प्रबन्ध आदि, में उसको

पर्याप्त खर्च करना पड़ता है और उसको सूद की दर बढ़ानी पड़ती है।

ऊँची ब्याज दर के अतिरिक्त साहूकार और भी कई दूषित कार्य करते हैं। वे कभी कभी किसान को ठग लेते हैं। कोरे काग़ज़ पर अंगूठा लगवा कर वे उनमें मनमानी रक़म लिख लेते हैं। जब किसान थोड़ा थोड़ा रुपया चुकाता है तो वह काग़ज़ पर नहीं चढ़ाया जाता। मुनीम जो बहुधा इन साहूकारों का कार्य करते हैं मनमानी करते हैं और बहुत सी चीजें कर्ज़दारों से मुफ्त ले लेते हैं। कहीं कहीं तो, कर्ज़दार को महाजन का दास बन कर रहना पड़ता है। इन दोषों के होते हुये भी साहूकार का गाँव में एक विशेष स्थान है, हालाँकि ऋण के क़ानून बन जाने से साहूकारों के काम में कुछ कमी आ गई है। गाँव वाला साहूकार के पास ही जाना अधिक पसन्द करता है, क्योंकि उसके पास पहुँचना आसान है, उसके व्यवसाय की प्रणाली सीधी-सादी तथा लोचदार है, उसका ऋण लेने वाले के साथ घनिष्ट तथा व्यक्तिगत सम्बन्ध होता है। उसके परिवार के साथ उसके वंश परम्परागत सम्बन्ध होते हैं। वह उत्पादक तथा अनुत्पादक दोनों कार्यों के लिये ऋण देता है और बिना स्पष्ट सम्पत्ति के भी ऋण दे देता है।

साहूकार के पतन के कारण—

(i) साहूकार को ऋण वसूल करने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। उसको अदालत से डिग्री प्राप्त करने में बहुत समय और रुपया खर्च करना पड़ता है।

(ii) कई कानूनों जैसे पंजाब का गैर कृषक को भूमि हस्तांतरित न करने का क़ानून, कुसीदी ऋण क़ानून (Usurious

Loans Aot) आदि के बन जाने से भी, साहूकार की कठिनाइयां बढ़ गई हैं। बहुत से लोग ऋण लेकर दिवालिया कानून (Insolvency Aot) की शरण ले लेते हैं।

(iii) सहकारी समितियां भी साहूकारों के कार्य में एक बाधा हैं।

(iv) कुछ साहूकारों ने इस व्यवसाय को छोड़कर अन्य व्यापार करना आरम्भ कर दिया है।

(v) उनके दूषित कार्यों के कारण जनता का उनमें से विश्वास उठता जा रहा है।

(vi) इनकी पूंजी बहुत कम है; अतः यह ऋण देने में असमर्थ रहते हैं।

(vii) साहूकारों में कोई संगठन नहीं है और उन्हें अन्य साख संस्थाओं से प्रतिस्पर्द्धा करनी पड़ती है।

(viii) आजकल चैक, बिल हुंडी का चलन अधिक होने लगा है, परन्तु ये लोग इनसे अनभिज्ञ हैं।

(ix) इनकी ब्याज की दर भी बहुत ऊँची होती है।

(x) इनके लिये अनुज्ञापत्र (Licence) आवश्यक हो गया है और यह उसे नहीं लेना चाहते।

साहूकारों को सुधारने के कुछ सुझाव

साहूकार अपने दोषों के होते हुये भी भारतीय ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का एक अनिवार्य अंग है। बंगाल अकाल कमीशन के मतानुसार साहूकार अभी बहुत समय तक गाँवों में ऋण बांटने के कार्य को मुख्य रूप से करता रहेगा। उसे पूर्णतया नष्ट नहीं किया जा सकता, परन्तु उसमें सुधार की आवश्यकता है। उनके दोषों को दूर करने के लिये बंगाल, बिहार, मद्रास,

उड़ीसा केन्द्रीय बैंकिंग कमेटियों ने प्रत्येक साहूकार को अनुज्ञा पत्र ले लेने का सुझाव दिया है। यह अनुज्ञा पत्र इन्हें स्वतः ही लेना चाहिये। अनुज्ञा पत्र में निम्न बातों का उल्लेख होना चाहिये:—

(i) ब्याज की दर, एक निश्चित दर से अधिक नहीं होगी।

(ii) उन्हें अपने हिसाब ठीक ढंग से रखने होंगे, जिनका निरीक्षण सरकारी अंकेक्षकों (Auditors) के द्वारा किया जायगा।

(iii) उनको प्रत्येक ऋणी का हिसाब अलग अलग रखना पड़ेगा और समय समय पर उसकी नकल प्रत्येक ऋणी के पास भेजनी पड़ेगी।

(iv) उनको रकम प्राप्त करने पर प्रत्येक ऋणी को रसीद देनी पड़ेगी और उसकी प्रतिलिपि अपने पास रखनी पड़ेगी।

(v) यदि वे सूद दर सूद (Compound Interest) लेते हैं तो वह ऋण की रकम में कम से कम एक वर्ष बाद जोड़ा जा सकेगा।

(vi) इनको एक निश्चित कोष (Reserve Fund) भी रखना पड़ेगा।

इन प्रतिबन्धों के बदले साहूकारों को कुछ सुविधायें भी दी जांयगी जो इस प्रकार हैं:—(१) उनके माल गोदाम की रसीद पर दिये ऋण की वसूली के अधिकार सरकारी आय वसूली के अधिकारों की तरह होंगे।

(२) दूसरे बैंक इनको कृषिपत्रों की जमानत पर ऋण दे सकेंगे।

(३) एक स्थान से दूसरे स्थान पर रुपया भेजने की सुविधायें इम्पीरियल बैंक इन्हें दूसरे बैंकों की तरह देगा।

(४) वे डाकखाने में चालू खाता खोल कर चैक द्वारा रुपया निकाल सकेंगे।

बम्बई, पंजाब और आसाम कमेटियां साहूकारों के अनुज्ञा पत्र लेने के पक्ष में नहीं थीं। उनका कहना था कि अनुज्ञा पत्र की प्रथा दो बातों के लिये जारी करने का विचार था: (१) सूद की दर कम करने के लिये और (२) साहूकारों के दूषित कार्य रोकने के लिये।

ब्याज की दर कम करने के लिये जनता में शिक्षा तथा मितव्ययिता का प्रचार और अन्य बैंकों की उन्नति होना आवश्यक है, जिसके लिये समय की आवश्यकता है। इस समय के बीच में निम्न उपाय करना चाहिये:—

(i) कुसीदी ऋण सम्बन्धी कानून का पूरा पूरा लाभ उठाना चाहिये।

(ii) ईमानदार साहूकारों को वसूली में सुविधा देनी चाहिये, जिससे उनके व्यय कम हो जांय और वे सूद की दर घटा सकें।

(iii) साहूकारों को सहकारी समितियों में शामिल होने के लिये प्रोत्साहन देना चाहिए।

(iv) कुछ थोड़े से साहूकारों को संयुक्त पूंजी वाली बैंकों को आढ़तिया बना देना चाहिए।

(v) बड़ी बड़ी बैंकों को साहूकारों को शाख (Branch office) मान लेना चाहिए।

(vi) जो साहूकार अन्य व्यापार छोड़ने को राज़ी हों उन्हें रिजर्व बैंक को अपना सदस्य बना लेना चाहिए।

साहूकारों के दूषित कार्य रोकने के लिए निम्न उपाय पर्याप्त होंगे:—

(i) कुसीदी ऋण सम्बन्धी कानून, हिसाब ठीक रखने के कानून तथा अन्य व्याज तथा ग्रामीण ऋण सम्बन्धी कानूनों का पूरा पूरा उपयोग करना चाहिये।

(ii) पंजाब के हिसाब सम्बन्धी क़ानून और अंग्रेज़ी साहूकारी क़ानून की तरह यहां भी क़ानून बना देने चाहिये।

(iii) सरकार को काबुली और पठानों की निगरानी रखनी चाहिए और यदि वे कर्जदारों पर कठोरता का बर्ताव करते पाये जांय तो उनके विरुद्ध कार्यवाही करनी चाहिए।

(iv) अदालत को उन मामलों को रद्द करने का पूरा अधिकार होना चाहिए जो साहूकार द्वारा किसी दूर देश के व्यक्ति के विरुद्ध अदालत में लाये जांय।

(v) प्रान्तीय सरकारों को जनता में शिक्षा का प्रचार करना चाहिये और इन क़ानूनों का प्रचार करा देना चाहिये।

अनुज्ञा पत्र लेने का कानून अभी तक पंजाब, मध्यप्रदेश, बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा में ही पास हो पाया है और बिना अनुज्ञा पत्र के साहूकारों के कार्य कानून विरुद्ध माने जाते हैं। इन कानूनों के अनुसार निम्न बातों पर रोक है:—

(i) चक्रवर्ती व्याज लेना (ii) उन ऋणों के खर्चे ग्राहक से लेना जो इस कानून में नहीं आते हैं (iii) झूठे दावे (iv) ऋणियों को अनावश्यक रूप से डराना धमकाना, (v) प्रान्त के बाहर रहने वालों को ऋण देना (vi) ज़मींदारों द्वारा

अपने लगान के धन को ऋण में परिणित कर देना (vii) हिसाब को ठीक ढंग से न रखना।

मद्रास में व्याज मूलधन का दूना होने पर ऋण खत्म हो जाता है तथा आसाम में मूलधन से अधिक रक़म की डिग्री व्याज के रूप में नहीं दी जाती।

देशी वैंकर

भारतवर्ष में वैंकिंग व्यवसाय वहुत पुराना है। वैदिक काल के साहित्य से यह वात स्पष्ट ज्ञात होती है कि ईसा से दो हज़ार वर्ष पूर्व भी भारतवर्ष में रुपया उधार लेने देने की प्रथा चालू थी। मनुस्मृति से भी यह पता चलता है कि देश में लेन देन का कार्य वहुत वढ़ा चढ़ा था। बुद्ध कालीन साहित्य से भी यह प्रकट होता है कि भारत में ऐसी संस्थायें मौजूद थीं जो विदेशों से व्यापार करने वाले व्यापारियों तथा अन्य साहसी व्यक्तियों को रुपया उधार देती थीं। इनको श्रेष्ठी (वैंकर) के नाम से पुकारा जाता था। कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र भी इस वात का प्रमाण देता है कि भारत में उस समय व्याज पर रुपया उधार लेने देने का प्रचलन था।

१२ वीं शताब्दी में भारत के व्यापार में और भी वृद्धि हुई और हुण्डियों का चलन आरम्भ हो गया। प्रारम्भिक मुस्लिम काल तथा मुग़लों के समय में देशी वैंकरों का महत्वपूर्ण स्थान था। यह देश के आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार के लिये साख का प्रवन्ध करते थे और शासकों के लिये भी आवश्यकता के समय ऋण की व्यवस्था करते थे। मध्य कालीन भारत में कोई ऐसा राज्य न था जहां कोई प्रमुख वैंकर न हो। यह वैंकर जगत सेठ और नगर सेठ कहलाते थे और इनकी समाज और दरवार में वहुत मान प्रतिष्ठा थी। इस समय देशी वैंकरों

का ही बोलबाला था, तथा मुग़ल साम्राज्य की अवनति के साथ इनके व्यापार तथा प्रतिष्ठा को भी बहुत धक्का पहुँचा। मुग़ल साम्राज्य के छिन्न भिन्न हो जाने से देश में अशान्ति फैल गई और बहुत से शासक अपना ऋण न चुका सके। जिसके कारण यह भी अपनी जमा राशि का भुगतान न कर सके और इनकी प्रतिष्ठा कम हो गई। इसके अतिरिक्त इस समय अंग्रेजी भी भारत में आ चुके थे जो इनसे परिचित न थे। उनके कार्य के ढंग ही दूसरे थे और देशी बैंकर उनके कार्य में सहायता न दे सके जिससे इनकी प्रभुता में कमी आ गई। १८३५ के बाद देश के सब सिक्के ग़ैर क़ानूनी घोषित कर चाँदी का रुपया प्रमाणिक सिक्का बना दिया गया और देशी बैंकरों के सिक्कों के अदला बदली के लाभदायक कारोबार का भी अन्त हो गया जिससे इनको बहुत क्षति हुई और इनका महत्व घट गया। परन्तु अब भी ये बैंकर अपनी प्राचीन पद्धति के अनुसार ही अपना कार्य चलाते हैं और देश के आन्तरिक व्यापार में बहुत हिस्सा बँटाते हैं। देहातों में अब भी इनका एक महत्वपूर्ण स्थान है।

परिभाषा—केन्द्रीय बैंकिंग कमेटी के अनुसार स्वदेशी बैंकरों की परिभाषा में कोई भी व्यक्ति या निजी फ़र्म इम्पीरियल बैंक, विनिमय बैंकों, सहकारी समितियों तथा व्यापारिक बैंकों को छोड़ कर सम्मिलित की जा सकती है जो जमा प्राप्त करे, उधार दे तथा हुण्डियों का व्यवसाय करे।

डाक्टर एल० सी० जैन के अनुसार कोई भी व्यक्ति या निजी फर्म स्वदेशी बैंकर की सूची में आ जायगी यदि वह उधार देने के अतिरिक्त जमा प्राप्त करे या हुण्डियों का व्यवसाय करे या यह दोनों कार्य करे।

अतः वे सब व्यक्ति या निजी फर्म जो उधार देने के अलावा जमा भी प्राप्त करते हैं और हुण्डियों का व्यवसाय भी करते हैं स्वदेशी बैंकर कहलाते हैं।

साहूकार और स्वदेशी बैंकर में भेद

(१) साहूकार तो केवल अपनी पूंजी को ही ऋण पर देता है परन्तु स्वदेशी बैंकर ऋण देने के अतिरिक्त जमा भी प्राप्त करते हैं और हुंडी का व्यवसाय भी करते हैं। किन्तु बहुत से बैंकर जमा नहीं लेते। भिन्न भिन्न बैंकिंग जांच कमेटियों के अनुसार जमा प्राप्त करना देशी बैंकरों का मुख्य लक्षण नहीं है परन्तु हुंडी का व्यवसाय करना उनका एक मुख्य लक्षण है।

(२) साहूकारी का काम तो लगभग सभी जाति के लोग करते हैं, परन्तु बैंकिंग का कार्य कुछ विशेष जाति के ही लोग करते हैं। उनमें मारवाड़ी, वैश्य, जैनी, चेट्टी, खत्री तथा शिकारपुरी मुलतानी मुख्य हैं।

(३) साहूकार अधिकतर उपभोग के लिये ही ऋण देता है, परन्तु स्वदेशी बैंकर उत्पत्ति तथा उपभोग दोनों के लिये ऋण देते हैं।

(४) स्वदेशी बैंकर को हुण्डियों में व्यवसाय करना आवश्यक है; साहूकार ऐसा नहीं करता।

(५) स्वदेशी बैंकर ऋण के लिये जाने के कारणों की भी जांच करता है परन्तु साहूकार ऐसी कोई जांच नहीं करता।

(६) स्वदेशी बैंकर जमानत पर ऋण देता है, परन्तु साहूकार बिना जमानत के भी ऋण दे देता है।

(७) स्वदेशी बैंकर का ऋण जल्दी वापिस कर दिया जाता है परन्तु साहूकार का ऋण बहुत समय तक चलता है।

(८) स्वदेशी बैंकर के ऋणों में व्याज की दर बहुत कम होती है जब कि साहूकारी ऋणों में यह दर बहुत ऊंची कहीं कहीं २००% तक होती है।

स्वदेशी बैंकर तीन प्रकार के होते हैं—(१) वे जिनका बैंकिंग ही मुख्य काम है, (२) वे जिनका मुख्य काम बैंकिंग है परन्तु जो साथ में थोड़ा अन्य व्यापार भी करते हैं, (३) वे जो बैंकिंग तथा व्यापार दोनों कार्य करते हैं।

देशी बैंकर कोठीवाल, सर्राफ तथा चेट्टी इत्यादि के नाम से पुकारे जाते हैं। बड़े देशी बैंकर अपने कार्यालय बम्बई, कलकत्ता, मद्रास इत्यादि बड़े बड़े व्यापारिक केन्द्रों में रखते है, जिनका काम उनके मुनीम और गुमाश्ते, जो अत्यन्त कुशल और ईमानदार होते है, बड़ी सफलता के साथ चलाते हैं। ये मुनीम और गुमाश्ते अपने कारोबार की रिपोर्ट प्रधान कार्यालय को भेजते रहते हैं। अधिकतर देशी बैंकर स्वतन्त्र रूप से काम करते हैं, परन्तु फिर भी उनमें से कुछ अब भी ऐसे संघों के सदस्य हैं, जो 'महाजन' कहलाते हैं और अब भी उत्तर और दक्षिण भारत में पाये जाते हैं। इनका मुख्य कार्य धार्मिक तथा सामाजिक होता है। कभी कभी वे दो बैंकरों के बीच झगड़ा निपटाने और दिवालिया अदालत का भी काम करते हैं। पिछले वर्षों में देशी बैंकरों ने अपने कुछ संघ स्थापित किये हैं। वैसे इनमें पारस्परिक सहयोग की कमी पाई जाती है।

इन बैंकरों का कारोबार पारिवारिक होता है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है। इनको बैंकिंग की कोई विशेष शिक्षा नहीं दी जाती इनके बैंकिंग के तरीके सरल और सस्ते होते हैं और इनका व्यापारिक क्षेत्र बहुत छोटा। ग्राहक

इनके पास किसी भी समय जा सकता है और आसानी से हिसाब खोल सकता है । ये अपने हिसाबों को गुप्त भी रखते हैं, और अपने ग्राहकों का हिसाब समय समय पर देते रहते हैं। इनके खाते और हिसाब सही और साफ होते हैं। ये ब्याज पर धन जमा नहीं करते और इनकी ब्याज दर भिन्न भिन्न प्रान्तों में भिन्न भिन्न है। इनके काम करने के ढग बहुत कम खर्चीले होते हैं । इनके कार्यालय में केवल कुछ मुनीम और एक आध तिजोरी होती है, अधिक फर्नीचर की आवश्यकता नहीं होती। देशी बैंकर बैंकिंग के साथ साथ और भी व्यापार करते हैं, परन्तु दोनों के खाते अलग अलग नहीं रखते। इन बैंकरों का काम अधिकांश पुराने पुश्तैनी ग्राहकों से होता है। इसलिये अपने ग्राहकों की आर्थिक स्थिति व उनके व्यापर की दशा से भली भांति परिचित होते हैं और आसानी से ऋण दे देते हैं। ऋण देने के बाद भी ये ग्राहक के व्यापार की निगरानी रखते हैं, जिससे इनका रुपया बहुत कम डूबता है। व्यापारिक बैंकों के लिये यह काम बहुत कठिन है। ये साहूकार को भी सहायता देते हैं। जमा किया हुआ रुपया यह तुरन्त मांगने पर वापिस दे देते हैं। इसलिये इनको यथेष्ट नक़द कोष भी अपने पास रखना पड़ता है।

ये साहूकारों के सब कार्य करते हैं और उन्हीं की तरह प्रणपत्र, रहन, किश्त, बोंड, गिरवीं या खाते पेटे के तरीके से ऋण देते हैं। ये बैंकर चालू जमा और मुद्दती जमा दोनों लेते हैं। सूद की दर मौसम, रक़म और समय के अनुसार भिन्न होती है । अधिकतर देशी बैंकर अपनी पूंजी पर ही निर्भर रहते हैं । वैसे कभी कभी ये बैंकर इम्पीरियल बैंक से भी आवश्यकता के समय ऋण लेते हैं। सीज़न के समय

ये आपस में भी उधार लेते देते हैं। बड़े बड़े केन्द्रों में वे इम्पीरियल बैंक तथा अन्य व्यापारिक बैंकों से भी प्रामिसरी नोट पर ऋण लेते हैं या हुण्डियों को बैंकों से भुना कर अधिक रुपया प्राप्त करते हैं।

देशी बैंकर किसानों को सीधे ऋण नहीं देते। वे साहूकारों को ऋण देते हैं और साहूकार किसान को। ये व्यापारियों और आढ़तियों को भी ऋण देते हैं, जो खेती की फसल क्रय करते हैं। वे आन्तरिक व्यापारी को फ़सल की ज़मानत पर नक़द साख देते हैं। बहुत से देशी बैंकर अपना रुपया मुद्दती जमा के रूप में मिलों में जमा कर देते हैं और कम्पनियों के शेयर रख कर उनको अधिक समय के लिए ऋण दे देते हैं। ये बहुधा प्रोमिसरी नोट पर भी ऋण दे देते हैं। रक़म अधिक होने पर, ये प्रोमिसरी नोट पर ज़मानतदार के भी हस्ताक्षर ले लेते हैं, नहीं तो व्याज बहुत अधिक लेते हैं। बड़ी रक़म के ऋण के लिये ये भूमि तथा इमारत को गिरवीं रख लेते हैं। कभी कभी ऋण लेने वाला प्रोमिसरी नोट के स्थान पर एक रसीद लिख देता है या स्टाम्प पर ऋण के बारे में लिख देता है, और कभी कभी उसका बैंकर की वही में हस्ताक्षर कर देना और स्टाम्प लगा देना ही काफ़ी होता है।

ऋण देने के अतिरिक्त देशी बैंकर हुण्डी का भी बहुत बड़े व्यापार करते हैं। ये हुण्डियां कई प्रकार की होती हैं। दर्शनी हुण्डी का भुगतान तुरन्त करना पड़ता है। मुद्दती हुण्डी का भुगतान एक मुद्दत अर्थात् एक निश्चित अवधि के बाद करना पड़ता है। यह अवधि ११, २१, ३१, ४१ दिन इत्यादि ३६१ दिन तक होती है। धनी जोग और शाह जोग हुण्डी का भुगतान उनके वास्तविक स्वामी को ही करना पड़ता है।

ग़लत भुगतान पर उनके असली स्वामी को फिर भुगतान करना पड़ेगा। कभी कभी ये लोग हुण्डियां अपने व्यापारियों और एजेण्टों को आर्थिक सहायता देने के लिये भी लिखते हैं। देशी बैंकरों के पास हुण्डियों का भुनाना तथा पुनः भुनाना भी होता है। ये हुण्डियां बाजार दर से भुनाई जाती हैं जो घटती बढ़ती रहती हैं। ये बैंकर हुण्डियों के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को रुपया भेजने की भी सुविधा देते हैं। बहुत से बैंकर बैंकिंग के काम के साथ अन्य व्यापार भी करते हैं, क्योंकि उससे इन्हें बहुत लाभ होता है। ये सट्टे बाज़ारों में हिस्सों, जूट, रुई के सौदे करते हैं। वे जनरल मर्चेन्ट्स, आढ़तिये व ज्वेलर्स का कार्य भी करते हैं और शक्कर, तेल, आटे, कपास जूट इत्यादि के कारखाने भी चलाते हैं। वे आयात की वस्तुओं में अपनी पूंजी लगाते हैं और निर्यात की वस्तुओं को बड़े बड़े शहरों और बन्दरगाहों तक पहुंचाने में सहायता देते हैं।

बैंकर तथा व्यापारिक बैंकों का अन्तरः—

व्यापारिक बैंकों की स्थापना भारतीय कम्पनी विधान द्वारा होती है और वे अपना कार्य बैंकिंग विधान के अनुसार करते हैं, परन्तु देशी बैंकरों के लिए कोई ऐसा विधान नहीं है।

व्यापारिक बैंकों की अधिकतर पूंजी जमा स प्राप्त होती है, परन्तु देशी बैंकर बहुत कम जमा प्राप्त करते हैं। व्यापारिक बैंकों स धन चैक द्वारा निकाला जाता है, किन्तु देशी बैंकर नक़द रुपया वापस करने में चैक का प्रयोग नहीं करते। ये व्यापारिक बैंकों की तरह कटौती तथा पुनर्कटौती का काम नहीं करते।

देशी बैंकर अचल सम्पत्ति की जमानत पर लम्बे अर्से के लिए ऋण देते हैं, परन्तु यह व्यापारिक बैंकों की नीति के

विरुद्ध है, जो अधिकतर थोड़े समय के लिए ही ऋण देते हैं। इनकी व्याज दर बैंकों की अपेक्षा अधिक होती है। देशी बैंकर सट्टे के बाजारों में भी सौदा करते हैं और अन्य व्यापार में भी भाग लेते हैं, परन्तु व्यापारिक बैंक ऐसा नहीं करते। ये बैंकर निर्यात को सहायता नहीं पहुँचाते जब कि व्यापारिक बैंक ऐसा करती है। इन बैंकरों को अपने ग्रामीण ग्राहकों की आर्थिक स्थिति का व्यापारिक बैंकों की अपेक्षा अधिक ज्ञान रहता है। इसलिए ये उन्हें बिना जमानत के भी ऋण दे देते हैं। रिजर्व बैंक के साथ देशी बैंकरों का व्यापारिक बैंकों की अपेक्षा बहुत कम सम्बन्ध है।

देशी बैंकरों का अपने ग्राहकों से सम्बन्धः—देशी बैंकरों का उनके ग्राहकों से बहुत अच्छा सम्बन्ध रहता है। सभी बैंकिंग जांच कमेटियों ने उनकी अपने ग्राहकों के प्रति ईमानदारी और सचाई की प्रशंसा की है। उनके ग्राहकों में उनकी बहुत प्रतिष्ठा है। वे उनके बहुत निकट सम्पर्क में रहते हैं और बैंकर उनको व्यापार सम्बन्धी सलाह भी देते रहते हैं और उनके कारोबार पर भी दृष्टि रखते हैं, जिस कारण वे ग्राहकों की आर्थिक स्थिति से बहुत अच्छी तरह परिचित रहते हैं।

इम्पीरियल बैंक तथा व्यापारिक बैंकों के साथ सम्बन्धः—

देशी बैंकरों और इम्पीरियल तथा व्यापारिक बैंकों में कोई घनिष्ट सम्बन्ध नहीं है। पहले तो देशी बैंकर इनकी सहायता चाहते ही नहीं और जब भी वे इनसे ऋण लेना चाहते हैं, तो यह बैंक उनके कारोबार की भद्दे ढंग से जाँच पड़ताल करते हैं जो उन्हें अखरता है। व्यापारिक बैंकों का कहना है, कि देशी बैंकरों की स्थिति का पता लगाना

कठिन है और वे सट्टे के कामों में फंसे रहते हैं। इसलिये उन्हें ऋण देने के लिये इन बैंकों को देशी बैंकरों की जांच पड़ताल करना आवश्यक हो जाता है। परन्तु जिन देशी बैंकरों पर इन्हें विश्वास हो जाता है और जो इनकी स्वीकृत सची में आ जाते हैं, उनकी यह व्यापारिक बैंक पर्याप्त सहायता करते हैं। यह उनको प्रणपत्रों की जमानत पर जिन पर कम से कम एक या दो हस्ताक्षर हों नक़द साख प्रणाली के अनुसार उधार देते हैं। ये देशी बैंकरों की हुण्डियों को भी आवश्यकता पड़ने पर भुनाते हैं और उन्हें द्रव्य एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजने की भी सुविधा देते हैं, परन्तु ये देशी बैंकरों पर लिखे हुये चैकों को नहीं लेते हैं।

देशी बैंकरों के पतन के कारण

(१) अंग्रेजी एजेन्सी हाउसों के स्थापित हो जाने के कारण इनके विदेशी विनिमय तथा विदेशी व्यापार के काम का अन्त हो गया।

(२) सहकारी बैंक और व्यापारिक बैंकों की प्रतिस्पर्द्धा के कारण, इनको काफी क्षति पहुँची है।

(३) हुंडियों पर अधिक स्टाम्प ड्यूटी होने और प्रणपत्रों पर रजिस्ट्रेशन फीस लगाने से उनके हुण्डी के कारोबार में काफी हानि हुई।

(४) बैंकर्स साक्षी विधान (Bankers' Evidence Act) में जो बैंकों को सुविधायें प्राप्त हैं, देशी बैंकरों को प्राप्त नहीं हैं। इसी प्रकार के अन्य विधानों के कारण भी इन्हें पर्याप्त क्षति हुई है।

(५) निर्यात करने वाली फर्मों ने भी देश के अन्दर मंडियों और व्यापारिक केन्द्रों में अपनी शाखायें खोल ली हैं

जिसके कारण इनके आन्तरिक तथा एजेन्सी कारोबार को धक्का लगा।

(६) जनता इनके दूषित कार्यों से रुष्ट है। इसलिये इनके पास कम धन जमा कराती है।

(७) यह अपने व्याज की दर कम नहीं कर सके। इस कारण यह बिल बाजार की उन्नति में सहयोग देने में असमर्थ रहे।

(८) इम्पीरियल बैंक जो देश की सब से बड़ी बैंक थी स्वदेशी बैंकरों की कुछ सहायता न कर सकी।

(९) विदेशी व्यापार का काम आज कल सब विनिमय बैंकों के हाथ में चला गया है और सरकारी कोषों के स्थापित हो जाने से, इनका रेवेन्यू उगाने का कार्य भी इन से छिन गया है।

(१०) देश में व्यापार का विस्तार हो जाने के कारण, इन्होंने अपना ध्यान सट्टे और व्यापार की तरफ अधिक लगा दिया है।

पिछले वर्षों से बड़े बड़े स्वदेशी बैंकर अब अपने प्राचीन बैंकिंग ढंग को बदल कर आधुनिक ढंग अपनाने लग गये हैं।

देशी बैंकरों के दोष—(१) देशी बैंकर अधिकांश दकियानूसी और रूढ़िवादी हैं। ये आधुनिक बैंकिंग प्रणाली से बहुत दूर हैं। इनके काम का ढंग दकियानूसी होने के कारण ये आधुनिक बैंकों के मुकाबले में टिक नहीं सकते।

(२) इनका संगठन अच्छा नहीं है और यह एक दूसरे से ईर्ष्या करते हैं।

(३) इनका व्यापार कुछ परिवारों तक ही सीमित रहता है। इस के कारण ये बहुत कम जमा प्राप्त कर पाते हैं और देश की बहुत सी पूंजी बेकार पड़ी रहती है।

(४) वे व्यापार में हुण्डियों का बहुत कम उपयोग करते हैं और नकद रुपये से ही लेन देन करते हैं।

(५) ये बैंकिंग के कारोबार के अतिरिक्त अन्य व्यापार भी करते हैं और सोने चांदी के बाजारों में सट्टा करते हैं।

(६) इनको जमा पर अधिक पूंजी न प्राप्त करने के कारण इनकी पूंजी मांग के अनुपात में कम रहती है।

(७) इनका हिसाब रखने का ढंग पुराना है और अधिकतर ये उसको गुप्त रखते हैं।

(८) ये बिल, चैक आदि प्रमुख साख पत्रों का उपयोग नहीं करते।

(९) इनका व्यापारिक बैंकों से कोई घनिष्ट सम्बन्ध नहीं होता। इसलिये देश में दो मुद्रा बाजारों की सृष्टि हो जाती है। रिजर्व बैंक का भी इन पर कोई विशेष नियन्त्रण नहीं है।

इतना होते हुये भी देशी बैंकरों की देश को आवश्यकता है क्योंकि देश में बड़े नगरों और व्यापारिक केन्द्रों को छोड़ कर व्यापारिक बैंकों की शाखायें नहीं हैं। छोटे छोटे नगरों, मंडियों और विशेषकर गांवों में देशी बैंकर की बहुत आवश्यकता है। वे अनुभवी होते हैं, उन के काम के ढंग बहुत कम खर्चीले हैं। अतः उनको नष्ट न होने देकर उनमें सुधार की आवश्यकता है, जिससे वे देश का हित कर सकें। केन्द्रीय बैंकिंग कमेटी का मत है कि देशी बैंकरों के दोष दूर करके उन को आधुनिक बैंकिंग से मिला देना चाहिये। इसके कमेटी ने

निम्न कारण बताये हैं :

(१) भारतवर्ष में २५०० गांवों में से जिनकी आबादी ५००० है, केवल १६५५ गांवों में, केवल कोई वैंक या उसकी शाख है, शेष गांवों में देशी वैंकर ही काम करते हैं। व्यापारिक वैंकों तथा अन्य सहकारी वैंकों को ऐसे स्थानों पर कार्य करना कठिन होगा।

(२) उनके व्याज की दर दूसरे वैंकों की अपेक्षा अधिक नहीं है वल्कि संकट के समय वह कम भी कर दी जाती है।

(३) वे हुँडियों में वहुत समय से व्यापार करते आ रहे हैं। अतः वे बिल वाजार की उन्नति में काफी लाभ प्रद सिद्ध हो सकेंगे।

(४) वे उधार लेने वालों की स्थिति से अच्छी तरह परिचित होते हैं। इसलिये उनसे पूरा पूरा लाभ उठाया जा सकता है।

इन कारणों से केन्द्रीय जांच कमेटी के मतानुसार नीचे लिखे सुधार किये जाने चाहिये। ये सुधार उन पर जवरदस्ती नहीं थोपे जाने चाहिये किन्तु उनको स्वयं अपनाने चाहिये :—

(१) रिजर्व वैंक को उन देशी वैंकरों के नाम, जो केवल वैंकिंग का ही व्यापार करते हैं या करने को तैयार हैं, अपनी स्वीकृत तालिका में दर्ज कर उन से निम्न प्रकार से सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये :—

(i) उन्हें अन्य वैंकों की तरह हुण्डियों को पुनः भुनाने की सुविधा देनी चाहिये।

(ii) प्रत्येक वैंकर के लिये एक न्यूनतम पूंजी की रकम निश्चित कर देनी चाहिये, जो व्यापारिक वैंकों की न्यूनतम पंजी से कम हो।

(iii) उन को ठीक हिसाब रखने का आदेश दे देना चाहिये, जिसका रजिस्टर्ड अंकेक्षक द्वारा अंकेक्षण होना आवश्यक हो और रिजर्व बैंक जब चाहे उन हिसाबों को देख सके।

(iv) इन्हें भी अन्य बैंकों की तरह रिजर्व बैंक के पास अपने दायित्वों का खास प्रतिशत जमा रखना चाहिये। उन बैंकरों को जिनकी जमा पांच गुनी से अधिक नहीं है, ५ साल तक ऐसा करने से छूट मिल जानी चाहिये।

(v) इनको एक निश्चित कोष भी रखना चाहिये।

(vi) इनको दूसरे बैंकों की तरह सुविधायें देकर रिजर्व बैंक को गांव में अपना आढ़तिया बना देना चाहिये।

(२) रिजर्व बैंक, इम्पीरियल बैंक और अन्य बैंकों को इन के द्वारा चैक और बिल एकत्रित करवाने चाहिये और इनको मुद्रा भेजने की सुविधायें देनी चाहिये।

(३) बैंक की किताबों सम्बन्धी कानून (Bankers' Books Evidence Act) की सुविधायें इनको देना चाहिये।

(४) स्थानीय सलाह देने वाले बोर्ड स्थापित करके देशी बैंकरों को उनमें शामिल करना चाहिये और अन्य बैंकों को ऐसे देशी बैंकरों के बिलों को भुनाना चाहिये, जो ठीक जमानत दें और जिन के बारे में स्थानीय बोर्ड सलाह दें।

(५) वे अपने आप को निम्न रूप में परिणित कर सकते हैं:—

(i) वे अपने आप को निजी सीमित दायित्ववाली कम्पनियों (Private Limited Companies) में बदल लें।

(ii) वे सम्मिलित पूंजी वाली बैंकों से मिल जांय।

(iii) वे अपने आप को जर्मनी की कोमण्डित सिद्धान्त की बैंकों के रूप में बदल लें, जिससे बड़े बैंक इनका पूर्ण लाभ उठा सकें।

(iv) वह बैंकर व्यापारिक बैंकों के आढ़तिये बन जांय।

(v) वे देशी बैंकर जो रिजर्व बैंक की तालिका में हों, सम्पूर्ण भारत के बैंकरों के एसोसियेशन के सदस्य बनें।

(vi) स्वदेशी बैंकर तथा व्यापारिक बैंक साझे में काम करें।

(६) देशी बैंकरों को नये ढंग से हिसाब रख कर उनका अंकेक्षण करवाना चाहिये।

(७) उनके व्यापारिक हिसाब की किताबें पृथक होनी चाहिये।

(८) उनको सट्टेबाजी का कार्य बन्द कर देना चाहिये। चेकों का प्रयोग करना चाहिये और बिल बाजार को प्रोत्साहन देना चाहिये।

(९) उन्हें हुण्डियों के कटौती के ढंग में सुधार कर देना चाहिये और कृषि व्यापार को अधिकतर हुण्डियों के द्वारा ही करना चाहिये।

(१०) उनको अपने दूषित कार्यों को त्याग देना चाहिये और ब्याज की दर में कमी कर देनी चाहिये।

(११) उनका पुनः संगठन बन जाना चाहिये, जिससे वे आपस में मिल कर काम कर सकें।

रिज़र्व बैंक ने भी १९३७ में उनके सुधार के लिये निम्न सुझाव रक्खे थेः—

(१) देशी बैंकरों को भी अपनी चालू जमा का ५% और मुद्दती जमा का २% रिज़र्व बैंक के पास रखना चाहिये तथा खूब जमा प्राप्त करनी चाहिये।

(२) जिन देशी बैंकरों की पूंजी दो लाख या उससे अधिक है, उन्हें पांच वर्ष के अन्दर अपनी पूंजी ५ लाख करके अपने को बैंकिंग विधान के अन्तर्गत कम्पनी बना लेनी चाहिये।

(३) उन्हें अन्य व्यापारों को छोड़ देना चाहिये बैंकिंग विधान के अन्तर्गत केवल बैंकिंग का ही कार्य करना चाहिये।

(४) उन्हें अपने हिसाब ठीक तरह रखने चाहिये और उनका अंकेक्षण करा कर मासिक विवरण रिजर्व बैंक के पास भेजना चाहिये।

(५) देशी बैंकरों को अपने बिल सदस्य बैंक से भुनाने चाहिये, ताकि वे रिजर्व बैंक से उनको पुनः भुना सकें।

(६) रिज़र्व बैंक को उनके व्यवसायों का सुनियमन करने का अधिकार होगा।

उपरोक्त सुझाव में से देशी बैंकर कुछ सुझावों से सहमत न हो सके और उन्होंने उनका विरोध किया। रिज़र्व बैंक ने उन सुझावों में सुधार करने से इन्कार कर दिया तथा इन सुधारों का कोई विशेष परिणाम नहीं हुआ। इसके बाद रिज़र्व बैंक ने इस दिशा में और कुछ नहीं किया। रिज़र्व बैंक को इस विषय में अपनी नीति उदार रखनी चाहिये और फिर एक बार देशी बैंकरों को अपने नियन्त्रण में लाने का प्रयास करना चाहिये। इसी में देश की भलाई होगी।

अभ्यास-प्रश्न

(१) ग्रामीण जनता की समस्या को विस्तारपूर्वक समझाइये।

(२) किसानों को किस किस प्रकार के ऋणों की आवश्यकता होती है और क्यों ?

(३) देश की ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में देशी महाजनों का क्या हाथ है ? इनकी कार्य विधि की इतनी आलोचना होते हुये भी इनकी सेवायें आवश्यक क्यों समझी जाती हैं ? संक्षेप में समझाइये।

(४) देशी महाजनों तथा स्वदेशी बैंकरों में क्या अन्तर है ? स्वदेशी बैंकरों के महत्व को स्पष्टतया समझाइये।

(५) भारतीय किसान ब्याज की इतनी ऊँची दर देकर भी ऋण क्यों लेते हैं ? विस्तारपूर्वक समझाइये।

(६) भारत में मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण देने के लिये क्या क्या सुविधायें मौजूद हैं ? इनकी त्रुटियों पर प्रकाश डालिये।

(७) देशी महाजनों को कुछ लोग शायलाक व रक्त शोषक कीटाणुओं की उपाधि प्रदान करते हैं तथा कुछ लोग ग्रामीणों के मित्र की। तुम किस विचार-धारा से सहमत हो और क्यों ?

(८) हमारे देश की सरकारों ने ग्रामीण ऋण की समस्या को सुलझाने के लिये क्या क्या प्रयत्न किये हैं ? बतलाइये।

(९) एक स्वदेशी बैंकर तथा आधुनिक बैंकर में क्या अन्तर है ? रिजर्व बैंक ने स्वदेशी बैंकरों की दशा सुधारने के लिये क्या क्या प्रयत्न किये हैं ?

चौदहवाँ अध्याय

सहकारी साख समितियां और बैंक

ग्रामीण जनता की अल्पकालीन और मध्यकालीन आर्थिक आवश्यकतायें सहकारी साख समितियों द्वारा भी पूरी हो सकती हैं। सहकारिता के द्वारा एक अकेला और शक्तिहीन व्यक्ति भी दूसरों से मिल कर वह सब लाभ उठा सकता है, जो केवल धनी और शक्ति सम्पन्न व्यक्तियों को ही प्राप्त होते हैं। सहकारी साख समितियां स्वयं ग्रामीणों की ही संस्थायें होती हैं और वे ही इनका संचालन करते हैं और अपने सदस्यों को उत्पादन के लिये उचित शर्तों पर ऋण देते हैं। भारत में इनका विकास दो प्रकार के सिद्धान्तों पर हुआ है।

(अ) रफैसिन (Raiffeisen):—ग्रामीण समितियां अधिकतर रफैसिन के सिद्धान्तों के अनुसार बनाई जाती हैं। रफैसन आदर्श के सिद्धान्त इस प्रकार हैं:—

(i) दस या इससे अधिक व्यक्ति समिति बना सकते हैं, (ii) इनमें कोई अंशों का निर्गमन (Issue) नहीं किया जाता; सब सदस्यों की जिम्मेवारी पर रुपया उधार लेकर पूंजी बनाई जाती है; (iii) सदस्यों का दायित्व असीमित होता है; (iv) समिति का क्षेत्र एक गांव होता है, जिससे प्रत्येक सदस्य एक दूसरे से भली प्रकार परिचित हो और एक

ही समिति का सदस्य हो सकता है; (v) कोई प्रवेशशुल्क नहीं लिया जाता; (vi) प्रबन्ध भी निशुल्क होता है; (vii) ऋण केवल उत्पादन के लिये व्यक्तिगत ज़मानत पर दिये जाते हैं; (viii) किसी प्रकार के लाभांशों का विभाजन नहीं होता; (ix) समिति के बन्द होने पर सुरक्षित कोष सार्वजनिक या परोपकारी कार्यों में लगा दिया जाता है।

(ब) शुल्ज़ डिल्ज़ (Schulze Delitzch):–शुल्ज़ डिल्ज़ के सिद्धान्तों का अनुकरण शहरी समितियों में किया जाता है। इनके सिद्धान्त इस प्रकार हैं:—

(i) विस्तृत क्षेत्र में से सदस्यों की बहुसंख्या प्राप्त करने में इनका विश्वास है; (ii) प्रबन्ध के लिये प्रतिफल दिया जाता है, (iii) लाभांशों का वितरण किया जाता है, (iv) प्रवेश शुल्क लिया जाता है, [v] सदस्यों का दायित्व सीमित होता है, (vi) ऋण उत्पादन तथा उपभोग दोनों के लिये दिया जाता है।

भारत में सहकारिता आन्दोलन—

इस सम्बन्ध में सर्व प्रथम सन् १८८२ ई० में सर विलियम वैडरबर्न और श्री महादेव गोविन्द रानाडे ने सुझाव रक्खा था। इनकी कृषि योजना लार्ड रिपन की सरकार ने स्वीकार कर ली थी, परन्तु वह तत्कालीन भारत मन्त्री द्वारा अस्वीकृत कर दी गई। सन् १८९२ में मद्रास के एक उच्च राज्याधिकारी सर फ्रेडरिक निकलसन रफेसन के आधार पर सहकारी साख समितियों की स्थापना का सुझाव दिया। इसी समय उत्तर प्रदेश सिविल सर्विस के सदस्य ड्यूपरनैक्स ने भी इस विषय पर एक पुस्तक प्रकाशित की और १९०१ में अकाल जांच कमेटी ने भी

रफैसन बैंकों की स्थापना का समर्थन किया । इसी वर्ष लार्ड कर्जन ने सर एडवर्ड ला की अध्यक्षता में एक कमेटी बनाई और इस कमेटी की सिफारिशों के आधार पर १९०४ में सहकारी साख समितियों सम्बन्धी प्रथम क़ानून बनाया जाय। इस कानून के अनुसार केवल सहकारी साख समितियों की स्थापना की व्यवस्था की गई । अन्य प्रकार की सहकारिता स्थगित कर-दी गई । इस क़ानून के अन्तर्गत अठारह वर्ष से अधिक आयु के दस व्यक्ति, जो एक ही गांव या नगर के हों, समिति की स्थापना के लिये प्रार्थना-पत्र दे सकते थे । समिति के ⅘ सदस्य किसान होने पर समिति ग्रामीण सहकारी समिति कहलाती थी । अधिकतर ग्रामीण समितियाँ रफैसन सिद्धान्त पर और शहरी समितियाँ शुल्ज डील्ज सिद्धान्त पर बनाई जाती थीं । आन्दोलन को प्रोत्साहन देने के लिये सरकार ने भी इन समितियों को कुछ रियायतें और विशेष अधिकार दे दिये थे ।

सन् १९०४ के कानून बनने के बाद सहकारी आन्दोलन की बड़ी प्रगति हुई, परन्तु इस कानून में कुछ कमियां अनुभव होने लगीं । इस कानून के अनुसार गैर साख समितियों, समितियों के संघों और केन्द्रीय बैंकों को कोई कानूनी संरक्षण नहीं मिला था। देहाती और शहरी समितियों का अन्तर कई कठिनाइयां उपस्थित करता था और देहाती समितियों में लाभ वितरण का न होना भी एक बाधा थी । इसलिये सन् १९१२ में एक दूसरा कानून बना जिससे १९०४ के कानून की सब कमियां दूर हो गईं । इससे आन्दोलन को और भी शक्ति मिली। १९१४ में सर एडवर्ड मैकलेगन की अध्यक्षता में एक कमेटी इस आन्दोलन के निरीक्षण के लिये नियुक्त हुई, जिसने काफी सुझाव रक्खे । कमेटी के सुझावों के अनुसार आन्दोलन का

पुनर्गठन किया गया और जो समितियां सहकारी आदर्श तक नहीं पहुंची थीं उनका अन्त कर दिया गया।

१९१९ में एक संशोधन विधान बना जिसके द्वारा सहकारिता एक प्रान्तीय विषय बना दिया गया और इसका प्रबन्ध प्रान्तों के मन्त्रियों को सौंप दिया गया। इस समय सहकारी समितियों की संख्या खूब बढ़ी और कई प्रान्तों में स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार नये नियम बनाये गये।

१९२९–३५ की आर्थिक मंदी के समय सहकारिता आन्दोलन को भारी धक्का लगा, किन्तु युद्ध और युद्धोत्तर के वर्षों में आन्दोलन ने सभी दिशाओं में पर्याप्त उन्नति की। अब ग्रामों के पुनर्वास और अन्य योजनाओं में आन्दोलन एक महत्वपूर्ण भाग ले रहा है।

सहकारी बैंकों को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं:—

(१) प्रारम्भिक सहयोग समितियां।
(२) केन्द्रीय सहकारी बैंक।
(३) प्रान्तीय सहकारी बैंक।

प्रारम्भिक सहयोग समितियां (Primary Societies)

इनको दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: (अ) कृषि सहकारी साख समितियां और (२) नगर सहकारी साख समितियां।

(अ) कृषि सहकारी साख समितियां: (Agricultural Co-operative Credit Sooieties) इन समितियों की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं:—

(i) सदस्यता:—एक ही गांव अथवा जाति के कोई दस व्यक्ति, जो अठारह वर्ष से अधिक आयु के हों, समिति खोल सकते हैं। सदस्यों की संख्या १०० से अधिक नहीं हो सकती।

(ii) कार्य क्षेत्र:—रफैसन सिद्धान्त के अनुसार 'एक गांव एक समिति' का नियम है। भारत में भी अधिकतर इसी नियम का अनुसरण किया जाता है। क्योंकि ऐसा होने पर प्रत्येक सदस्य एक दूसरे से भली प्रकार परिचित हो जाता है, जिसका होना असीमित दायित्व वाली समितियों में होना आवश्यक है।

(iii) दायित्व:—कृषि समिति के सदस्यों का दायित्व अपरिमित होता है, अर्थात् यदि किसी समिति की सम्पत्ति उसका ऋण चुकाने के लिये अपर्याप्त हो, तो इसकी कमी प्रत्येक सदस्य से अलग अलग रकम वसूल करके की जाती है और सदस्यों की सम्पूर्ण सम्पत्ति भी इस काम में लाई जाती है। दायित्व के अपरिमित होने से ऋणदाताओं का समिति में अधिक विश्वास हो जाता है और सदस्य भी ऋण देने के बाद उसके उपयोग की जांच पड़ताल करते रहते हैं और उस पर निगरानी रखते हैं।

(iv) पूंजी—यह समितियां निम्न स्रोतों से पूंजी प्राप्त करती हैं:—

(अ) प्रवेश शुल्क, (आ) अंशों द्वारा, (इ) सदस्यों की जमा, (ई) सुरक्षित कोष, (उ) केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सहकारी बैंकों से लिया हुआ ऋण।

(v) प्रबन्ध—इनका प्रबन्ध अवैतनिक होता है। समस्त सदस्यों की एक जनरल कमेटी होती है और उनमें से थोड़े

सदस्य प्रति दिन के काम करने के लिये चुन लिये जाते हैं, जो सामूहिक रूप से प्रबन्ध कमेटी के नाम से सम्बोधित किये जाते हैं। प्रबन्ध समिति नये सदस्यों को भर्ती करने और पुराने सदस्यों के निर्वासन के लिये जनरल कमेटी को सुझाव देती है। ब्याज की दर तय करती है, सदस्यों को ऋण देती है और वसूल करती है। यह रुपया जमा करती है, समिति के लिये ऋण लेती है और उसे चुकाने का प्रबन्ध करती है। यही जनरल कमेटी के सामने वार्षिक चिट्ठा और हिसाब रखती है।

(vi) *ऋण का उद्देश्य*—ऋण साधारणतया उत्पादन कार्यों और पुराने ऋण चुकाने के लिये दिया जाता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से ऋण उपभोग और अनुत्पादक कार्यों, जैसे विवाह और अन्य सामाजिक तथा धार्मिक उत्सवों के लिये नहीं देना चाहिये, परन्तु व्यवहार में ऐसा भी ऋण दिया जाता है, नहीं तो किसान के साहूकार के पंजे में फंस जाने का भय रहता है।

(vii) *ऋण का भुगतान*—ऋण का भुगतान सुविधा-जनक किश्तों के रूप में होता है। भुगतान ऐसे समय पर मांगा जाता है, जब किसान के पास रुपया हो।

(viii) *ज़मानत*—सहकारी समितियों में कोई ज़मानत नहीं लेनी चाहिये और ऋण सदस्यों की ईमानदारी और चरित्र के आधार पर बिना किसी ज़मानत के दे देने चाहिए। परन्तु व्यवहार में ऋण लेने वालों से दो सहयोगी सदस्यों की ज़मानत के अतिरिक्त चल तथा अचल सम्पत्ति भी ज़मानत के रूप में मांगी जाती है।

(ix) ब्याज की दर—ब्याज की दर प्रायः नीची होती है परन्तु यह अधिक नीची नहीं होनी चाहिये, नहीं तो गांव वाले आवश्यकता से अधिक ऋण लेने के लिये प्रेरित होंगे।

(x) जांच और निरीक्षण:—समितियों के काम का निरीक्षण और हिसाब किताब की जांच सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार के द्वारा होती है, जो इस कार्य के लिये निरीक्षक और हिसाब परीक्षक नियुक्त करते हैं। निरीक्षण का कार्य निरीक्षक संघ और केन्द्रीय बैंकों द्वारा भी होता है।

(xi) लाभ:—जिस समिति में अंश नहीं होते, उनका सारा लाभ रक्षित कोष में जमा कर दिया जाता है। अंशों वाली समितियों में लाभ का कम से कम चौथाई भाग रक्षित कोष में डाला जाता है। शेष का १० % शिक्षा तथा अन्य दान धर्म के कार्यों में व्यय किया जाता है और शेष एक सीमा तक हिस्सेदारों को लाभांश के रूप में बाँट दिया जाता है।

(xii) पंचायत:—समिति और सदस्यों का झगड़ा पंचायत द्वारा तय किया जाता है। इन झगड़ों के लिये न्यायालयों में नहीं जाना पड़ता, जिससे समय, शक्ति तथा व्यय में बचत होती है।

(xiii) समिति का टूटना:—रजिस्ट्रार द्वारा कोई भी समिति, जो ठीक तरह से कार्य नहीं कर रही हो, और जिसके कार्य से रजिस्ट्रार असंतुष्ट हो, भंग की जा सकती है।

(xiv) वर्तमान स्थिति:—१९४० के पूर्व, इन समितियों की स्थिति संतोषजनक नहीं थी। इनके ऋण का बहुत सा रुपया वसूल नहीं होने पाता था और ऋणों में भी भारी कमी हो गई थी। परन्तु इसके बाद इन समितियों के कार्य में

पर्याप्त अदल बदल हुई है, और आन्दोलन की यह दिशा अब भी महत्वपूर्ण स्थिति में है। १६५० में इन साख समितियों की संख्या १,१७,२१७ थी।* बम्बई, मद्रास, और पंजाब में इन समितियों की विशेष उन्नति हुई।

(ब) *नगर सहकारी साख समितियां*:—ऋण की समस्या केवल गांवों में ही नहीं, परन्तु शहरों और क़स्बों में भी होती है। शहर और क़स्बों के निर्धन कारीगर, मजदूर तथा छोटे छोटे दूकानदारों को भी ऋण की आवश्यकता रहती है, जिनके हित के लिये यह नगर सहकारी समितियां बनाई जाती हैं। यह अधिकांश शुल्ज-डील्ज के सिद्धान्तों के अनुसार बनाई जाती हैं और छोटे छोटे दूकानदार, व्यापारियों, कारीगरों तथा कारखाने वालों को ऋण देती हैं। इनकी मुख्य विशेषतायें इस प्रकार हैं:—

(i) पूंजी:—इनकी समस्त पूंजी हिस्सों में बंटी हुई होती है, जो प्रत्येक सदस्य को खरीदने पड़ते हैं। प्रत्येक हिस्सेदार को एक वोट देने का अधिकार होता है। समिति का दायित्व सीमित होता है। मुद्दती जमा तथा रक्षित कोष भी इनकी कार्यशील पूंजी को बढ़ाते हैं।

(ii) *प्रबन्ध*:—जनरल कमेटी नीति बनाती है और प्रबन्धकारिणी समिति या संचालकों का बोर्ड समिति का प्रबन्ध करता है।

(iii) *ऋण नीति तथा कार्य*:—ये समितियां अपने सदस्यों में मितव्ययिता का प्रचार करती हैं और उन्हें आवश्यकता के अनुसार ऋण देती हैं। वे यह भी कोशिश करती हैं

* See Year Book, P. 76 to 80

कि सदस्य रुपया जमा भी करावें। ये समितियां बम्बई और बंगाल में बचत जमा तथा चालू जमा भी लेती हैं और हुण्डी भुनाने का काम भी करती हैं।

(iv) *लाभ-वितरण*:—लाभ का २५% रक्षित कोष में जमा कर शेष सदस्यों में वितरण कर दिया जाता है।

(v) *निरीक्षण*—निरीक्षण कृषि साख समितियों की तरह रजिस्ट्रार द्वारा ही होता है।

(vi) *वर्तमान स्थिति*—ये समितियां कृषि साख समितियों की अपेक्षा अधिक सफल हुई हैं, क्योंकि इनके सदस्य शिक्षित होते हैं, और नियमों का पूर्णतया पालन करते हैं। समितियां भी मज़बूत होती हैं। इनके पास अंशों और जमा की पर्याप्त पूंजी होती है और इनको केन्द्रीय या प्रान्तीय सहकारी बैंकों से ऋण लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। ऐसी समितियों ने बम्बई, मद्रास, बंगाल और पंजाब में विशेष उन्नति की है। इनकी कुल संख्या भारत में लगभग ७५३४ है।

(२) केन्द्रीय सहकारी बैंक

केन्द्रीय सहकारी बैंकों के स्थापित करने की सुविधा सन् १९१२ के कानून से दी गई। ये बैंक दो प्रकार के होते हैं—(१) वे बैंक जिनके सदस्य उसके क्षेत्र की केवल साख समितियां ही हो सकती हैं। ऐसे बैंक सहकारी बैंकिंग यूनियन भी कह कर पुकारी जाती हैं। (२) वे केन्द्रीय बैंक जिनके सदस्य समितियां और अन्य व्यक्ति, दोनों ही हो सकते हैं। ये मिश्रित केन्द्रीय सहकारी बैंक कहलाते हैं। भारतवर्ष में ऐसे ही बैंक अधिकतर पाये जाते हैं। ऐसा बैंक प्रायः एक जिले में होता है और इसको जिला बैंक भी कहते हैं।

पहिले प्रकार के बैंक वास्तव में आदर्श बैंक हैं, क्योंकि उनका प्रबन्ध तथा नीति निर्धारित करने का काम समितियों के हाथ में होता है। ऐसा ही यूनियनों की स्थापना के लिये मेकलेगन कमेटी ने भी सिफारिश की थी। परन्तु चूंकि गांव में शिक्षा का आभाव है और समितियों का प्रबन्ध करने के लिये योग्य व्यक्ति नहीं मिलते, जो केन्द्रीय बैंकों के भी संचालक का कार्य कर सकें, इसलिये मिश्रित केन्द्रीय बैंक बनाने की आवश्यकता पड़ती है। केन्द्रीय बैंकों की विशेषतायें इस प्रकार हैं :—

(i) क्षेत्र—केन्द्रीय बैंक का क्षेत्र प्रत्येक प्रान्त में भिन्न होता है। उस क्षेत्र की सब समितियां केन्द्रीय बैंक से ऋण लेती हैं। इनका क्षेत्र एक या एक से अधिक तालुका, तहसील या जिला होता है। दक्षिण तथा पश्चिमी भारत में केन्द्रीय बैंक का क्षेत्र एक जिला होता है परन्तु उत्तर भारत में अधिकतर एक तहसील में एक केन्द्रीय बैंक होता है।

(ii) प्रबन्ध—केन्द्रीय बैंक के हिस्सेदारों की सभा को साधारण सभा कहते हैं। सभा के प्रत्येक सदस्य को केवल एक मत देने का अधिकार होता है। यही सभा बैंक के संचालकों का निर्वाचन करती है। मिश्रित केन्द्रीय बैंकों में समितियों और व्यक्तियों के संचालकों की संख्या निश्चित होती है, समितियों के संचालकों की संख्या व्यक्तियों के संचालकों की संख्या से अधिक होती है। संचालक बोर्ड बैंक का प्रबन्ध करता है। जब संचालकों की संख्या अधिक होती है तो यह बोर्ड एक कार्यकारिणी समिति चुन लेता है, जो बैंक का सारा कार्य चलाती है। बैंक का रोज़ का काम प्रबन्ध संचालक अथवा चेयरमैन व अवैतानिक मंत्री की सहायता से

होता है। संचालकों को कोई प्रतिफल नहीं मिलता। वे अधिकतर समितियों के प्रतिनिधि होते हैं। किन्तु चेयरमैन और मंत्री बाहर के व्यक्ति होते हैं। उत्तर प्रदेश में चेयरमैन सरकारी कर्मचारी होता है।

(iii) पूंजी—केन्द्रीय बैंकों की पूंजी हिस्सों (Shares) रक्षित कोष, जमा तथा ऋण के द्वारा प्राप्त होती है। सरकारी यूनियनों में केवल समितियां ही हिस्से खरीद सकती हैं, किन्तु केन्द्रीय मिश्रित बैंकों में समितियां तथा अन्य व्यक्ति सदस्य भी हिस्से खरीद सकते हैं। समितियां अपने ऋण के अनुपात में हिस्से लेती हैं। साधारणतया हिस्सेदारों का दायित्व हिस्से के मूल्य तक ही सीमित रहता है, परन्तु कुछ प्रान्तों में हिस्सेदारों का दायित्व चार गुने से दस गुने तक है। लाभ का २५ प्रतिशत रक्षित कोष में जमा किया जाता है। वह भी कार्यशील पूंजी का काम करता है। बैंक की सब से अधिक कार्यशील पूंजी सदस्यों तथा असदस्यों की जमा (Deposits) होती है। ये बैंक दो तरह की जमा प्राप्त करते हैं—मुद्दती और सेविंग्स। कुछ बैंक चालू जमा भी प्राप्त करते हैं, परन्तु उसमें अधिक जोखिम होने के कारण अधिकांश बैंक चालू जमा नहीं लेते। आवश्यकता पड़ने पर, ये बैंक प्रान्तीय सहकारी बैंकों से भी ऋण लेते हैं। कभी कभी ये केन्द्रीय बैंक इम्पीरियल तथा अन्य बैंकों से भी ऋण लेते हैं।

(iv) कार्य—केन्द्रीय बैंक अधिकतर सहकारी साख समितियों और गैर साख समितियों को ही ऋण देते हैं। असीमित दायित्व वाली साख समितियों को ऋण प्रोनोट अथवा बांड पर दिया जाता है, परन्तु अन्य सहकारी समितियों से उसके अतिरिक्त कुछ जायदाद अथवा सम्पत्ति भी गिरवी

मांगी जाती है। केन्द्रीय बैंक अपनी साख समितियों की अधिकतम साख निश्चित कर देते हैं और उसी के अनुसार समितियों को अधिक से अधिक ऋण दिया जाता है। ये बैंक अधिकतर एक दो वर्षों के लिये ऋण देते हैं। ये बैंक प्रारम्भिक सहकारी साख समितियों से ७ प्रतिशत सूद लेते हैं और जमा पर इसे ५ प्रतिशत सूद देते हैं। जो रुपया केन्द्रीय बैंकों के पास आवश्यकता से अधिक होता है, उसे प्रान्तीय सहकारी बैंकों में जमा कर दिया जाता है या ट्रस्टी सिक्यूरिटियों में लगा दिया जाता है

केन्द्रीय बैंक अपने से सम्बन्धित साख समितियों की देख भाल भी करती है और उन पर अपना नियन्त्रण भी रखती है। इस कार्य के लिये केन्द्रीय बैंक कुछ कर्मचारी जो सुपरवाइजर कहलाते हैं रखती है। यह कर्मचारी ऋण के प्रार्थना-पत्रों की जांच करते हैं, समितियों की हैसियत का लेखा रखते हैं, और उन्हें अपने सदस्यों से रुपया वसूल करने में सहायता देते हैं।

(v) लाभ वितरण—केन्द्रिय बैंक के वार्षिक लाभ का २५ प्रतिशत रक्षित कोष में जमा कर दिया जाता है। कुछ भाग बट्टे खाते, इमारत, लाभ हानि सन्तुलन के लिये कोष स्थापित कर, अन्य कोषों में जमा कर दिया जाता है। शेष का ६ प्रतिशत से १० प्रतिशत तक हिस्सेदारों को लाभांश के रूप में बांट दिया जाता है।

(vi) निरीक्षण—केन्द्रीय बैंक की आय व्यय की जांच रजिस्ट्रार द्वारा नियुक्त अंकेक्षक करते हैं और यह इन बैंकों की आर्थिक स्थिति के विषय में रजिस्ट्रार को रिपोर्ट देते हैं। इन बैंकों का निरीक्षण रजिस्ट्रार तथा उसके आधीन अन्य

कर्मचारियों द्वारा होता है। प्रान्तीय सहकारी बैंक भी केन्द्रीय बैंकों का निरीक्षण करते हैं।

भारतवर्ष में कुल मिला कर ४९६ केन्द्रीय सहकारी बैंक हैं, जिनके लगभग ८०,००० व्यक्ति तथा १,४०,००० समितियां सदस्य हैं, और कार्यशील पूंजी ५० करोड़ रुपये है। गत दस वर्षों में युद्ध के कारण केन्द्रीय बैंकों की आर्थिक स्थिति में आम प्रगति हुई है।

(३) प्रान्तीय सहकारी बैंक या सर्वोपरि बैंक

मैकलेगन कमेटी ने जो सन् १९१४ में सहकारिता आन्दोलन की जांच करने के लिये नियुक्त की गई थी, प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय सहकारी बैंकों की आवश्यकता बतलाई, जो केन्द्रीय सहकारी बैंकों पर नियन्त्रण रखें, और उन्हें आवश्यक पूंजी प्राप्त करने में सहायता दें तथा मुद्रा बाजार व सहकारी आन्दोलन में सम्बन्ध स्थापित करें। यह कार्य उस समय तक सहकारी विभाग के रजिस्ट्रार के हाथ में था। परन्तु मैकलेगन कमेटी के सुझाव के अनुसार प्रान्तीय सहकारी बैंक स्थापित किये गये। आजकल लगभग सभी प्रान्तों में ऐसे बैंक हैं, जिनमें बम्बई, मद्रास और पंजाब के बैंक विशेष उल्लेखनीय हैं। इनकी कुल संख्या १२ है।

इन बैंकों का संगठन सब जगह एक सा नहीं है। पंजाब और बंगाल में सहकारी साख समितियां और सहकारी केन्द्रीय बैंक उनके सदस्य और हिस्सेदार होते हैं। दूसरे प्रान्तों में अन्य व्यक्ति भी इनके हिस्सेदार होते हैं।

इन बैंकों के संचालन के लिये व्यापारिक बुद्धि तथा बैंकिंग योग्यता चाहिये। अतः इनके डाइरेक्टर हिस्सेदारों के अतिरिक्त बाहरी व्यक्तियों में से भी चुने जाते हैं। सहकारी

विभाग का रजिस्ट्रार लगभग सभी प्रान्तों में इन बैंकों का या तो स्वयं पदेव (Self-appointed) डायरेक्टर होता है अथवा वह कुछ डायरेक्टर मनोनीत करता है।

इन बैंकों की कार्यशील पूंजी हिस्सों, जमा और रक्षित कोष से प्राप्त होती है। कभी कभी ये बैंक कुछ समय के लिये नकद साख या अधिविकर्ष (Overdraft) के रूप में इम्पीरियल बैंक, व्यापारिक बैंक, सहकारी केन्द्रीय बैंकों के द्वारा प्रारम्भिक सहकारी साख समितियों व अन्य प्रान्तीय बैंकों से ऋण भी ले लेते हैं। ये बैंक चालू, बचत और मुद्दती, तीनों प्रकार की जमायें प्राप्त करते हैं। मुद्रा बाजार के अनुसार ही वे अपने ब्याज की दर निर्धारित करते हैं।

भिन्न भिन्न प्रान्तों में उनके नियमानुसार प्रान्तीय सहकारी बैंकों को अपनी देनदारी के एक निश्चित अनुपात में नकदी तथा शीघ्र बिक जाने वाली सम्पत्ति (Assets) रखनी पड़ती है। ये बैंक २० से ५०% तक अपनी कार्यशील पूंजी सरकारी प्रतिभूतियों में लगाते हैं, कुछ धन व्यापारिक बैंकों तथा अन्य प्रान्तीय बैंकों में जमा कर देते हैं और शेष को अपने सदस्यों तथा सहकारी केन्द्रिय बैंकों और सहकारी साख समितियों को उधार देने में लगाते हैं। सहकारी साख समितियों को यह बैंक अधिकतर केन्द्रीय बैंकों के द्वारा ऋण देते हैं। प्रान्तीय बैंक क्रय विक्रय संघों और औद्योगिक सहकारी समितियों को कच्चे अथवा तैयार माल की जमानत पर ऋण देते हैं।

प्रान्तीय बैंक जमा प्राप्त करने के अतिरिक्त वे सभी बैंकिंग कार्य करते हैं जो अन्य व्यापारिक बैंकों द्वारा किये जाते हैं। जिन प्रान्तों में केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक नहीं हैं, वहां प्रान्तीय

बैंक ही भूमि बन्धक बैंकों के लिये डिबेंचर बेचते हैं और उन्हें लम्बे समय के लिये ऋण देते हैं।

१९४६ की सहकारी अनुसंधान कमेटी ने कम से कम ३% लाभांश आरम्भ के ५ वर्षों तक इसके हिस्सेदारों को देने की सिफ़ारिश की है।

वास्तव में प्रान्तीय सहकारी बैंकों के हिसाब की जांच रजिस्ट्रार को करनी चाहिये, परन्तु बहुत से प्रान्तों में इस हिसाब को अंकेक्षकों द्वारा जांच कराने की आज्ञा दे दी गई है। इन बैंकों को अपनी आर्थिक स्थिति का तिमाही लेखा प्रान्तीय सरकार को रजिस्ट्रार के द्वारा भेजना पड़ता है, जो उन पर अपना मत प्रकट करते हैं।

प्रान्तीय बैंक और केन्द्रीय बैंक—प्रान्तीय बैंक और केन्द्रीय बैंकों का सम्बन्ध भिन्न भिन्न प्रान्तों में जुदा जुदा है। वे केन्द्रीय बैंकों पर कोई नियंत्रण नहीं रखते। केन्द्रीय बैंक अपना रुपया प्रान्तीय बैंकों अथवा व्यापारिक बैंकों में जमा करते हैं। जिन प्रान्तों में प्रान्तीय बैंक हैं उन प्रान्तों में केन्द्रीय बैंक एक दूसरे को सीधे ऋण नहीं देते है। कुछ प्रान्तों में प्रान्तीय बैंक अपने निरीक्षकों द्वारा केन्द्रीय बैंकों का निरीक्षण करते है। यह निरीक्षण प्रान्तीय बैंकों द्वारा वांछनीय नहीं है परन्तु आवश्यक है। वास्तव में प्रान्तीय बैंकों का कार्य केन्द्रीय बैंकों के संतुलन करने तथा उन्हें बैंकिंग मुद्रा बाजार ऋण देने और व्याज की दर निर्धारित करने के सम्बन्ध में परामर्श देने का है।

प्रान्तीय बैंक और रिज़र्व बैंक—रिज़र्व बैंक प्रान्तीय सहकारी बैंकों व उनसे सम्बन्धित केन्द्रीय बैंकों को सरकारी प्रति

भूतियों की जमानत पर नक़द साख देता है। उन सहकारी वैंकों को रिज़र्व वैंक काग़ज भुनाने की भी सुविधा देता है जिनकी आर्थिक स्थिति से, वह सन्तुष्ट है। रिज़र्व वैंक कुछ वैंकों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर रुपया भेजने की भी सुविधा देता है, और इस कार्य के लिये उसने केन्द्रिय वैंकों को प्रान्तीय वैंकों की शाखा मान लिया है। रिज़र्व वैंक का कृषि विभाग इन पर नियंत्रण रखता है। जैसे जैसे प्रान्तीय वैंक रिज़र्व वैंक के सुधारों को मानते जांयगे, वैसे वैसे उनका आपस में सम्बन्ध घनिष्ट होता चला जावेगा। यद्यपि प्रान्तीय वैंकों को रिज़र्व वैंक से अभी सब सुविधायें नहीं मिली हैं, फिर भी अब एक अखिल भारतीय सहकारी या सर्वोपरि वैंक (Apex Bank) की आवश्यकता नहीं रही है।

अखिल भारतीय प्रान्तीय सहकारी वैंक संघ—इस संस्था का स्थापन १९२६ में हुआ था। इसका मुख्य कार्य प्रत्येक सदस्य की पूंजी के बाहुल्य तथा कमी के आंकड़े जमा कर, उनको अन्य सदस्यों को सूचित करना है, जिससे प्रत्येक सदस्य एक दूसरे की आर्थिक स्थिति से परिचित हो जाय, और लेन देन करने में सुविधा हो। यह सदस्य वैंकों को आर्थिक राय भी देता है और उनकी सहायता भी करता है। प्रान्तीय वैंकों को समय समय पर बुला कर सहकारी आन्दोलन की महत्वपूर्ण समस्याओं पर विचार करना भी इसका कार्य है। यह प्रान्तीय वैंकों, रिज़र्व वैंक और सरकार का ध्यान इन्हीं सम्मेलनों द्वारा आकर्षित करता है।

सहकारी आन्दोलन के लाभ

यद्यपि सहकारी आन्दोलन की हमारे देश में पूरी उन्नति

नहीं हुई है और उसमें कई दोष हैं, परन्तु फिर भी आन्दोलन से देश को बहुत लाभ हुये हैं, जो इस प्रकार हैं:—

(१) *आर्थिक लाभ*—सहकारी साख समितियां किसानों और कारीगरों को कम ब्याज पर ऋण देती है और उनमें बचत की भावना को प्रोत्साहित करती हैं। कई गाँवों में महाजन का एकाधिकार समाप्त हो गया है और उसने भी सूद की दर कम कर दी है, जिससे आम जनता को लाभ हुआ है। सहकारी समितियों ने ऋण कम करने में भी सहायता दी है। उन्होंने अनुत्पादक संचय को रोका है और यह नियंत्रित साख प्रदान करती हैं। गैरसाख समितियों से भी जनता को बहुत लाभ हुआ है।

(२) *नैतिक लाभ*—आर्थिक लाभों के अतिरिक्त सहकारिता ने सदस्यों का नैतिक स्तर भी ऊँचा उठा दिया है। केवल अच्छे चरित्र वाला व्यक्ति ही इन समितियों का सदस्य बन सकता है। सदस्यों के झगड़े पंचायत द्वारा सुलझाये जाते हैं, जिनसे मुकदमेबाजी कम होती है। सदस्य एक दूसरे पर नियंत्रण रखते हैं, जिससे फिजूलखर्ची कम होती है।

(३) *शैक्षिक लाभ*—सहकारिता आन्दोलन से सदस्यों के ज्ञान में वृद्धि होती है और समिति में उन्हें नागरिकता के कर्त्तव्यों तथा स्वशासन की शिक्षा मिलती है। प्रत्येक सदस्य को समिति की बैठकों में भाग लेना पड़ता है और यदि वह किसी जिम्मेदार पद पर नियुक्त हुआ, तो उसे समिति के सब कार्यों का अध्ययन करना पड़ता है, जिससे उसके ज्ञान में वृद्धि होती है। हस्ताक्षर करने और बही को पढ़ने से साक्षरता को भी प्रोत्साहन मिलता है।

(४) सामाजिक लाभ—आन्दोलन से सामाजिक लाभ भी बहुत हुए हैं। असीमित दायित्व के सिद्धान्त से पारस्परिक नियन्त्रण आवश्यक हो जाता है, और फ़िज़ूलखर्ची के विरुद्ध लोकमत तैयार हो जाता है। विवाह आदि धार्मिक और सामाजिक अवसरों पर फ़िज़ूलखर्ची कम हो जाती है और गाँवों में कुवों की मरम्मत, सफाई, गन्दे पानी की नालियों में सुधार, दवा देने आदि के अन्य अच्छे कार्य किये जाते हैं।

सहकारी आन्दोलन के कुछ दोष

(१) आन्दोलन पर सरकारी नियन्त्र अधिक होता जा रहा है, जिससे सदस्यों में सहकारिता का भाव पैदा नहीं होता और वह अपना दायित्व नहीं समझते।

(२) बहुत से सदस्य सहकारिता के सिद्धान्तों को नहीं समझते, जो बहुत आवश्यक है।

(३) बहुत से सरकारी और गैर सरकारी कर्मचारी जो आन्दोलन में लगे हुये हैं, बैंक सम्बन्धित कार्यों से अपरिचित होने के कारण, इनका ठीक ठीक प्रबन्ध नहीं कर सकते।

(४) समितियों का अंकेक्षण और निरीक्षण ठीक तरह नहीं होता है। इसके अतिरिक्त अंकेक्षण, निरीक्षण और समितियों की जांच दो या तीन भिन्न भिन्न संस्थाओं द्वारा कराने से बहुत सा काम अतिछादी हो जाता है और उसमें फ़िज़ूल धन और समय नष्ट होता है।

(५) बहुत सी समितियां कृषक को ठीक समय पर ऋण नहीं दे पातीं और उसकी आवश्यकता को पूरी नहीं कर सकतीं और किसान को फिर महाजन के चंगुल में फँसना पड़ता है।

(६) कुछ बैंक ऐसे व्यक्तियों के हाथ में हैं, जो जमा पर ज्यादा व्याज देते हैं और इससे बैंक की अर्थ व्यवस्था आवश्यकता से अधिक हो जाती है।

(७) कहीं कहीं प्रबन्धक अपने परिचितों को ही ऋण देते हैं और वसूली न होने पर, उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जाती। इससे समिति को धक्का पहुंचता है। कभी कभी ऋण की अवधि विना सोचे समझे बढ़ा दी जाती है और इसलिये वे सदस्य जो अपना ऋण अदा कर सकते हैं वे भी उसे अदा नहीं करते।

(८) कुछ समितियों का प्रबन्ध थोड़े से शक्तिवान मनुष्यों के हाथ में चला गया है, जो छोटे छोटे उत्पादकों के हित की रक्षा नहीं करते। बहुत से केन्द्रीय बैंक भी अपनी समितियों के साथ व्यवहार में पक्षपात करते है।

(९) प्रबन्धकों की स्वार्थ परायणता के कारण सहकारी अर्थ व्यवस्था अपर्याप्त, विलम्बकारी तथा लोचहीन है। बहुत से सदस्यों को ऋण लेने में असुविधाओं का सामना करना पड़ता है और फिर भी उन्हें उनकी आवश्यकता के अनुसार ऋण नहीं मिलता। इस कारण समितियों के साथ साथ गांव में साहूकार का भी बोलवाला है।

(१०) समितियों के ईमानदार और धनी सदस्य उनसे अपना सम्बन्ध तोड़ते जाते हैं।

(११) केन्द्रीय बैंकों के कार्यों में कोई समन्वय नहीं है।

(१२) कुछ प्रान्तों में ऋण के सूद की दर बहुत ऊंची है, क्योंकि ऋण तीन संस्थाओं द्वारा प्राप्त होता है। प्रान्तीय बैंक केन्द्रिय बैंक को ऋण देते हैं, केन्द्रिय बैंक प्रारम्भिक साख

समितियों को और साख समितियां सदस्यों को। इससे व्यय बढ़ जाता है और ब्याज की दर भी।

दोषों को दूर करने के सुझाव

(१) सरकारी नियन्त्रण को आन्दोलन पर से कम करना चाहिये। सहकारी विभाग का कार्य केवल शिक्षा देना, निरीक्षण तथा अंकेक्षण होना चाहिये और सारा आन्तरिक कार्य सहकारी संस्थाओं पर छोड़ देना चाहिये। प्रारम्भिक साख समितियों को अपनी जिम्मेदारी समझनी चाहिये और अपना प्रबन्ध स्वयं करना चाहिये। इससे आन्दोलन में जनता का विश्वास बढ़ेगा।

(२) प्रारम्भिक साख समितियों को केवल अल्पकालीन तथा मध्यकालीन ऋण ही देने चाहिये।

(३) सरकारी और गैर सरकारी कर्मचारियों की शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिये। प्रारम्भिक समितियों के लिये शिक्षित और अनुभवी मन्त्री नियुक्त किये जाने चाहिये। इस कार्य के लिये स्कूलों के शिक्षक और अन्य नि[illegible] कर्मचारी, जो गांव में रहते हैं, अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे[illegible]

(४) आन्दोलन के कर्मचारियों को [illegible] में सहकारिता के सिद्धान्त का प्रचार करना चा[illegible]स्ट्रार को केवल उन्हीं समितियों के खोलने की [illegible] चाहिये, जिनके सदस्य सहकारिता के सिद्धान्तों से परिचित हैं।

(५) निरीक्षण और अंकेक्षण के लिये जिला संघ बनाने चाहिये जिनमें कुछ सरकारी अनुभवी कर्मचारी नियुक्त किये जांय।

(६) ऋण देते समय ऋण का कारण और ऋण लेने वाले की वापस भुगतान की शक्ति की जांच कर लेनी चाहिये और उसके अनुसार ऋण देने चाहिये, जिनका अधिकतम समय ३ वर्ष हो । चैकों को भी काम में लाना चाहिये।

(७) सदस्यों को बेईमान सदस्यों और पदाधिकारियों को समितियों से निकाल देना चाहिये और सब सदस्यों को समान समझना चाहिये।

(८) ब्याज की दर कम करने के लिये केन्द्रीय बैंकों को शहरों तथा गांवों में सस्ती दर पर ऋण लेना चाहिये। सखी ऋतु में कम सूद पर ऋण लेकर क्रियाशील ऋतु के लिये एकत्रित करना चाहिए। प्रारम्भिक समितियों को भी सीधे जनता की जमाओं को आकर्षित करने का प्रयत्न करना चाहिये।

(९) सरकार को इन समितियों को आयकर, अतिरिक्त कर, रजिस्ट्रेशन फीस, स्टाम्प ड्यूटी तथा न्यायालय फ़ीस से मुक्त कर देना चाहिए, ताकि उनके व्यय कम हो जाँय और वे सूद की दर कम कर दें।

(१०) प्रान्तीय व केन्द्रीय बैंकों का प्रबन्ध अनुभवी और बैंकिंग योग्यता वाले व्यक्तियों द्वारा होना चाहिए।

(११) केन्द्रीय बैंकों का कार्य समन्वित होना चाहिए और इसके लिए एक समिति नियुक्त कर देनी चाहिए, जिसमें एक प्रतिनिधि प्रान्तीय बैंक का हो, एक सरकार का हो और तीन प्रतिनिधि केन्द्रीय बैंक के हों।

(१२) साख समितियों तथा रिज़र्व बैंक के कृषि विभाग में पूरा सहयोग होना चाहिए।

(१३) फसल के लिए गोदाम बनाने के लिए समितियों तथा केन्द्रीय बैंकों को रियायती दर पर ऋण दे देना चाहिए।

(१४) साहूकारों के कार्यों के विरुद्ध विशेष क़ानून बनाए जाने चाहिए।

(१५) केन्द्रीय सहकारी बैंकों का नियन्त्रण एक कमेटी द्वारा होना चाहिए, जो इन समितियों द्वारा बनाई गई हो।

(१६) समितियों को एक शक्तिशाली रक्षित कोष बनाना चाहिए, जो फसल के असफल होने पर उपयोग में लाया जा सके और समिति को भंग होने से बचा सके।

(१७) गाडगिल कमीशन ने राज्य द्वारा एक कृषि साख कारपोरेशन (Agricultural Credit Corporation) की स्थापना का सुझाव दिया। परन्तु कृषक सहायक कमेटी की राय थी कि अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साख सम्बन्धी सब सुविधायें वर्तमान सहकारी समितियों और भूमि बन्धक बैंकों की मार्फत ही संगठित हों। नानावटी कमेटी ने भी अर्थ कारपोरेशन का पक्ष समर्थन नहीं किया था। जो भी हो, इन कारपोरेशनों की आवश्यकता उन प्रान्तों में तो बिलकुल ही नहीं जान पड़ती, जहां प्रान्तीय बैंक कार्य कर रहे हैं।

(१८) भारत सरकार ने १९४८ में एक ग्रामीण बैंकिंग जांच कमेटी नियुक्त की जिसकी रिपोर्ट सितम्बर १९४९ में निकली। इस कमेटी ने ग्राम क्षेत्रों में साहूकारी सम्बन्धी सुविधायें देने के उपायों के सुझाव दिये हैं और द्रव्य-कोषों को संगठित करने और किसान को आर्थिक सहायता देने के सुझाव भी दिये हैं। सहकारी समितियों के लिये कमेटी ने

निम्न सुझाव दिये हैं:—

(i) सरकार को सहकारी संस्थाओं पर विशेष ध्यान रखना चाहिये और उन्हें सहायता देनी चाहिये।

(ii) अल्प और मध्यकालीन ऋण देने के लिये प्रान्तीय बैंकों की संख्या बढ़ा कर उनको अधिक दृढ़ बनाना चाहिए। जहां ऐसा सम्भव न हो सके वहां राजकीय कृषि साख मंडल स्थापित किये जाने चाहिए।

(iii) दीर्घकालीन ऋण केवल भूमि बन्धक बैंकों द्वारा दिये जाने चाहिए, जहां वे नहीं हैं उनकी स्थापना होनी चाहिए।

(iv) इन समितियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर द्रव्य भेजने की सुविधायें भी प्रदान करनी चाहिए।

(v) जमींदारों व राजाओं आदि से जिनकी बचत बढ़ रही है समितियों को जमा प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिये।

उपसंहार—

भारतवर्ष में सहकारी आन्दोलन को प्रारम्भ हुए लगभग ५० वर्ष हो गए। परन्तु फिर भी इसने इतनी संतोषजनक प्रगति नहीं की जितनी कि करनी चाहिए थी। द्वितीय महायुद्ध के बाद आन्दोलन में कुछ परिवर्तन हुआ और अब सहकारिता का भविष्य भारत में उज्ज्वल दिखाई पड़ता है। द्वितीय महायुद्ध के बाद किसान की दशा सुधरी। वह अपना ऋण चुकाने लगा और केन्द्रीय बैंक सरलता से अपना ऋण वसूल कर सके। केन्द्रीय बैंकोंके पास अब इतने कोष हैं कि वे सहकारिता आन्दोलन की अनेक दिशाओं को उन्नत कर सकते हैं। भूमि

वन्धक बैंक ऋण से मुक्त होने के लिये ऋण की मांग न होने के कारण वह छोटे दर्जे के सिंचन कार्यों और यांत्रिक कृषि-कार्य को उन्नत करने का सफल कार्य कर सकते हैं। सहकारिता के लिए सभी दिशाओं में अब पर्याप्त क्षेत्र है। अब तक भारत में साख ने ही किसान के जीवन के एक अंग को छुआ है। अब हमें बहु उद्देश्य समितियां (Multi-purpose Societies) आरम्भ करके अन्य क्षेत्रों में भी कदम उठाना चाहिए।

सामाजिक उद्धार के लिए भी सहकारिता आन्दोलन की बहुत आवश्यकता है और इस दिशा में आंदोलन के लिए बहुत विस्तृत क्षेत्र है। भारत ग्रामों का देश है और सहकारिता को ग्राम सुधार के सभी अंगों के लिए मुख्य ध्येय बना लेना चाहिए।

भूमि बन्धक बैंक (Land Mortgage Banks)

किसान को तीन प्रकार के ऋणों की आवश्यकता होती है (१) अल्पकालीन (२) मध्यकालीन और (३) दीर्घ-कालीन। दीर्घकालीन ऋण के अन्तर्गत पुराने ऋण चुकाने के लिए भूमि की चकबन्दी करने तथा उसको उपजाऊ बनाने के लिए, अथवा अन्य सुधार करने, भूमि खरीदने के लिए, कुआ बनाने तथा मूल्यवान यंत्र खरीदने के लिए जाने वाले ऋण आते हैं। प्रारम्भिक सहकारी साख समितियां केवल अल्पकालीन तथा मध्यकालीन ऋण ही दे सकती हैं, क्योंकि उनकी जमायें भी अल्पकालीन होती हैं। इसके अतिरिक्त उनके पास जमानत की सम्पत्ति के मूल्य को आंकने के लिए अनुभवी व्यक्ति भी नहीं होते और भूमि वन्धक रखने पर उसके कागज साख समितियों के पास रखने में जोखिम भी होती है। अतः भिन्न भिन्न बैंकिंग कमेटियों, रिजर्व बैंक तथा बैंकिंग के विशेषज्ञों

ने यही निर्णय किया कि दीर्घकालीन ऋण देने के लिए भूमि बन्धक बैंकों की ही स्थापना होनी चाहिए। यह बैंक तीन प्रकार के होते हैं:—अर्थात् सहकारी, मिश्रित पूंजी वाले और अर्द्ध सहकारी।

(१) सहकारी बैंकः—ये बैंक केवल अपने सदस्यों को ही ऋण देते हैं। इनकी अपनी निजी पूंजी नहीं होती। ये भूमि को बन्धक रख कर उसकी जमानत पर बन्धक बांड (Mortgage Bonds) बेचते हैं और उनसे पूंजी एकत्रित करते हैं। इनका लक्ष्य लाभ कमाना नहीं होता। ये बैंक ब्याज की दर घटाने की पूरी कोशिश करते हैं।

(२) *मिश्रित पूंजी वाले गैर सहकारी भूमि बंधक बैंक*—ये बैंक मिश्रित पूंजी से बने होते हैं और लाभ के उद्देश्य से स्थापित किये जाते हैं। ये भूमि को बन्धक रख कर ऋण देते हैं। इन पर सरकार का पूरा नियंत्रण रहता है ताकि यह मनमाना ब्याज न ले सकें।

(३) *अर्ध-सहकारी बैंक*—ये बैंक न तो पूर्ण रूप से सहकारी होते हैं और न गैर सहकारी। ये बैंक सीमित दायित्व वाले होते हैं और इनके अधिकांश सदस्य ऋण लेने वाले होते हैं तथा कुछ सदस्य पूंजी की सहायता देने वाले होते हैं।

बैंकों का उद्देश्य—भूमि बन्धक बैंक निम्न कार्यों के लिए ऋण देते हैं : (i) किसानों की भूमि तथा मकानों को गिरवी से छुड़ाना, (ii) खेती की भूमि तथा अन्य खेती के धन्धों की उन्नति और मकान बनवाने के लिए, (iii) भूमि खरीदने के लिए, (iv) खेतों की चकबन्दी के लिए तथा (v) पुराने ऋण चुकाने के लिए। भूमि बन्धक बैंकों को खेतों की उन्नति तथा स्थायी सुधारों के लिए अधिक ऋण देने चाहिये।

कार्यक्षेत्र—इन बैंकों का कार्यक्षेत्र छोटा होना चाहिये परन्तु बहुत छोटा नहीं। इनका क्षेत्र एक ताल्लुक या एक परगना ही होना ठीक है।

कार्यशील पूंजी—इनकी कार्यशील पूंजी हिस्से तथा ऋणपत्र बेच कर प्राप्त होती है। जो भूमि सदस्य बैंकों के पास गिरवी रखते हैं, उनकी जमानत पर बैंक ऋणपत्र निकालते हैं। यह बैंक जमा पर बहुत कम धन प्राप्त करते हैं। ऋणपत्र २० या ३० वर्षों के लिये निकाले जाते हैं। चूंकि यहां ऋणपत्र अधिक प्रिय नहीं हैं, इसलिये यहां सरकार को इन पर और इनके व्याज पर गारन्टी देनी चाहिये और इन ऋणपत्रों को ट्रस्टी सिक्यूरिटी बना देना चाहिये। शाही कृषि कमीशन (Royal Agricultural Commission) ने इन दोनों बातों का समर्थन नहीं किया, परन्तु केन्द्रीय बैंकिंग जांच कमेटी का मत था कि सरकार को मूलधन की गारंटी न देकर केवल व्याज की गारंटी देनी चाहिये।

भूमि बन्धक बैंक जब सब ऋण-पत्र बेचने लगेंगे तो उनमें प्रतिद्वन्दी का होना जरूरी है। इसलिये इस प्रतिस्पर्द्धा का अन्त करने के लिये केन्द्रीय भूमि बंधक बैंक खोलने चाहियें, जो ऋणपत्र उन बैंकों के नाम स्वयं निकालेगा तथा जिला बैंक उनको बेचेगा। माद्रास और बम्बई में ऐसे बैंक खुल गये हैं।

संचालन—इनका संचालन एक बोर्ड आफ़ डायरेक्टर्स द्वारा होता है। डायरेक्टरों में अधिकतर डायरेक्टर उन सदस्यों के प्रतिनिधि होते हैं। जो ऋण लेते हैं और कुछ डायरेक्टर बाहरी भी होते हैं, जो उनकी योग्यता के कारण ले लिये जाते हैं। ऋण लेने वाले व्यक्ति को एक फार्म पर

अपनी लेनी देनी का पूरा व्यौरा देकर और साथ में भूमि सम्बन्धी कागजों को नत्थी करके अपने क्षेत्र के बैंक को एक अर्जी देनी पड़ती है। बैंक का डाइरेक्टर तथा सुपरवाइजर इन कागजों, भूमि व उसके मूल्यांकन तथा ऋण लेने वाले की ऋण वापस करने की शक्ति की जांच कर बैंक को एक रिपोर्ट देता है। बाद में बैंक का कानूनी सलाहकार किसान के भूमि पर दायित्व की जांच करके एक रिपोर्ट केन्द्रीय बैंक को देता है। यदि बैंक ऋण देना स्वीकार करता है, तो केन्द्रीय भूमि बंधक बैंक किसान से भूमि सम्बन्धी कागजों को अपने नाम करवा लेती है, ऋण की रकम भूमि बन्धक बैंक को भेज देती है, जो प्रार्थी को ऋण दे देती है। ऋण की रकम भूमि की कूते हुये मूल्य के ५० प्रतिशत से अधिक नहीं होती। मद्रास में अधिकतम रकम ५०००) और बम्बई में १०,०००) रुपये हैं। ऋण अधिक से अधिक ४० वर्ष के लिये दिया जाता है। व्याज की दर ६ प्रतिशत से ९ प्रतिशत तक होती है। ऋण देते समय उस पर सूद का हिसाब लगा कर उस का सूद सहित वार्षिक किश्तों में बांट दिया जाता है और उन्हीं किश्तों में वह ऋणी से वसूल कर लिया जाता है।

लाभ वितरण—एक निश्चित धन जब तक रक्षित कोष में जमा न हो जाय, तब तक लाभांश वितरण नहीं किया जा सकता। मद्रास में वार्षिक लाभ का ४० प्रतिशत रक्षित कोष में रखा जाता है और ४½ प्रतिशत बांटा जाता है। बम्बई में ५० प्रतिशत रक्षित कोष में रख कर ६¼ प्रतिशत बांटा जाता है।

वर्तमान स्थिति—सब से पहला सहकारिता भूमि बंधक बैंक १९२० में पंजाब में खुला था, परन्तु असफल हो गया। इनका

वास्तविक प्रारम्भ १६२६ में हुआ, जब मद्रास में भूमि बन्धक बैंक खोला गया। अब भी मद्रास में १२० भूमि बन्धक बैंक हैं। ये बैंक मद्रास में खूब सफल हुये। महान् मन्दी के समय इन बैंकों को कुछ गति प्राप्त हुई, क्योंकि कृषि सम्बन्धी वस्तुओं की कीमत गिर जाने से किसान को ऋण की आवश्यकता थी किन्तु गत वर्षों में किसान की स्थिति में परिवर्तन हो गया है। वह संपन्न हो गया है और उसने अपने ऋण चुका दिये हैं। इसके अतिरिक्त ऋण समझौता बोर्डों ने भी ऋण का निम्न स्तर करके और उसे आसान किश्तों में भुगतान करने की सुविधा देकर ऋण लेने की आवश्यकता को कम कर दिया है। अतः उन बैंकों का जिन्होंने केवल अपने कार्य को ऋणों द्वारा किसानों को पुराने ऋण से मुक्त कराने तक ही सीमित रखा था, उनका भविष्य अच्छा नहीं दीख पड़ता। अतः उनको अन्य कार्यों के लिये, जैसे भूमि को उन्नत करना, बाड़ें लगाना तथा अन्य कृषि सुधारों आदि के लिये ऋण देने की योजना बनानी चाहिये।

१६५१ में कुल पांच केन्द्रीय बैंक मद्रास, बम्बई, मैसूर, ट्रावनकोर, कोचीन और उड़ीसा में थे।

भूमि बन्धक बैंकों की उन्नति के लिये सुझाव—(१) इनको निपुण कर्मचारियों को नियुक्त करना चाहिये जो ऋण देते समय भूमि का ठीक ठीक मूल्यांकन कर सकें।

(२) इनको अपनी पूंजी केन्द्रीय भूमि बन्धक द्वारा जारी किये ऋणपत्रों द्वारा बढ़ानी चाहिये।

(३) ऋण ऋणी की माली हालत और ऋण के उद्देश्य के अनुसार देना चाहिये।

(४) ऋण पुराने ऋणों के चुकाने के अतिरिक्त अन्य कृषि सुधारों के लिये भी देना चाहिए।

(५) ऋण किश्तों में वापिस लेना चाहिए।

(६) भारतवर्ष के कुछ प्रांतों में भूमि हस्तांतरकरण कानून लागू हैं, जिस के द्वारा भूमि बेचने में कठिनाई होती है। इस कानून में संशोधन कर देना चाहिये, जिससे भूमि बन्धक बैंकों को जब्त की हुई भूमि बेचने में रुकावट न हो और वह बिना अदालत की सहायता के बेची जा सके।

(७) दिवालिया कानून में बैंक को वसूली का प्रथम अधिकार (Preferential Right) मिलना चाहिये ताकि अरक्षित लेनदार का गिरवी रखे धन पर कोई अधिकार न हो।

(८) इनका क्षेत्र बहुत विस्तृत नहीं होना चाहिये।

(९) बैंकों का संचित कोष सुदृढ़ होना चाहिये।

(१०) कर्मचारियों को अपने सम्बन्धियों को ऋण देने में पक्षपात नहीं करना चाहिये।

(११) ऋणों का दुरुपयोग करने पर ऋण वापस ले लेना चाहिये।

(१२) इन बैंकों को ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में लगी हुई अन्य संस्थाओं से सम्पर्क रखना चाहिये।

सहकारिता और दूसरी बैंकिंग संस्थायें—

सहकारी साख समितियां साहूकार और देशी बैंकर का खूब मुकाबला कर रही हैं। यद्यपि साहूकार और देशी बैंकर की सूद की दर भी साख समितियों की सूद दर के बराबर है फिर भी जनता का विश्वास सहकारी समितियों में ही है

परन्तु फिर देशी बैंकर और समितियों में अच्छे सम्बन्ध हैं। बहुत से देशी बैंकर इन समितियों के खजान्ची और संचालक का कार्य करते हैं और अपना रुपया समितियों में मुद्दती जमा पर रखते हैं। समितियों को इनके अनुभव का लाभ उठाना चाहिये।

बहुत से प्रान्तीय और केन्द्रीय बैंक इम्पीरियल बैंक से नक़द साख और अधिविकर्ष सरकारी और अन्य स्वीकृत प्रतिभूतियों की जमानत लेते हैं। रिजर्व बैंक इन बैंकों को सहकारी कार्यों के लिये रुपया एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिये मुफ्त सुविधा देता है और अन्य कार्यों के लिए कुछ थोड़ा सा प्रतिफल लेकर यह सुविधा देता है। व्यापारिक बैंकों और सहकारी बैंकों का क्षेत्र इतना भिन्न है कि उनमें आपस में कोई प्रतिस्पर्द्धा का प्रश्न ही नहीं है। कुछ व्यक्तियों का कहना है, कि सहकारी बैंकों को सरकार से कुछ सुविधायें मिली हुई हैं, जिसके कारण वे व्यापारिक बैंकों से प्रतिस्पर्द्धा करते हैं, परन्तु यह बात ग़लत है। सहकारी बैंक अपनी जमाओं पर व्यापारिक बैंकों से अधिक ऋण नहीं देते।

रिजर्व बैंक तथा सहकारी आन्दोलन—रिजर्व बैंक ने अपनी कृषि साख शाखा सन् १९३५ में स्थापित की। इसके निम्नलिखित कार्य हैं :—

(i) कृषि साख के विशेषज्ञों की सरकार को कृषि सम्बन्धी राय देने के लिये नियुक्त करना।

(ii) रिजर्व बैंक तथा सहकारी बैंकों के सम्बन्ध को स्पष्ट करना।

(iii) ग्रामीण अर्थ और विशेष कर सहकारिता के विषय में अध्ययन करना और किसानों को ऋण से मुक्त कराने

के लिये कानून बनाना।

(iv) यह विभाग सहकारी समितियों द्वारा लिखे गये और प्रान्तीय बैंकों द्वारा बेचान किये गये पत्रों का क्रय विक्रय करता है, तथा उनको पुनर्कटौती पर लेता है।

(v) बिना ब्याज के थोड़ी सी रकम यह प्रांतीय बैंकों को सहकारी प्रतिभूतियों के आधार पर उधार देता है और १½ प्रतिशत ब्याज पर अधिकतम ६ माह के बिलों को भुनाता है।

(vi) यह सहकारी समितियों के लिये माल गोदाम खोलता है जहां वे माल एकत्रित कर सकें।

(vii) नीची दर पर ऋण पत्र प्रान्तीय सहकारी बैंकों को देकर उनको सहायता देता है।

रिजर्व बैंक के कृषि साख विभाग ने सहकारी साख आन्दोलन को पुनः संगठित करने के लिये निम्न सुझाव दिये हैं :—

(i) यदि ऋण इतना अधिक हो गया है कि वह कर्जदार की शक्ति के बाहर है, तो उसे कम कर देना चाहिये।

(ii) भविष्य में एक अधिकतम सीमा निश्चित कर देनी चाहिये, जिससे अधिक ऋण न दिया जावे।

(iii) सदस्य किसान केवल एक ही स्थान से ऋण ले सकें।

(iv) सहकारी गोदाम तथा विक्रय समितियों की स्थापना की जाय।

(v) लम्बे समय के लिये ऋण देने के लिये भूमि बन्धक बैंक खोलने चाहिये।

(vi) प्रांतीय सहकारी बैंकों को आन्दोलन पर नियन्त्रण रखना चाहिये।

(vii) केन्द्रीय बैंकों को अपनी रकम इतनी कम कर देनी चाहिये कि किसान उसे खेती के लाभ से २० वर्षों में चुका सके। शेष रकम बट्टे खाते में डाल देनी चाहिये।

(viii) केन्द्रीय बैंकों के संचालक अनुभवी और योग्य व्यक्ति होने चाहिये।

(ix) साख समितियों को कुछ सूद की दर बढ़ा कर अपना रक्षित कोष बढ़ाना चाहिये।

(x) ऋण किसान की आवश्यकतानुसार किश्तों में दिया जाना चाहिये।

(xi) ऋण का ठीक समय पर भुगतान न होने पर उसकी वसूली के लिये कार्यवाही करनी चाहिये अथवा साख समिति को तोड़ देना चाहिये। फसल नष्ट हो जाने पर अदायगी का समय बढ़ा देना चाहिये।

(xii) आवश्यकता से अधिक ऋण लेने और उसकी वसूली में ढिलाई दूर करने के लिये केन्द्रीय तथा प्रान्तीय बैंकों के बोर्ड में जमा कराने वालों के भी प्रतिनिधि होने चाहिये।

(xiii) ऋण कभी भी दो वर्ष से अधिक के लिये न दिया जाय और यह ऋण वार्षिक ऋण से पृथक रखा जाय।

(xiv) प्रारम्भिक साख समिति का पुनः संगठन होना चाहिये और उसका क्षेत्र किसान का सारा जीवन होना चाहिये।

(xv) इन समितियों को एक छोटे बैंकिंग संघ से सम्बन्धित कर देना चाहिये।

(xvi) समय समय पर अनुसंधान कमेटियां नियुक्त होनी चाहिये जो उस समय की महत्वपूर्ण बातों पर सुझाव दें।

निधि तथा चिट कोष (Nidhis & Chit Funds)

ये संस्थायें बैंकिंग संस्थाओं से मिलती जुलती संस्थायें हैं और मुख्यतया मद्रास प्रान्त में पाई जाती हैं। इन संस्थाओं को कुछ व्यक्ति मिल जुल कर भारतीय कम्पनी विधान के अन्तर्गत स्थापित करते हैं। इनका मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों में बचत की भावना को प्रोत्साहित करना तथा परस्पर ऋण सम्बन्धी सहायता देना है। इनकी व्याज की दर साधारणतया ६½% रहती है। कभी कभी ये अपने सदस्यों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को ऋण देते हैं। यहां इन संस्थाओं का होना बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है, क्योंकि इनके कारण इनके सदस्य साहूकार और महाजन के चंगुल से बच जाता है। इसका एक कारण यह भी है कि ये लोग उत्पादक तथा अनुत्पादक दोनों कार्यों के लिये ऋण दे देते हैं। मद्रास बैंकिंग जांच समिति ने इनके कार्यों की बड़ी प्रशंसा की है। किन्तु केन्द्रीय बैंकिंग

जांच समिति ने इनके लिये एक अलग ही विधान बनाने का सुझाव रखा है।

अभ्यास-प्रश्न

(१) भारतीय कृषि अर्थ व्यवस्था की समस्या को सहकारी साख समितियाँ किस हद तक सुलझा सकती हैं? बतलाइये।

(२) एक सहकारी साख समिति के विधान, कार्य तथा लाभ बतलाइये। यह अपनी ऋण पर दी जाने वाली रकमें कैसे प्राप्त करती है? केन्द्रीय साख समितियों द्वारा इसको इस बारे में कैसे सहायता पहुंचती है?

(३) भारत में सहकारी आन्दोलन पर एक छोटा सा निबन्ध लिखिये।

(४) सन् १६०४ से अब तक के भारतीय सहकारी आन्दोलन के विकास तथा कार्यों पर प्रकाश डालिये। रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने इस आन्दोलन को अब तक कितनी सहायता पहुंचाई है और अब पहुंचा सकता है?

(५) भारतीय सहकारी साख समितियों के संगठन तथा कार्यों का वर्णन कीजिये।

(६) भूमि बन्धक बैंक क्या हैं? वे कृषि अर्थ व्यवस्था में किस प्रकार सहायता पहुंचाते हैं?

(७) भूमि बन्धक बैंकों के कार्यों का विवेचन कीजिये। इनको किन सिद्धान्तों के आधार पर देश में संगठित किया जा सकता है? बतलाऐये।

(८) ग्रामीण अर्थ व्यवस्था को उन्नतिशील बनाने में भारतीय सहकारी विभाग ने क्या क्या प्रयत्न किये हैं ? संक्षेप में वर्णन कीजिये।

(९) रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने कृषि अर्थ व्यवस्था को सुधारने के लिये अब तक क्या किया ? रिजर्व बैंक के कृषि साख विभाग ने सहकारी आन्दोलन को संगठित करने के लिये क्या क्या सुझाव दिये हैं।

(१०) ग्रामीण बैंकिंग जाँच समिति ने सहकारी आन्दोलन को सफल बनाने के लिये क्या क्या सुझाव दिये हैं ? बतलाइये।

पन्द्रहवाँ अध्याय

पोस्ट आफिस बचत बैंक

पोस्ट आफ़िस बचत बैंक भी भारतीय मुद्रा बाज़ार का एक अंग है। ये बैंक निर्धन तथा साधारण व्यक्तियों में मितव्ययिता का प्रचार करते हैं। इनकी स्थापना सर्व प्रथम १८८२ में की गई थी और तब से इनकी प्रगति हो रही है। प्रथम महायुद्ध काल में इनकी जमा जनता की घबराहट के कारण कम हो गई थी, परन्तु शीघ्र ही स्थिति सुधर गई। १९३०-३१ की आर्थिक मन्दी के समय और द्वितीय महायुद्ध में फ्रांस के पतन हो जाने पर भी यही दशा हुई, परन्तु जनता का विश्वास आ जाने पर स्थिति फिर सुधर गई।

संयुक्त भारत में इन बैंकों के प्रधान तथा शाखा कार्यालयों की संख्या २७,००० थी। १९५०-५१ के अन्त में केवल भारतीय संघ के अन्दर ही बैंकों पर बकाया ६४ करोड़ रुपये का था। इस संख्या में विभाजन पूर्व की बाक़ी सम्मिलित नहीं है। मार्च १९४९ के अन्त में भारतीय जनतन्त्र में कुल डाकखानों की संख्या २६,७६० थी। उनमें से ९,४६५ बचत बैंक का कार्य कर रहे थे। इन ९,४६५ बैंकों में से ६,४०१ ग्रामीण क्षेत्रों में थे।

कार्य—यह बैंक जनता से छोटी छोटी रक़म जमा के लिये लेते हैं। साथ ही यह सर्टिफिकेट भी बेचते हैं और सरकारी प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय भी करते हैं। पोस्ट आफिस सरकारी कर्मचारियों को बीमा कराने की सुविधा भी देता है और इस प्रकार इन कार्यों से यह मध्य वर्ग के व्यक्तियों जिनकी आय थोड़ी है, में मितव्ययिता का प्रचार करता है।

इनकी कार्य विधि

प्रत्येक मनुष्य डाकघर के बचत खाते में स्वयं अपना रुपया या किसी नाबालिग़ का रुपया जिसका वह संरक्षक है, अथवा किसी ऐसे पागल मनुष्य का रुपया जिसका वह मैनेजर है, जमा करा सकता है। नाबालिग़ तथा स्त्रियां चाहे वे विवाहित हों अथवा अविवाहित, स्वयं अपने नाम से रुपया जमा करा सकती हैं यदि रुपया स्वयं उनका पैदा किया हुआ है और उस पर उनका पूर्ण अधिकार है। डाकघर में कम से कम दो रुपयों से हिसाब खोला जा सकता है। एक समय में कम से कम १) रु० की रकम खाते में से निकाली जा सकती है। एक वर्ष के अन्दर कोई भी मनुष्य निकाले हुये धन को छोड़ कर अधिक से अधिक १५०० रुपये जमा करा सकता है। वर्तमान वर्ष के व्याज को छोड़ कर किसी भी मनुष्य के खाते में ५०००) रुपये से अधिक जमा नहीं किये जा सकते हैं।

रुपया सप्ताह में केवल एक ही बार निकाला जा सकता है। इनमें २००) रुपया से कम पर १½ प्रतिशत तथा उससे अधिक पर दो प्रतिशत सूद है। परन्तु यह दर पहली अप्रैल को होने वाली रक़म पर वर्ष भर के लिये निर्धारित कर दी जाती है।

डाकघर द्वारा सर्टिफिकेट भी निकाले जाते हैं जिनमें जनता अपना रुपया लगा सकती है। यह कार्य डाकघरों द्वारा प्रथम महायुद्ध के समय आरम्भ किया गया था और अब भी जारी है। उस समय इन सर्टिफिकेटों का नाम कैश सर्टिफिकेट रखा था। यह सर्टिफिकेट पाँच वर्षों के लिये होते थे। इनका मूल्य भिन्न भिन्न होता था। किसी भी डाकखाने से १० रुपया से लेकर ५००० रु० तक के मूल्य के सर्टिफिकेट १०००० रुपया तक की सीमा तक खरीदे जा सकते थे। अवधि वीत जाने पर व्याज सहित इनका रुपया मिल जाता है। अवधि बीतने के पूर्व इनको भुनाने से सूद कम मिलता है और साल भर के अन्दर इनको भुनाने से सूद बिल्कुल नहीं मिलता।

१९४१ में डाकघर ने एक नई योजना चलाई और उस योजना के अनुसार डिफेन्स सेविंग्स सर्टिफिकेट जारी किये। इन पर व्याज की दर २$\frac{1}{2}$% है। दस वर्ष के वाद इनका रुपया व्याज सहित वापिस कर दिया जाता है। कोई भी व्यक्ति ५०००) रुपया से अधिक के यह सर्टिफिकेट नहीं खरीद सकता। १९४७ में इस खाते में कुल ११ करोड़ रुपये जमा थे। कुछ समय पश्चात्, बारह वर्षीय नेशनल सेविंग्ज सर्टिफिकेट चलाये गये। इनकी अवधि १२ वर्ष है और यह भी कई मूल्यों में निकाले गये। इन्हें भी कोई व्यक्ति १०,०००) रुपया से अधिक के मूल्य के नहीं खरीद सकता था। बारह वर्षों के बाद इनमें लगा हुआ रुपया ड्योढ़ा हो जाता है। तीन वर्ष के अन्दर भुनाने में इन पर कोई सूद नहीं मिलता। इनसे होने वाली रक़म पर आयकर नहीं लगता।

सरकारी सिक्योरिटीज़ का क्रय-विक्रय

कोई भी व्यक्ति चाहे डाकघर में उसका बचत खाता हो या न हो, डाकघर द्वारा सरकार को ऋण दे सकता है। परन्तु एक वर्ष में ५०००) रुपया से अधिक का ऋण नहीं दिया जा सकता। इस प्रकार के ऋण को सरकारी सिक्योरिटीज़ का क्रय-विक्रय कहते हैं। क्रय करने वाले को एक छपा प्रार्थनापत्र देना पड़ता है जिसमें यह विशेष रूप से स्पष्ट कर देना चाहिये कि वह अपना रुपया किस प्रकार के ऋण में लगाना चाहता है। यदि कोई व्यक्ति कुछ धन ऋण पर देकर फिर से सिक्योरिटीज खरीदना चाहता है तो उसे अपने प्रार्थनापत्र के साथ अपनी पासबुक भी लगा देनी चाहिये। पहली बार ऋण देने वाले को डाकघर से ही एक पासबुक मिलती है।

सरकारी सिक्योरिटीज डाकघर द्वारा बेची भी जा सकती हैं। परन्तु यह सिक्योरिटीज डाकघर द्वारा ही खरीदी जानी चाहिये तथा एकाउन्टेन्ट जनरल अथवा खरीदार के पास इनका जमा रहना आवश्यक है। इनको बेचते समय भी एक छपा हुआ प्रार्थनापत्र भर कर डाक घर को देना आवश्यक है।

जीवन-बीमा कराना

सन् १८८३ से डाकघर ने अपने कर्मचारियों अथवा अन्य समस्त सरकारी कर्मचारियों के जीवन बीमे का कार्य भी प्रारम्भ कर दिया है। ऐसे बीमे की दर साधारण बीमा कम्पनियों की प्रीमीयम की तुलना में नीची होती है। यह प्रीमियम कर्मचारियों के वेतन से ही काट ली जाती है। विश्व-विद्यालयों तथा सरकारी सहायता पाने वाले शिक्षण संस्थाओं के कर्मचारी भी डाकखानों से बीमा करा सकते हैं।

पोस्ट आफ़िस वचत वैंकों की उन्नति की भारी आवश्यकता है और इनकी संख्या वढ़ाई जानी चाहिये। भारत के क्षेत्र को देखते हुये उनकी फलता कुछ भी नहीं है। केन्द्रीय वैंकिंग रिपोर्ट में कहा गया है कि "देश के अत्यधिक आन्तरिक भाग में रहने वाले व्यक्तियों के पास ये वैंक अभी तक नहीं पहुंच पाये हैं। छोटी छोटी वचत की रक़मों तथा छोटे छोटे आदमियों को अभी एकत्रित किया जाना है।" जहां तक प्रति व्यक्ति जमा रकम का सम्बन्ध है, भारत विदेशों से अभी वहुत पीछे है जैसा कि निम्न तालिका से पता लगता है:—

देश	जन-संख्या (दस लाखों में)	जमा रकमें (दस लाख रुपयों में)	जमा रक़म प्रति व्यक्ति (रुपयों में)
कनाडा	१०	६३	६
अमरीका	११२	३३,४४	३०
ब्रिटेन	४४	४३,८०	९८
जापान	६०	३८,३२	६४
भारत	३२०	९४३	३

इन वचत वैंकों को गांवों में वढ़ाने की आवश्यकता है। कुछ लोगों का सुझाव है कि इनमें चैक द्वारा रुपया जमा तथा निकालने की सुविधा दी जानी चाहिए। अगस्त १९४२ से पोस्ट आफिस वैंकों ने अपने व्यवहार में चैक स्वीकार करना आरम्भ कर दिया है परन्तु चैकों द्वारा रुपया निकालने का सुझाव सम्भव नहीं है क्योंकि छोटे छोटे डाकखानों में केवल एक क्लर्क द्वारा हिसाब रखना उसकी शक्ति तथा सामर्थ्य से अधिक हो जायगा।

इनका हिसाब-किताब हिन्दी में रखने की आज्ञा दे देनी चाहिए जिससे किसान तथा मजदूर वर्ग इसका पूरा लाभ उठा सकें।

इसमें से रुपया निकालने में बहुत समय लगता है। इस दोष को भी दूर करना आवश्यक है।

इनका जनता में उचित प्रचार करना चाहिए जिससे जनता इनके लाभों को समझ सके। तभी यह बचत बैंक देश का हित कर सकते हैं।

अभ्यास-प्रश्न

१— पोस्ट आफिस सेविंग्स बैंकों का देश की बैंकिंग पद्धति में क्या महत्व है?

२—एक साधारण सेविंग्स बैंक तथा पोस्ट आफिस सेविंग्स बैंक में क्या अन्तर है? विस्तारपूर्वक समझाइये।

३—भारतीय पोस्ट आफिस बैंकिंग के क्या क्या कार्य करता है? इसकी सेवाओं को अधिक व्यापक बनाने के लिए अपने सुझाव दीजिये।

४—पोस्ट आफिस सेविंग्स बैंकों की कार्यविधि पर प्रकाश डालिये।

सोलहवां अध्याय

बैंकों का समाशोधन गृह

(Clearing House)

समाशोधन गृह वह संस्था है जहां स्थानीय बैंकों के पारस्परिक लेन-देन का निपटारा होता है। समाशोधन का कार्य दुनिया के प्रायः सभी प्रमुख केन्द्रीय बैंकों ने अपनाया है। अन्तर केवल इतना ही है कि कुछ केन्द्रीय बैंक तो यह कार्य चलन के अनुसार करते आ रहे हैं और कुछ ने विधान के द्वारा इस कार्य को अपनाया है। सबसे पहले इस काम को बैंक आफ़ इंग्लैंड ने करना आरम्भ किया और फिर दूसरे देशों की बैंकों ने इंग्लैंड का अनुकरण किया। जिन देशों में केन्द्रीय बैंकों की स्थापना के पहले ही व्यापारिक बैंकों ने अपने लेन-देन के निबटारे का प्रबन्ध कर लिया था वहां स्वतन्त्र समाशोधन गृह मौजूद हैं और उनके स्वयं काम करने के नियम तथा स्थान बने हुये हैं। केन्द्रीय बैंक भी ऐसे देशों में समाशोधन गृहों के सदस्य बने हुये हैं और प्रत्येक दिन की निकासी के अन्त में जो बाकी बचती है उसके निबटारे का भी वही काम करते हैं। अन्य देशों में केन्द्रीय बैंक ही निकास-गृह के लिए स्थान देते हैं और वे ही काम करने के लिए नियम बनाते हैं तथा अन्त में बचे हुए शेष का निबटारा करते हैं।

सभी बड़े शहरों में कई व्यापारिक बैंक होते हैं जिनके अपने ग्राहक होते हैं। जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को भुगतान करना चाहता है तो वह उसे अपनी बैंक पर चैक काट कर दे देता है। चैक पाने वाला व्यक्ति इस चैक को या तो बैंक जाकर भुना सकता है या अपने बैंक में जमा कर सकता है। जब उसका बैंक चैक का रुपया प्राप्त कर लेगा तो उसके खाते में जमा कर देगा। व्यवहार में इस प्रकार प्रत्येक बैंक बहुत से जमा करने के लिये चैक दूसरे बैंकों पर प्राप्त करता है और बहुत से चैक उसके ऊपर उनके ग्राहकों द्वारा भुगतान के लिये काटे जाते हैं। इन भुगतानों और जमा का निबटारा करने के लिए प्रत्येक बैंक अन्य दूसरे बैंकों में अपना एक एक कर्मचारी भेज सकता है परन्तु इसमें कई कठिनाइयां पड़ती हैं। पहले तो कर्मचारियों का समय नष्ट होगा और उसे वेतन देना पड़ेगा जिससे व्यय बढ़ जायगा। इसके अतिरिक्त इस तरह से भुगतान के लिये बैंकों को अपने पास बहुत नक़दी रखनी पड़ेगी।

यह देखा गया है कि दीर्घकाल में व्यापारिक बैंकों की आपस की लेनी देनी बराबर हो जाती है। समाशोधन गृह की स्थापना इसी सिद्धान्त पर की गई है जिसके द्वारा आपस के लेन-देन का निबटारा बिना नक़दी के केवल खातों में प्रवृष्टि करके ही हो जाता है।

समाशोधन गृह के कार्य का ढंग बहुत ही साधारण है। मान लीजिये कि क, ख, ग और घ चार बैंकों के बीच निकासी का काम होता है। प्रत्येक बैंक के पास विशेष तौर पर इस कार्य के लिये छपे हुये काग़ज़ रहते हैं जिन पर उन सभी चैकों और बिलों इत्यादि का हिसाब लिख लिया जाता है

जिनकी प्राप्ति एक बैंक को अन्य बैंकों से करनी होती है। उदाहरण के लिये यदि 'क' बैंक को चेकें और ड्राफ्ट छाँटने पर 'ख' बैंक के ऊपर चैक और ड्राफ्ट मिलते हैं तो वह उन्हें छपे हुये कागज पर 'ख' बैंक के नाम लिख लेगा और इसी प्रकार सब बैंकों की रक़में अलग अलग लिख ली जांयगी। यही कार्य प्रत्येक बैंक करता है। इसके बाद चैक, ड्राफ्ट इत्यादि के अलग अलग बण्डल बना लिये जाते हैं और यह बण्डल समाशोधन गृह में ले जाये जाते हैं और वहां प्रत्येक बैंक इनको चारों बैंकों के निर्धारित स्थान में अलग अलग रख देता है। वहां पर यह कर्मचारी अपने प्राप्त बण्डलों का एक कागज़ पर ब्यौरा लिख लेते हैं, जिसे 'Summary Sheet of the Clearing' कहते हैं। सभी बैंक इस प्रकार कार्य करते हैं और उनको अपनी लेनी देनी का पता चल जाता है जो वे एक साधारण चिट्ठे (General Balance Sheet) में लिख लेते हैं। इस चिट्ठे में समाशोधन गृह के सब सदस्यों के नाम, उनके पाउने और देने के खाने छपे रहते हैं। यदि किसी बैंक को पाना है तो पाउने के खाते में और देना है तो उसके देने के खाने में लिखा जायगा। बाद में पाउने और देने का अन्तर निकाल कर यह मालूम कर लिया जाता है कि किस बैंक को कितना लेना है या देना और इस लेन-देन का निपटारा खातों में जमा और नाम लिखकर कर दिया जाता है। केन्द्रीय बैंक इनका दोहरा लेख निकासी के खाते में करता है और यदि उसका हिसाब ठीक है, तो दोनों तरफ़ के लेखे बराबर हो जांयगे। नहीं तो गलती ढूंढ़नी पड़ती है। समाशोधन गृह का कार्य इसी प्रकार चलता है।

लाभ:—समाशोधन गृह से बैंकों और जनता दोनों को लाभ होता है। प्रथम तो अपनी लेनी देनी के निबटारे के लिये बैंकों को एक दूसरे बैंक के पास कर्मचारी नहीं भेजने पड़ते बल्कि एक ही कर्मचारी समाशोधन गृह जाकर सब हिसाब तय कर आता है। द्वितीय, बैंकों को अपने पास अधिक नक़दी नहीं रखनी पड़ती क्योंकि उन्हें यह भुगतान नक़दी में नहीं करने पड़ते बल्कि यह सब लेन देन का निपटारा समाशोधन गृह के द्वारा खातों में जमा और नाम लिखकर हो जाता है। जनता का भी कार्य बहुत कम नक़दी से हो जाता है। इसके कारण उनमें चैक इत्यादि के प्रयोग की आदत पड़ जाती है और उससे जो साख की वृद्धि होती है उससे जनता को बड़ा लाभ होता है।

अंग्रेज़ी समाशोधन गृह—

इंग्लैंड में लन्दन के अतिरिक्त ११ प्रान्तीय शहरों में स्वतन्त्र समाशोधन गृह हैं। इनमें से लन्दन और ७ अन्य प्रान्तीय शहरों में जहां बैंक आफ़ इंग्लैंड के दफ्तर और शाखायें है लेन देन का निपटारा बैंक आफ़ इंग्लैंड के द्वारा खाते खोल कर हो जाता है परन्तु उन चार शहरों में जहां बैंक आफ़ इंग्लैंड के दफ्तर और शाखायें नहीं हैं यह काम उनके प्रधान दफ्तरों के द्वारा जिनका खाता बैंक आफ़ इंग्लैंड में है होता है।

लन्दन में यह काम तीन भागों में बंटा हुआ है। (१) शहर से सम्बन्धित निकासी (Town Clearing) (२) अन्य शहरों से सम्बन्धित निकासी (Country Clearing) और (३) शहर से दूर स्थित स्थानों से निकासी (Metropolitan Clearing)

(१) शहर सम्बन्धी निकासी में वह क्षेत्र शामिल है जो बैंक आफ इंग्लैंड के समीप है। यहां रोज़ दो निकासी होती हैं—एक प्रातः और दूसरी मध्याह्न में। प्रत्येक सदस्य बैंक निकासी के समय अपने पास आये चैकों का बण्डल बनाकर जिसे Charges कहा जाता है समाशोधन गृह के दफ्तर में भेज देता है। वहां ये आपस में बदले जाते हैं और इनसे लेखे तैयार कर बाकी निकाली जाती है। फिर उनको साधारण चिट्ठे में लिख कर प्रत्येक बैंक की बाकी निकालते हैं और उस बाकी को खाते में जमा या नाम लिख कर शेष का निपटारा किया जाता है।

(२) अन्य शहरों से सम्बन्धित निकासी में समूचे लन्दन को छोड़कर इंग्लैंड और वेल्स में फैले हुए सब बैंकों और उनकी शाखाओं के चैकों की निकासी आ जाती है। लन्दन के बाहर स्थित लगभग सभी बैंकों ने लन्दन के किसी न किसी बैंक को अपनी निकासी के लिये प्रतिनिधि बना रखा है। वह अपने प्राप्त किये हुये चैक इन बैंकों के पास लन्दन भेज देते हैं और उनके द्वारा निबटारा हो जाता है परन्तु यह निकासी केवल दिन में एक ही बार होती है और इनके चिट्ठे की बाकी शहर से सम्बन्धित चिट्ठे में तीसरे दिन शामिल की जाती है क्योंकि प्रतिनिधि बैंक पाने वाले चैकों को सिकर जाने पर ही निकासी में शामिल करते हैं। अन्य शहरों से सम्बन्धित निकासी में केवल चैक ही शामिल किये जाते हैं।

(३) लन्दन शहर से दूर स्थित बैंकों की निकासी बहुत बाद में आरम्भ हुई थी। इस में लन्दन शहर से दूर स्थित बैंकों को सुविधा दी गई है। ये बैंक अपने चैक और ड्राफ्ट अपने लन्दन स्थिति प्रतिनिधि बैंकों को भेज देते हैं, जो उन्हें

ऊपर वाले बैंकों के अपने यहां के प्रतिनिधि के बंडलों में सम्मिलित कर लेते हैं। इनके चिट्ठे की बाकी दूसरे दिन शहर से सम्बन्धित निकासी के साधारण चिट्ठे में शामिल कर ली जाती है।

भारतवर्ष में निकासी—

भारत में भी रिजर्व बैंक की स्थापना से पहले कई जगह समाशोधन गृह थे जिनका प्रबन्ध इम्पीरियल बैंक करता था। परन्तु रिजर्व बैंक की स्थापना के बाद यह कार्य अब रिजर्व बैंक करता था। कलकत्ता और कानपुर ऐसे दो स्थान हैं जहां रिजर्व बैंक का दफ्तर होने पर भी वहां के समाशोधन गृहों की देख रेख उसके सुपुर्द नहीं है। बाकी निबटारा रिजर्व बैंक के द्वारा होता है। जहां रिजर्व बैंक की साख नहीं है वहां यह कार्य इम्पीरियल बैंक करता है।

भारतवर्ष में निम्न स्थानों पर समाशोधन गृह हैं :— बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर, मद्रास, अहमदाबाद, अमृतसर, कोयमबटूर, लखनऊ, मंगलौर, मदुरा, नागपुर, शिमला, पटना, इलाहाबाद, बंगलौर, जालन्धर, आगरा, देहरादून, अलपी, राजकोट, गया, पूना, नई दिल्ली, मुजफ्फरनगर।

भारत में बहुत कम शहरों में समाशोधन गृह हैं अतः उनकी संख्या बढ़ानी चाहिये। इनके अतिरिक्त इन गृहों के भारत में कुछ ऐसे नियम हैं जिनके कारण नये बैंक उनके सदस्य नहीं बन पाते। कहीं कहीं विदेशी बैंक उनके सदस्य बनने में बाधा डालते हैं। रिजर्व बैंक को इन कमियों को दूर करना चाहिये।

यहां भी निकासी का क्रम वही है जो अन्य देशों में है। प्रत्येक बैंक समशोधन गृह का सदस्य है और जो सदस्य नहीं बन पाते वे उपसदस्य बनकर सदस्य बैंकों के द्वारा अपना कार्य करवाते हैं।

अमरीका में तो समाशोधन गृह जमा करने वालों को दिया जाने वाला न्यूनतम ब्याज भी निश्चित करते हैं और बैंकों को प्रमाणपत्र भी देते हैं जिनके आधार पर वे ऋण ले सकते हैं।

अभ्यास-प्रश्न

१—बैंकों के समाशोधन गृह से आप क्या समझते हैं? इन संस्थाओं का होना क्यों आवश्यक है?

२—समाशोधन गृह की कार्य-विधि समझाइये।

३—भारत में समाशोधन गृह का कार्य कौन करता है? इससे दूसरे बैंकों को क्या लाभ है?

सत्रहवां अध्याय

भारत में बैंकिंग विधान

गत शताब्दी में भारत में बैंकिंग विधान बनाने के लिये कोई प्रयत्न नहीं किया गया। भारत सरकार ने अन्य आर्थिक मामलों की तरह बैंकिंग में हस्तक्षेप न करने की नीति का अनुसरण किया। जब सन् १९१३-१४ के संकट काल में बहुत से बैंक डूब गये, तो सरकार की आंखें खुलीं। फिर भी १९१३ के कम्पनी विधान के अन्तर्गत बैंक भी अन्य मिश्रित पूंजी वाली कम्पनियों की ही तरह स्थापित होते थे और उनके लिये भी वही नियम लागू होते थे, जो अन्य कम्पनियों के लिये लागू थे। अन्तर केवल इतना ही था कि १० व्यक्तियोंसे अधिक साझे-दारी वाली फर्म बैंकिंग का कारोबार नहीं कर सकती थी और बैंकों को अपना चिट्ठा (Balance Sheet) एक निर्धारित ढंग से बनाना पड़ता था, जिसमें सुरक्षित तथा अरक्षित ऋणों को पृथक पृथक दिखलाना आवश्यक था।

किन्तु इस विधान के द्वारा बैंकों का ठीक ठीक नियन्त्रण करना असम्भवसा था। सन् १९३१ में केन्द्रीय बैंकिंग जांच कमेटी ने बैंकों के डूब जाने का मुख्य कारण भारत में उचित बैंकिंग विधान का न होना भी बतलाया था और साथ ही

साथ एक स्वतन्त्र बैंकिंग विधान बनाने की सिफारिश की थी। सरकार ने इस कमेटी के सुझाव के अनुसार नया बैंकिंग विधान तो न बनाया परन्तु सन् १९३६ में १९१३ के कम्पनीज विधान में कुछ संशोधन कर दिये, जिसमें एक पूरा भाग केवल बैंकिंग के विषय में था। उसमें बैंकिंग से सम्बन्धित निम्नलिखित धारायें थीं :—

(i) इस एक्ट के अन्तर्गत बैंकिंग कम्पनी की परिभाषा इस प्रकार की गई थी: 'बैंकिंग कम्पनी वह कम्पनी है, जिसका प्रधान व्यवसाय चालू खाते या अन्य खाते में जमा स्वीकार करना है; जिसको चैक, ड्राफ्ट या अन्य आज्ञा द्वारा निकाला जा सके'। यह परिभाषा स्पष्ट नहीं थी, क्योंकि बैंकों को विभिन्न प्रकार के आकस्मिक व्यवसाय करने की आज्ञा भी थी।

(ii) कोई भी बैंकिंग कम्पनी परिभाषा में दिये हुये कार्यों के अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं कर सकती थी।

(iii) प्रत्येक बैंकिंग कम्पनी के लिये कम से कम ५००००) की प्राप्त पूंजी होना आवश्यक था।

(iv) किसी भी भविष्य में बनने वाली बैंकिंग कम्पनी का प्रबन्ध, प्रबन्ध अभिकर्ताओं के हाथों में जाने से रोक दिया गया।

(v) प्रत्येक बैंकिंग कम्पनी के लिये प्रति वर्ष लाभ का कम से कम २० प्रतिशत सुरक्षित कोष में डालना अनिवार्य कर दिया गया, जब तक कि कोष प्राप्त पूंजी के बराबर न हो जाय।

(vi) प्रत्येक बैंक के लिये अपनी अनाहूत पूंजी (Uncalled Capital) पर प्रभरण (Charge) की सृष्टि करना वर्जित था।

(vii) प्रत्येक बैंक के लिये अपनी चालू जमा का ५ प्रतिशत और मुद्दती जमा का २ प्रतिशत रिजर्व बैंक के पास जमा रखना अनिवार्य था। उसको अपने मासिक लेखे का विवरण भी कम्पनियों के रजिस्ट्रार के पास भेजना आवश्यक था।

(viii) बैंकिंग कम्पनी को पूरक कम्पनी बनाने अथवा उसमें शेयर लेने का तब तक अधिकार नहीं होता, जब तक वह कम्पनी ट्रस्टों का काम करने और जमीदारी प्रबन्ध करने के लिए आप ही न बन गई हो।

(ix) किसी बैंकिंग कम्पनी को अस्थायी रूप से संकट में पड़ जाने पर उसको दिवालियेपन से बचाने के लिये ऋण चुकाने की बढ़ी हुई अवधि (Moratorium) का प्रबन्ध कर दिया गया था।

बैंकिंग कम्पनियां जमा प्राप्त करने के अतिरिक्त निम्न कार्य भी कर सकती हैं:—

(i) रुपया कर्ज लेना और देना, बिलों और हुँडियों, प्रामिसरी नोट, हिस्से, ऋणपत्र, रेलवे रसीद तथा सोने चांदी का क्रय विक्रय करना और द्रव्य प्रतिभूतियों को वसूल करना तथा एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजना।

(ii) सरकार, म्यूनिसिपल तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और व्यक्तियों के प्रतिनिधि का काम करना।

(iii) सरकार तथा व्यक्तियों के लिये ऋण का प्रबन्ध करना तथा ऋण निकालना।

(iv) सरकारी तथा म्यूनिसिपल ऋण और कम्पनियों

के अंश और साख पत्रों का अभिगोपन (Underwrite) करना।

(v) किसी व्यापारी कारोवार को आर्थिक सहायता देना।

(vi) चल अथवा अचल सम्पत्ति का क्रय-विक्रय करना।

(vii) ट्रस्टी का कार्य करना।

(viii) कर्मचारियों के लिये लाभदायक कोषों और संस्थाओं को स्थापित करना।

(ix) कम्पनी के लिये आवश्यक इमारतों को खरीदना।

१९३६ के अधिनियम को कार्यरूप में लाने से उसकी त्रुटियों का पता चला और एक पृथक वैंकिंग अधिनियम की आवश्यकता अनुभव हुई और नवम्बर सन् १९३९ में रिजर्व वैंक के तत्कालीन गवर्नर सर जेम्स टेलर ने एक पूर्ण वैंकिंग कानून वनाने का सरकार के सामने प्रस्ताव रक्खा। उनका कहना था कि अधिकांश वैंकों की पूंजी तथा संचित कोष वहुत कम है और वे जमा कराने वालों के हित की कोई चिन्ता नहीं करते। रिजर्व वैंक का प्रस्ताविक विल इस प्रकार था :—

(i) वैंक की परिभाषा सीमित कर देनी चाहिये और कोई भी कम्पनी जो वैंकिंग कार्य नहीं करती अपने नाम के आगे वैंक शब्द लगाने की अधिकारी न होगी। कोई भी वैंक विल में न दिए हुए कार्यों को न कर सकेगी।

(ii) किसी भी वैंक की चुकता पूंजी तथा रक्षित कोष एक लाख रुपये से कम न होगा। वम्बई और कलकत्ते के लिए पूंजी ५ लाख और एक लाख से अधिक आवादी वाले स्थानों

के लिए पूंजी कम से कम २ लाख रुपये होगी। यदि बैंक उस प्रान्त या राज्य के बाहर शाख खोलना चाहता है, जहां उसका हेड आफिस है, तो उसकी चुकता पूंजी और रक्षित कोष कम से कम २० लाख रुपया होना आवश्यक है।

(iii) किसी बैंक की विक्रित पूंजी (Subscribed Capital) अधिकृत पूंजी की आधी से कम और चुकता पूंजी विक्रित पूंजी की आधी से कम न होगी।

(iv) प्रत्येक बैंक को अपनी चालू और मुद्दती जमा का ३०% नकद कोष के रूप में या रिज़र्व बैंक द्वारा स्वीकृत प्रतिभूतियों में रखना होगा। प्रत्येक बैंक को प्रति वर्ष १ फरवरी के पहले रिज़र्व बैंक के पास अपनी जमाओं और सम्पत्ति का लेखा भेजना होगा। कुल दायित्व का ७५% रिज़र्व बैंक द्वारा स्वीकृत सम्पत्तियों के रूप में होगा।

किन्तु १६३६ के युद्ध के कारण यह विषय उस समय स्थगित कर दिया गया। १६४२ के बाद युद्ध का वेग बढ़ने लगा। जापान के विरुद्ध भारत को मित्र राष्ट्रों का अड्डा बनाने के कारण यहां का व्यवसाय भी बढ़ने लगा। मुद्रा स्फीति के फलस्वरूप आरम्भ में बैंकों के ऋणों में वृद्धि हुई। बाद में अमानतों में भी वृद्धि हुई। १६४१-४२ में देश में बैंकों की एक बाढ़ सी आ गई। इनकी पूंजी बहुत कम थी। इस दोष को दूर करने के लिये, सरकार ने १६४३ में कम्पनी एक्ट में संशोधन किया। उसके अनुसार केवल उसी कम्पनी को बैंकिंग कम्पनी माना गया, जिसके नाम के साथ, बैंक शब्द लगा हुआ था चाहे उसका मुख्य कार्य जमा लेना और उसे चैक द्वारा देना हो या न हो। यह भी नियम बनाया गया कि विक्रित पूंजी

अधिकृति पूंजी की आधी और चुकता पूंजी विक्रित पूंजी की आधी होगी। इसके अतिरिक्त बैंक या तो केवल साधारण हिस्से निकाल सकते थे और यदि भिन्न भिन्न प्रकार के हिस्से निकालें, तो उनके मतदान का अधिकार पूंजी के अनुपात में होगा। किन्तु इतने पर भी रिज़र्व बैंक के गवर्नर ने कुछ ऐसी बुराइयों की ओर ध्यान दिलाया, जो बैंकों में मुद्रा स्फीति के कारण आ गई थीं। वे बुराइयां निम्न लिखित हैं:—

(क) जमा प्राप्त करने के लिये अन्धाधुन्ध शाखायें खोलना।

(ख) बैंकिंग कार्य न करने वाली कम्पनियों के अंश क्रय कर उन पर अधिकार जमाना, संचालकों द्वारा नियंत्रित कम्पनियों के शेयरों को रखना, बैंकिंग तथा औद्योगिक स्वत्वों को एक दूसरे में मिला देना।

(ग) आय व्यय के लेखे इस तरह तैयार करना कि लोग धोखे में आ जांय।

(घ) शेयरों, सरकारी प्रतिभूतियों अथवा अन्य सम्पत्तियों में सट्टा करना।

(ङ) सुरक्षा कोष को बाँटना।

इन बुराइयों को दूर करने के लिये १९४५ में एक बैंकिंग बिल बनाया गया, जो १९४८ तक भी पास न हो सका। इस बीच में सरकार ने एक अध्यादेश (Ordinance) निकाल कर रिज़र्व बैंक को इन दोषों को दूर करने का अधिकार दे दिया। इसके द्वारा रिज़र्व बैंक को किसी भी बैंक का हिसाब देखने का अधिकार मिल गया और किसी भी ऐसे बैंक के

विरुद्ध कार्य करने की आज्ञा मिल गई, जो अपना कार्य अपने जमा करने वालों के हित के विरुद्ध चला रहा हो। को बैंक की सूची (Schedule) से हटाया जा सकता था और वह जमा प्राप्त करने से रोका जा सकता था। इसके अतिरिक्त दो और क़ानून बनाये गये। प्रथम के अन्तर्गत बैंकोंको ऐसे प्रोमिसरी नोट निकालने से रोका गया, जो एक हाथ से दूसरे हाथ में बराबर जाते रहते थे। दूसरे के अनुसार कोई बैंक रिज़र्व बैंक की अनुमति के बिना न कोई शाखा खोल सकता था और न स्थान बदल सकता था।

१६४७ में सरकार ने बैंकों की विभाजन की कठिनाइयों से रक्षा करने के लिये एक और अध्यादेश बनाया, जिसके अन्तर्गत रिज़र्व बैंक को कैसी भी ज़मानत पर, जिसे वह पर्याप्त समझे, बैंकों को पेशगी रुपया उधार देने का अधिकार मिल गया।

२२ मार्च सन् १६४८ को एक नया विधेयक धारा सभा के सामने बैंकिंग व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिये रखा गया, जो पास होकर १६ मार्च १६४६ से लागू हो गया। इस प्रकार जो शृंखला १६३६ में आरम्भ हुई १६४६ में एक कानून के रूप में परिवर्तित हो गई। इस अधिनियम की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं। इस कानून का मुख्य उद्देश्य जमा करने वालों को बैंकों की चालबाजी, बेइमानी, कुप्रबन्ध इत्यादि से रक्षा करना और भारतीय बैंकिंग व्यवस्था को संगठित और सुदृढ़ बनाना है।

यह सहकारी बैंकों को छोड़ कर शेष समस्त भारत में स्थित बैंकिंग कम्पनियों पर लागू होगा, परन्तु यदि सरकार

चाहे तो रिजर्व बैंक की सम्पत्ति से विधान या उसकी किसी धारा को ६० दिन के लिये स्थगित कर सकती है। बिल की मुख्य बातें इस प्रकार हैं। बैंक की एक विस्तृत परिभाषा स्वीकार कर ली गई है। इस परिभाषा के अनुसार जो भी संस्था जनता को ऋण देने या विनियोग के लिये किसी भी प्रकार की जमा प्राप्त करे, वह बैंक की श्रेणी में गिनी जावेगी। कोई भी कम्पनी अपने नाम के आगे बिना 'बैंकर', 'बैंक' या 'बैंकिंग' शब्द लगाये, बैंकिंग व्यवसाय नहीं कर सकती। कोई भी बैंक अपने या किसी अन्य व्यक्ति के नाम से माल का क्रय-विक्रय नहीं कर सकती। कोई भी बैंक ७ वर्ष से अधिक के लिये कोई अचल सम्पत्ति, जो उसके काम नहीं आ रही है, बिना रिजर्व बैंक की अनुमति के नहीं रख सकती।

क़ानून जम्मू और काश्मीर को छोड़ कर सभी प्रान्तों तथा सम्मिलित होने वाले राज्यों की बैंकिंग कम्पनियों पर लागू होगा।

बैंकों का संस्थापन

प्रत्येक बैंकिंग कम्पनी को कार्य करने के लिये रिजर्व बैंक से एक अनुज्ञा-पत्र (Licence) लेना होगा, जो इस बात का पता लगा कर अनुज्ञा-पत्र देगा कि प्रार्थी बैंक की स्थिति ठीक है और उसका सब कार्य जमा करने वालों के हित में हो रहा है। यदि बैंकिंग कम्पनी विदेशी है, तो रिजर्व बैंक को यह देखना आवश्यक है कि वहां की विदेशी सरकार भारत में रजिस्टर्ड कम्पनियों के साथ भेद भाव तो नहीं करती है, और भारतीय बैंकिंग एक्ट का ठीक प्रकार से पालन करती है।

पुराने बैंकों को यह अनुज्ञा-पत्र एक्ट लागू होने से ६ महीने के अन्दर अन्दर ले लेना चाहिये। नई जगह पर भी कार्यालय खोलने और दूसरी जगह बदलने के लिये भी रिजर्व बैंक की अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है। इस अनुमति के देने के पूर्व रिजर्व बैंक यह जांच करेगा कि बैंक की स्थिति ठीक है या नहीं, और नया कार्यालय खोलना या स्थान बदलना जनता के हितों के विरुद्ध तो नहीं है।

बैंक प्रबन्ध—कोई भी बैंक किसी प्रबन्धकर्त्ता द्वारा, या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा, जो किसी अन्य बैंक का संचालक हो अथवा किसी अन्य व्यवसाय में लगा हुआ हो, प्रबन्धित नहीं की जा सकती। कोई बैंक किसी दिवालिये को भी संचालक नियुक्त नहीं कर सकती। बैंकिंग कम्पनियाँ अपने कर्मचारियों का प्रतिफल लाभ पर कमीशन या लाभ के कुछ भाग या अपने साधनों के व्यानुपात के रूप में नहीं दे सकतीं।

बैंकों की पूंजी—इस एक्ट के अनुसार, यदि इस अधिनियम को एक से अधिक राज्यों पर लागू किया जावे, तो न्यूनतम पूंजी ५ लाख रुपया होगी और बम्बई और कलकत्ते के लिये १० लाख होगी। विदेशी कम्पनियों की प्राप्त पूंजी तथा सुरक्षित कोष १५ लाख रुपया और बम्बई और कलकत्ते के लिये २० लाख रुपया होना चाहिये।

स्वीकृत पूंजी अधिकृत पूंजी के आधे से कम न होगी और प्राप्त पूंजी स्वीकृत पूंजी के आधे से कम न होनी चाहिये। मताधिकार पूंजी के अनुदान के अनुपात में होगा, परन्तु वह कभी भी समस्त मताधिकार के ५% से अधिक न होगा।

प्रत्येक बैंक अपनी पूंजी साधारण अंशों में ही रखेगा और उनके निर्गमन करने में अपनी प्राप्त-पूंजी के ४½% से अधिक कमीशन दलाली अथवा वट्टा इत्यादि न दे सकेगा। बैंक अपनी अनाहूत पूंजी की जमानत पर कोई ऋण भी न ले सकेंगे।

बैंक सम्पत्ति कोष तथा लाभांश—प्रत्येक अनुसूचित (Scheduled) बैंक और बिना अनुसूचित बैंकों को अपनी मुद्दती जमा का २% और चालू जमा का ५% रिजर्व बैंक के पास रखना होगा। बिना अनुसूचित बैंक यह कोष अपने पास भी रख सकते हैं, परन्तु उनको मास के प्रत्येक शुक्रवार को अपना मासिक हिसाब देना होगा। प्रत्येक विदेशी बैंकिंग कम्पनी को इस एक्ट के लागू होने के दो वर्ष के अन्दर भारत में नक़दी, सोने अथवा अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों (Approved Securities) के रूप में उसकी मुद्दती तथा चालू जमा के कम से कम २०% भाग को बाज़ार भाव से भारत में रखना होगा। बैंकिंग कम्पनियाँ कोई भी लाभांश वितरण तब तक नहीं कर सकतीं, जब तक वे अपने सब पूंजी गत व्यय साफ़ न कर दें। लाभ का कम से कम २०% सुरक्षा कोष में जमा किया जावेगा जब तक वह प्राप्त पूंजी के बराबर न हो जाय।

ऋणों पर प्रतिबन्ध—बैंकों को अपने ही अंशों पर ऋण देने अथवा बिना ज़मानत के संचालकों को उधार देने या किसी ऐसी फर्म को उधार देने की मनाई है, जिसमें उसके किसी संचालक का स्वार्थ निहित हो। इस प्रकार के ऋणों का मासिक हिसाब रिजर्व बैंक को देने की व्यवस्था कर दी गई है।

कोई भी बैंक केवल बैंकिंग व्यवसाय के आकस्मिक उद्देश्यों के अतिरिक्त कोई सहाय-प्रमण्डल (Subsidiary Com-

pany) बिना रिजर्व बैंक की अनुमति के नहीं बना सकेगी ।

रिजर्व बैंक के अधिकार—रिजर्व बैंक को एक्ट द्वारा विस्तृत अधिकार दे दिये गये हैं । वह पूरी बैंकिंग प्रणाली पर नियंत्रण कर सकता है; वह किसी भी बैंक का हिसाब, वही-खाते व अन्य विवरणों का किसी भी समय निरीक्षण कर सकता है; वह बैंकों की उधार देने की नीति को भी जनता के हित में निर्धारित कर सकता है और सौदों को रोक सकता है ।

विभिन्न बैंक विवरणों की प्राप्ति तथा निरीक्षण—रिजर्व बैंक बैंकों से निम्नलिखित विवरण निरीक्षण के लिए प्राप्त कर सकती है, ताकि वह यह ज्ञात कर सके कि बैंकों का कोइ कार्य जनहित के विरुद्ध तो नहीं है:—

(१) प्रत्येक बैंक को रिजर्व बैंक के पास प्रति मास एक ऐसा विवरण भेजना पड़ेगा, जिसमें उन समस्त अरक्षित ऋणों का वर्णन होगा, जो बैंक ने ऐसी कम्पनियों को दिये हैं, जिनमें वह बैंक या उसके संचालक प्रबन्धकर्त्ता या संचालक का कार्य करते हों ।

(२) प्रत्येक बैंक को एक मासिक विवरण भेजना पड़ेगा जिसमें उस सम्पत्ति का विवरण होगा, जो बैंक को अपनी मुद्दती तथा मांग जमाओं के मूल्य का २० % रोकड़ी रुपये, सोने आदि में रखना आवश्यक होगा ।

(३) प्रत्येक बैंक को कम से कम ७५ % अपनी कुल देनदारियों की सम्पत्ति भारत में रखनी होगी और इसका तिमाही विवरण रिजर्व बैंक के पास भेजना पड़ेगा ।

(४) प्रत्येक वर्ष के अन्त में बैंकों को रिज़र्व बैंक के पास उन अनभ्यर्थित जमाओं (Unclaimed deposits) का विवरण भेजना पड़ेगा, जिनका दस वर्षों में कोई लेन देन नहीं हुआ हो।

(५) अन्य प्रकार की कोई भी सूचना जब रिज़र्व बैंक चाहे अन्य बैंकों से मांग सकता है।

(६) प्रत्येक बैंक को रिज़र्व बैंक के पास अपना चिट्ठा तथा खाते अंकेक्षक की रिपोर्ट के साथ तैयार होने के तीन महीने के अन्दर भेज देने चाहिए।

बैंकों का एकीकरण, पुनसंगठन तथा निस्तारण—कोई भी बैंक रिज़र्व बैंक की स्वीकृति बिना एकीकरण अथवा पुनसंगठन की कोई योजना कार्यान्वित नहीं कर सकता। अदालत भी बिना रिज़र्व बैंक के प्रमाणित किये एकीकरण की योजना का संमोदन नहीं कर सकती। रिज़र्व बैंक को बैंक के निस्तार के सम्बन्ध में भी काफ़ी अधिकार दिये गये हैं। यदि किसी बैंक का निस्तारण अदालत से निश्चित हुआ हो, तो रिज़र्व बैंक के प्रार्थना करने पर उसका राजकीय निस्तारक चुना जा सकता है।

संकट काल में सलाह तथा सहायता देना—रिज़र्व बैंक संकट काल में अन्य बैंकों को सलाह और सहायता दे सकता है। वह बैंकों को कोई विशेष प्रकार का लेन देन करने से रोक सकता है। वह विभिन्न बैंकों के एकीकरण में मध्यस्थ का कार्य कर सकता है। वह किसी बैंक को ऋण भी दे सकता है। वह बैंकों के सुधार के लिये सुझाव भी दे सकता है।

अन्य अधिकार—वह किसी बैंक को बन्द करने के लिये अदालत से प्रार्थना कर सकता है। वह देश में बैंकिंग की गति तथा विकास के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार को वार्षिक रिपोर्ट देकर उसमें उसके सुधार के लिये सुझाव देगा। किसी भी संकट काल में रिजर्व बैंक इस एक्ट को ३० दिन के लिये स्थगत करा सकता है। मार्च १९५० में बैंकिंग कम्पनीज़ अधिनियम में फिर संशोधन उन दोषों को दूर करने के लिये किये गये जो उसको लागू करते समय प्रतीत हुये। बैंकों का एकीकरण उनके हिस्सेदारों के बहुमत और रिजर्व बैंक की स्वीकृति से ही किया जा सकेगा। मतभेद रखने वाले हिस्सेदारों को हर्जाना दे दिया जावेगा। बंद होने वाली संस्थाओं के शीघ्र निपटारा करने की भी व्यवस्था की गई है।

१९५१ में रिजर्व बैंक आफ इण्डिया संशोधन अधिनियम पास किया गया, जिसकी मुख्य बातें निम्न प्रकार थीं :—

(१) १९३४ के रिजर्व बैंक एक्ट को जम्मू काशमीर छोड़कर सारे भारत में लागू किया जायेगा।

(२) बैंक की देख रेख तथा दूसरे कार्य, गवर्नर की अनुपस्थिति में, वह डिप्टी गवर्नर करेगा, जिसे गवर्नर इसके लिये मनोनीत करे।

(३) वह हुँडियां भी जिन पर किसी राज्य के सहकारी बैंक के हस्ताक्षर हों रिजर्व बैंक से पुनः भुनाई जा सकेंगी।

(४) ऋतु सम्बन्धी कृषि कार्यों अथवा पार्सलों की बिक्री के व्यय के लिये जारी की गई हुण्डी के सिकारे जाने के लिये बैंक द्वारा दुबारा बट्टा लेने की अवधि को ९ मास से बढ़ाकर १५ मास कर दिया गया है।

(५) बैंकिंग विभाग में जो सरकारी प्रतिभूतियां रखी जाती हैं उनके परिमाण तथा अवधि सम्बन्धित प्रतिबन्धों को हटा दिया गया है।

(६) बैंक किसी भी सरकार द्वारा स्वीकृत विदेशी सरकार या व्यक्ति का एजेन्ट का कार्य कर सकती है।

(७) बैंक 'ख' भाग के राज्यों के साथ समझौता करके उनके मुद्रा सम्बन्धी और ऋण प्रबन्ध को अपने हाथ में ले सकती है।

(८) अनुसूचित बैंक जो कानून के अनुसार साप्ताहिक हिसाब बैंक को देते हैं, उसमें उनके पूंजी लगाने के अंकों को भी सम्मिलित कर लिया गया और हिसाब के देने की अवधि बढ़ा दी गई।

(९) बैंक यदि चाहे, तो किसी भी बैंक को नियमित बकाया रखने की अनिवार्यता और हिसाब भेजने की व्यवस्था से उचित समय तक मुक्त कर सकता है।

(१०) बैंक को अनुसूचित बैंकों की तरह, सभी राज्य सहकारी बैंकों से साप्ताहिक विवरण मांगने का अधिकार दे दिया गया है।

(११) इम्पीरियल बैंक का रिजर्व बैंक का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार केवल भाग 'क' तथा भाग 'ख' के राज्यों तक ही सीमित रह गया है।

अतः इस एक्ट से रिजर्व बैंक को देश की समस्त बैंकों का नियन्त्रण तथा संगठन करने का पूरा पूरा अधिकार प्राप्त हो गया है और आशा की जाती है कि बैंक अधिक कार्यशील और सुसंगठित बनेंगे।

रिजर्व बैंक ने बैंकों के कार्यों का अध्ययन आरम्भ कर दिया है और उसमें उसे कई त्रुटियां दिखाई दी हैं। ये त्रुटियां, बैंकिंग कम्पनी अधिनियम में जो त्रुटियां रह गई थीं, उनके कारण हैं। अतः उन त्रुटियों के दूर करने की आवश्यकता है।

अभ्यास-प्रश्न

१—हमारे देश में बैंकिंग विधान का एक संक्षिप्त इतिहास लिखिये।

२—सन् १९४९ के बैंकिंग कम्पनी विधान की मुख्य मुख्य बातें समझाइये।

३—भारतीय बैंकिंग विधान के बारे में आप अपना मत प्रकट कीजिये।

QUESTION PAPERS.

RAJPUTANA UNIVERSITY.

INTER COMMERCE EXAMINATION, 1951.

ELEMENTS OF BANKING

Second Paper

(Banking)

Answer any five questions. All questions carry equal marks.

1. What is a bank ? Enumerate the different classes of banks in India, stating briefly their functions.

2. Draw up a Bank Balance Sheet and comment on its important items.

3. Why does a banker keep cash in hand ? What considerations should guide him in determining its amount ?

4. Indicate the difference between a modern bank and an indigenous banker.

5. How far can the co-operative credit societies solve the problem of agricultural finance ?

6. Describe the bussiness transacted by the Exchange Banks in India. What criticisms have been levelled against them ?

7. Describe the main defects of Indian banking. Suggest remedies to remove them.

8. What are the functions performed by a central bank ? How far has the Reserve Bank of India been successful in performing them ?

9. Describe briefly the principal provisions of the Banking Companies Act, 1949.

10. Write short notes on any three of the following :—

(a) Difference between a Cheque and a Bill of Exchange.

(b) Bank Rate.

(c) Postal Savings Bank.

(d) Nationalization of the Reserve Bank of India.

(e) Industrial Finance.

(f) Imperial Bank of India.

INTER COMMERCE EXAMINATION, 1952.

ELEMENTS OF BANKING

Second Paper

(Banking)

Answer any five questions. All questions carry equal marks.

1. What is credit ? Give its merits and demerits.

2. If you are appointed managing director of a bank, how would you invest its funds ?

3. Describe the role of the Imperial Bank of India in the Indian Banking system.

4. Write a short essay on 'The Co-operative Movement in India'.

5. Discuss the Reserve Bank of India with reference to (a) indigenous bankers and (b) agriculture.

6. Describe the various methods of inland remittance of money, taking suitable illustrations.

7. Explain why a developed Bill Market

does not exist in India. Give suitable suggestions for developing the use of bills in India.

8. Discuss the powers given to the Reserve Bank of India by the Banking Companies Act, 1949, to regulate and control banking activities.

9. Write short notes on :—

(a) Clearing Houses.
(b) Promissory Notes.
(c) Government Loans.
(d) Hundi.

INTER COMMERCE EXAMINATION, 1953.

ELEMENTS OF BANKING

Second Paper

(Banking)

Answer any five questions. All questions carry equal marks.

1. Describe the role of money in the modern economic organization.

2. How does a bank create credit? What are the limitations on the power of a bank to create credit?

3. Distinguish between a central bank and an ordinary commercial bank.

Why was the Imperial Bank of India not developed into a full central bank ?

4. Describe bank rate and open market operations as weapons of a central bank to control credit.

5. Point out differences between an indigenous banker and a money lender.

Describe the position of the indigenous bankers in the Indian banking system.

6. Do you think that the financial needs of agriculture can be admirably satisfied by co-operative credit societies ? Give arguments in support of your answer.

7. What are the causes of banking crisis ? How can a central bank avert it or mitigate its evil consequences ?

8. How is the foreign trade of India financed ?

9. (a) What are the advantages from the use of cheques ?

(b) Why are bills of exchange considered very safe for investment ?

10. Write short notes on :—
   (a) Deposits.
   (b) Cash Reserve.
   (c) Government Securities.
   (d) Loans to the Money Market.

U. P. BOARD

INTERMEDIATE EXAMINATION, 1952.

Banking (Advanced)

Second Paper

सूचना—किन्हीं पांच प्रश्नों के उत्तर लिखो।

१—बैंक क्या होता है? राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था में बैंकिंग का क्या स्थान है?

२—नक़द साख, अधिविकर्ष (overdraft), ऋण तथा पेशगियां (advances) क्या होती हैं? इनसे बैंकर और ग्राहकों को क्या क्या लाभ होते हैं? विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिये।

३—बैंकों के निकासी गृह (Clearing House) का क्या महत्व है? इसका काम किस प्रकार होता है?

४—भारत में इम्पीरियल बैंक क्यों और कैसे स्थापित किया गया? यह क्या क्या कार्य कर सकता है और क्या क्या कार्य इसके लिये निषेध हैं?

५—बैंकिंग संकट (crisis) किसे कहते हैं? इसके क्या कारण हैं? विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिये।

६—भारत में बैंकिंग की उन्नति के लिये प्रभावशाली क़ानून लागू करने के सम्बन्ध में तर्क उपस्थित कीजिये।

७—निम्नलिखित में से किन्हीं चार पर विस्तारपूर्वक टिप्पणियां लिखिये :—

(क) नियमानुसार धारक (holder)।

(ख) खुले बाजार की कार्रवाइयां।

(ग) बिना पुष्टि की हुई साख।

(घ) रेखांकित चेक।

(ङ) डाकखाने के बैंक-सम्बन्धी कार्य।

(च) सरकारी तकावी ऋण.।

८—भूमि-बन्धक बैंक (Land Mortgage Bank) से आप क्या समझते हैं ? उनके क्या काम हैं ? भारत में उनकी वर्तमान परिस्थिति क्या है ?

९—हुंडी क्या होती है और उसकी क्या किस्में हैं ? क्या यह कथन सच है कि बिल आव ऐक्सचेंज का भारतीय स्वरूप हुंडी कहलाता है ?

१०—भारतीय मिश्रित पूंजी वाले बैंकों के कार्य बताइये। उनके दोषों का विवरण दीजिये और उन्हें दूर करने के उपाय बताइये।

U. P. BOARD
INTERMEDIATE EXAMINATION, 1953.
Banking (Advanced)
Second Paper

सूचना—किन्हीं पांच प्रश्नों के उत्तर दीजिये। सब प्रश्नों के अंक समान हैं।

१—दर्शनी हुंडी क्या है ? एक दर्शनी हुंडी ठीक प्रकार से बनाइये।

२—कृषि-सम्बन्धी वित्त-प्रवन्ध-प्रणाली को रिजर्व वैंक अफ इंडिया किस प्रकार सहायता पहुँचाता है ? विस्तारपूर्वक समझाइये ।

३—भिन्न-भिन्न प्रकार के वैंकों तथा उनके कार्यों को लिखिये ।

४—वैंक अपनी वित्त-राशियों (funds) को किस प्रकार प्राप्त करता है ? विस्तारपूर्वक समझाइये ।

५—निम्नलिखित में से किन्हीं चार पर विस्तारपूर्वक टिप्पणियां लिखिये :—

(क) वैंक-दर ।
(ख) वैंकों का निकासी गृह ।
(ग) परिगणित वैंक ।
(घ) भू-बन्धक वैंक ।
(ङ) वैंकिंग संकट ।
(च) डी/ए और डी/पी बिल ।

६—वैंक का एक काल्पनिक चिट्ठा (Balance Sheet) बनाइये और उसके विभिन्न-मदों (items) को समझाइये ।

७—भारत में कार्य करने वाली सहकारी साख समितियों के विषय में एक विस्तृत टिप्पणी लिखिये ।

८—भारत में कार्य करने वाले विनिमय वैंक अधिकतर विदेशी हैं । ऐसा क्यों है और इससे हमारे देश का क्या अहित होता है ?

९—वैंक क्या है ? चैक को किन-किन प्रकारों से रेखांकित किया जाता है और उनमें से प्रत्येक का तात्पर्य बताइये ।